

M.A. Sanskrit

Semester-III

Paper Code- 21SKT23CC1

लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास

लेखक

डॉ. श्री भगवान

सहायक प्रोफेसर

संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक



Directorate of Distance Education

MAHARISHI DAYANAND UNIVERSITY ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. 25 of 1975)

(NAAC Accredited 'A⁺ Grade)

www.mdu.ac.in

पाठ्यक्रम
लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास
Paper Code- 21SKT23CC1

Maximum Marks: 100
Term End Examination: 80
Assignment: 20

समय – 3 घण्टे

घटक 1— महाकाव्य (अश्वघोष से श्रीहर्ष तक)

घटक 2— (क) गद्य साहित्य (आर्यशूर से अम्बिकादत्त व्यास तक)
(ख) कथा साहित्य (विष्णुशर्मा से सोमदेव तक)

घटक 3— नाट्य साहित्य – (भास से भट्टनारायण तक)

घटक 4— अन्य काव्य विधाएँ (खण्ड काव्य, गीति काव्य, मुक्तक काव्य,
स्तोत्र काव्य एवं चम्पू काव्य – कालिदास से जगन्नाथ तक)

दिशानिर्देश :

नोट – 16—16 अंक के कुल पांच प्रश्न पूछे जाएंगे जिनमें से प्रथम प्रश्न वस्तुनिष्ठ होगा जिसके अन्तर्गत विकल्प रहित आठ वस्तुनिष्ठ प्रश्न (प्रत्येक घटक में से दो) पूछे जायेंगे जिनका उत्तर संस्कृत भाषा में देना अनिवार्य होगा।

16

शेष चार प्रश्नों के घटकानुसार निर्देश अधोलिखित हैं –

प्रत्येक घटक में से चार में से दो प्रश्नों के उत्तर

2 X 8 X 4 = 64

अथवा

प्रत्येक घटक में से छः में से चार पर टिप्पणियाँ

4 X 4 X 4 = 64

अनुशंसित ग्रन्थ –

संस्कृत साहित्य का इतिहास—वाचस्पति गैरोला संस्कृत साहित्य का इतिहास— एस. के. डे।

History of Sanskrit literature & M- Krishnamachari

विषय—सूची

पाठ्यक्रम

पृष्ठ संख्या

अध्याय—1 : महाकाव्य (अश्वघोष से भारवि)

1—34

- 1.1 अध्याय के उद्देश्य
- 1.2 परिचय
- 1.3 अश्वघोष से भारवि
अश्वघोष — बुद्धचरितम्
कालिदास — कुमारसंभव, रघुवंश
भारवि — किरातार्जुनीयम्
- 1.4 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्न
- 1.5 सारांश
- 1.6. मुख्य शब्दावली
- 1.7. अपनी प्रगति जाँचिए के उत्तर
- 1.8. अभ्यास हेतु प्रश्न
- 1.9. आप ये भी पढ़ सकते हैं

अध्याय—2 : महाकाव्य (भट्टि से श्रीहर्ष तक)

35—68

- 2.1 अध्याय के उद्देश्य
- 2.2 परिचय
- 2.3 भट्टि से श्रीहर्ष तक के महाकाव्य
कुमारदास — जानकीहरण
माघ — शिशुपालवध
रत्नाकर — हरविजय

श्रीहर्ष — नैषधीयचरित

ऐतिहासिक महाकाव्य — नवसाहसांकचरित, विक्रमांकदेवचरित, राजतरंगिणी

- 2.4 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्न
- 2.5 सारांश
- 2.6. मुख्य शब्दावली
- 2.7. अपनी प्रगति जाँचिए के उत्तर
- 2.8. अभ्यास हेतु प्रश्न
- 2.9. आप ये भी पढ़ सकते हैं

अध्याय—3 : गद्य साहित्य (आर्यशूर से अम्बिकादत्त व्यास तक)

69—106

- 3.1 अध्याय के उद्देश्य
- 3.2 परिचय
- 3.3 आर्यशूर से अम्बिकादत्त व्यास तक का गद्य साहित्य
आर्यशूर — जातकमाला
दण्डी — दशकुमारचरित, अवन्तिसुन्दरीकथा
सुबन्धु — वासवदत्ता
बाणभट्ट — हर्षचरित, कादम्बरी
मध्यकालीन गद्यकार — धनपाल, वादीभसिंह, प्रभाचन्द्र, मेरुतुंगाचार्य, राजशेखर सूरी,
वामनभट्ट, विश्वेश्वर पाण्डेय
अम्बिकादत्तव्यास — शिवराजविजय
- 3.4 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्न
- 3.5 सारांश
- 3.6 मुख्य शब्दावली
- 3.7 अपनी प्रगति जाँचिए के उत्तर
- 3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

3.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

अध्याय-4 : कथा साहित्य (विष्णु शर्मा से सोमदेव तक)

107—140

4.1 अध्याय के उद्देश्य

4.2 परिचय

4.3 विष्णु शर्मा से सोमदेव तक का कथा साहित्य

(क) नीति कथा ग्रन्थ

विष्णु शर्मा — पंचतंत्र

नारायणपंडित — हितोपदेश

(ख) लोकथाएँ

गुणाढ्य — बृहत्कथा

बुद्धस्वामी — बृहत्कथाश्लोकसंग्रह

क्षेमेन्द्र — बृहत्कथामंजरी

सोमदेव — कथासरित्सागर

अन्य कथा ग्रन्थ — वेतालपंचविंशतिका, सिंहासन द्वात्रिंशिका, शुकसप्तति

4.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्न

4.5 सारांश

4.6 मुख्य शब्दावली

4.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

4.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

4.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

अध्याय-5 : नाट्य साहित्य (भास से शूद्रक)

141—182

5.1 अध्याय के उद्देश्य

5.2 परिचय

- 5.3 भास से शूद्रक तक का नाट्य साहित्य
भास के 13 रूपक
कालिदास – मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, अभिज्ञानशाकुन्तल
अश्वघोष – शारिपुत्रप्रकरण
शूद्रक – मृच्छकटिकम्
- 5.4 अपनी प्रगति जांचिए, प्रश्न
- 5.5 सारांश
- 5.6 मुख्य शब्दावली
- 5.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर
- 5.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 5.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

अध्याय-6 : विशाखदत्त से भट्ट नारायण तक का नाट्य साहित्य

183–220

- 6.1 अध्याय के उद्देश्य
- 6.2 परिचय
- 6.3 विशाखदत्त से भट्टनारायण तक का नाट्य साहित्य
विशाखदत्त – मुद्राराक्षस
राजा हर्षवर्धन – प्रियदर्शिका, रत्नावली, नागानंद
भवभूति – मालतीमाधव, महावीरचरित, उत्तररामचरित
भट्टनारायण – वेणीसंहार
- 6.4 अपनी प्रगति जांचिए
- 6.5 सारांश
- 6.6 मुख्य शब्दावली
- 6.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

- 6.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
6.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

अध्याय-7 : अन्य काव्य विधाएँ (खण्ड काव्य और गीतिकाव्य)

221—260

- 7.1 अध्याय के उद्देश्य
7.2 परिचय
7.3 अन्य काव्य विधाएँ (खण्ड काव्य और गीतिकाव्य)
 (क) खण्डकाव्य
 कालिदास — ऋतुसंहार, मेघदूत
 (ख) गीतिकाव्य
 जयदेव — गीतगोविन्द
 गोवर्धनाचार्य — आर्यासप्तशती
7.4 अपनी प्रगति जांचिए
7.5 सारांश
7.6 मुख्य शब्दावली
7.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर
7.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
7.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

अध्याय-8 : अन्य काव्य विधाएँ (मुक्तक काव्य, स्तोत्र काव्य एवं चम्पूकाव्य)

261—304

- 8.1 अध्याय के उद्देश्य
8.2 परिचय
8.3 मुक्तक काव्य, स्तोत्र काव्य एवं चम्पूकाव्य
 (क) मुक्तक काव्य

भर्तृहरि — नीतिशतक, शृंगारशतक, वैराग्यशतक

अमरु — अमरुशतक

भल्लट — भल्लटशतक

घटकर्पर — घटकर्पर काव्य

पंडितराज जगन्नाथ — भामिनीविलास

(ख) स्तोत्रकाव्य

पुष्पदन्त — शिवमहिम्नः स्तोत्र

रावण — शिवताण्डव स्तोत्र

मयूरभट्ट — सूर्यशतक

बाणभट्ट — चण्डीशतक

शंकराचार्य — भजगोविन्दम् तथा अन्य स्तोत्र काव्य

पंडितराज जगन्नाथ — अमृतलहरी, सुधा लहरी, लक्ष्मीलहरी, करुणालहरी,
गंगालहरी

(ग) चम्पूकाव्य

त्रिविक्रमभट्ट — मदालसाचम्पू, नलचम्पू

सोमदेव — यशस्तिलकचम्पू

हरिश्चन्द्र — जीवन्धरचम्पू

भोज — रामायणचम्पू

सोड्डल — उदयसुन्दरी कथा

अनन्तभट्ट — भारतचम्पू

तिरुमलाम्बा — वरदाम्बिकापरिणयचम्पू

कर्णपुर — आनन्दवृन्दावन चम्पू

वेंकटाध्वरी – विश्वगुणादर्शचम्पू वरदाभ्युदचम्पू

अन्य चम्पू काव्य

- 8.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्न
- 8.5 सारांश
- 8.6 मुख्य शब्दावली
- 8.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर
- 8.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 8.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

अध्याय—1

महाकाव्य (अश्वघोष से भारवि)

अध्याय की रूपरेखा (Structure)

- 1.1 अध्याय के उद्देश्य
- 1.2 परिचय
- 1.3 अश्वघोष से भारवि तक के महाकाव्य
- 1.4 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्न
- 1.5 सारांश
- 1.6 मुख्य शब्दावली
- 1.7 अपनी प्रगति जाँचिए के उत्तर
- 1.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 1.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.1. अध्याय के उद्देश्य

- महाकाव्य विषयक अवधारणा को प्रस्तुत कर सकेंगे।
- अश्वघोष के कर्तृत्व एवं कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
- बुद्धचरित के आधार पर बौद्ध धर्म की समीक्षा कर पाएंगे।
- महाकवि कालिदास की श्रेष्ठता का विश्लेषण कर सकेंगे।
- रघुवंश का परिचय विस्तार से जान पाएंगे।
- कुमारसंभवम् से संबंधित विभिन्न अवधारणाओं को समझ पाएंगे।
- भारवि के अर्थगौरव से संबंधित जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।
- किरातार्जुनीयम् की अद्वितीयता का विश्लेषण कर पाएंगे।

1.2 परिचय

लौकिक संस्कृत साहित्य के इतिहास में महाकाव्यों का विशेष स्थान है। जैसा कि सर्वविदित है कि संस्कृत का प्रारम्भिक रूप काव्यमय रहा है। लौकिक साहित्य का आदिग्रन्थ रामायण 24 हजार श्लोकों में लिखा गया है। यह आदिकवि वाल्मीकि की काव्यमय प्रस्तुति थी। तदनन्तर एक लाख श्लोकों में निबद्ध रचना विश्व का विशालतम ग्रन्थ महाभारत महर्षि वेदव्यास आदि ऋषियों द्वारा लिखी गई। इन्हीं का अनुकरण करते हुए अश्वघोष ने बौद्धों की रामायण अर्थात् बुद्धचरित नामक महाकाव्य की रचना की। लगभग उसी समय महाकवि कालिदास ने रघुवंश व कुमारसम्भवम् नामक महाकाव्यों की रचना करके अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित की। उपर्युक्त सभी कवियों ने काव्य को सर्वग्राही बनाने के लिए विलष्ट संस्कृत का प्रयोग करने की अपेक्षा अल्प समासयुक्त पदावली अपनाकर सुललित भाषा में काव्य रचना की, परन्तु भारवि ने बौद्धिक व्यायाम के रूप में चित्रालंकारों का प्रयोग करके 'नारिकेलफलसम्मित' रचना की। इन्होंने सामान्य विषयों को भी गम्भीर रूप देकर एक नई परम्परा का प्रारम्भ किया। कहीं इन्होंने एक ही वर्ण से सारा श्लोक बना दिया। कहने का अर्थ है कि संस्कृत महाकाव्य परम्परा के इन अद्भुत विलक्षण ग्रन्थों का पठन-पाठन वर्तमान समाज में भी मनोरंजक होने के साथ-साथ पथ प्रदर्शक भी है।

1.3 अश्वघोष से भारवि तक के महाकाव्य

महाकाव्य—एक परिचय

लौकिक संस्कृत भाषा में काव्य रचना का आरम्भ महर्षि वाल्मीकि से हुआ। आदिकवि वाल्मीकि ने सर्वप्रथम राम के चरित्र को अपने काव्य का नायक बनाकर लोक भावनाओं के चित्रण के साथ पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक घटनओं को प्रस्तुत किया। इसके लिए उन्होंने जिस भाषा का प्रयोग किया, वह उस समय जनसामान्य की संस्कृत भाषा थी। किसी विषय का अलंकृत वर्णन कैसे हो? उसमें सरलता किस प्रकार आये और छोटे-छोटे मनोरम पदों से आकर्षक अर्थों की अभिव्यक्ति कैसे हो? इसकी रीति वाल्मीकि ने ही दिखाई। वाल्मीकि मुनि से प्रारम्भ हुई इस काव्य पद्धति में अध्यायों और सर्गों का प्रयोग किया गया था, अतः

उसे सर्गबद्ध पद्धति का नाम दिया गया। कालान्तर में इससे प्रेरणा लेकर और इनकी पद्धति का अनुसरण करते हुए जो काव्य लिखे गए, उन्हें महाकाव्य नाम दिया गया। काव्य शास्त्र के विद्वानों ने उन रचनाओं को ध्यान में रखते हुए महाकाव्य के लक्षण का निरूपण किया।

महाकाव्य का लक्षण

संस्कृत भाषा में महाकाव्य के नाम से जब पर्याप्त ग्रन्थों की रचना हो चुकी थी, तभी समीक्षकों का ध्यान इस काव्य प्रकार (महाकाव्य) के लक्षण देने की दिशा में गया। लक्ष्य का अनुसरण करने वाले लक्षण बने। भामह ने अपने काव्यालंकार में, दण्डी ने काव्यादर्श में, रुद्रट ने काव्यालंकार में तथा विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में (6/315-25) में महाकाव्य के वर्णनात्मक लक्षण दिये। इन सभी लक्षणों में महाकाव्यों के अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग का वर्णन किया गया है। इनमें विश्वनाथ कृत लक्षण व्यापक तथा अन्तिम होने के कारण महत्त्वपूर्ण एवं स्पष्ट भी है। प्रायः इस लक्षण का उपयोग किया जाता है —

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ।।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ।
शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ।।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः ।
इतिहासोद्भवं वृत्तयन्मद्वा सज्जनाश्रयम् ।।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत् ।।
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा ।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तिनम् ।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः ।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह ।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् ।।
संध्यासूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः ।

प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः ।।

संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ।

रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः ।

वर्णनीया यथायोगं सांगोपाङ्गा अमी इह ।

कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।

नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु ।। साहित्य 6.315–325

अर्थात् सर्गों से निबद्ध महाकाव्य होता है। उसमें धीरोदात्त गुणों से युक्त देवता विशेष नायक होता है। (यथा शिशुपालवध में श्रीकृष्ण तथा कुमारसंभवम् में कार्तिकेय)

अथवा धीरोदात्त गुणों से युक्त सत्कुलीन एक क्षत्रिय नायक होता है (यथा—नैषध में नल) अथवा एक वंश में उत्पन्न होने वाले कुलीन अनेक भी क्षत्रिय राजा नायक हो सकते हैं (यथा रघुवंश में दिलीपादि)।

शृंगार, वीर और शान्त रस में से कोई एक मुख्य रस होता है, अन्य सभी रस गौण होते हैं। इसमें नाटक की सभी सन्धियाँ (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण) होती हैं।

इतिहास से उद्भूत अथवा अन्य सज्जन विषयक कथानक होता है। उसमें चार वर्गों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से कोई भी एक प्रधान प्रयोजन होता है।

प्रारम्भ में नमस्कार (रघुवंश), आशीर्वाद (मुद्राराक्षस) अथवा वस्तुनिर्देश (किरातार्जुनीय, शिशुपालवधादि) होता है। किसी महाकाव्य में खलादिकों की निन्दा और सज्जनों के गुणों का कीर्तन होता है (धर्मशर्माभ्युदय)।

एक प्रकार के पद्यों से समाप्ति पर (सर्ग के अन्त में) अन्य छन्दों वाले पद्य विशेषों से न बहुत कम, न बहुत अधिक। आठ से अधिक सर्ग महाकाव्य में होने चाहिए। किसी—किसी महाकाव्य में कोई सर्ग अनेक प्रकार के छन्दों से समन्वित दिखाई देता है (यथा शिशुपालवध में चतुर्थ सर्ग, किरातार्जुनीय में पंचम सर्ग) सर्ग की समाप्ति पर आगे आने वाले सर्ग की कथा की सूचना होनी चाहिए।

सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रजनी, सायंकाल, अन्धकार, दिन, प्रातः काल, मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, वन और सागर, सम्भोग और विप्रलम्भ शृंगार, वीर रसादि प्रधान काव्य के होने पर भी इनका वर्णन करना चाहिए।

मुनि, स्वर्ग, पुर, यज्ञ, रण, यात्रा, विवाह, मन्त्र (चार उपायों की मन्त्रणा) पुत्र का जन्म आदि का यथासम्भव सांगोपांग वर्णन इसमें करना चाहिए।

चरित्र के नाम से (यथा—कुमारसंभव, कीचकवधादि) कवि के नाम से (भट्टिकाव्य) नायक के नाम से (रघुवंश) अथवा किसी दूसरे नाम से इसका नाम रखना चाहिए तथा सर्ग का नाम सर्ग में वर्णनीय कथा के नाम से होना चाहिए।

अश्वघोष

बौद्ध महाकवि अश्वघोष महान् दार्शनिक, धर्म प्रचारक और उच्च कोटि के विद्वान् थे। इनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था तथा ये साकेत (अयोध्या क्षेत्र) के निवासी थे। ये बौद्ध भिक्षु तथा आचार्य थे, जिन्हें भदन्त, महाकवि और महावादी भी कहा जाता है। बौद्ध साहित्य में इनका नाम उतनी ही श्रद्धा और भक्ति से लिया जाता है, जितना सनातन धर्म में आदिकवि महर्षि वाल्मीकि का लिया जाता है। अश्वघोष मूल रूप से साकेत के निवासी थे, किन्तु सम्राट कनिष्क के सम्पर्क के कारण ये पुरुषपुर (पेशावर) में रहने लगे थे। उनकी माता का नाम मिलता है, पिता का नहीं। “आर्यसुवर्णाक्षीपुत्रस्य साकेतस्य भिक्षोराचार्यस्य भदन्ताश्वघोषस्य महाकवेर्महावादिनः कृतिरियम्”—इनकी रचनाओं के अन्त में यह वाक्य मिलता है।

अश्वघोष को सभी विद्वानों ने मूलतः ब्राह्मण माना है। डॉ. विश्वनाथ भट्टाचार्य ने अपनी पुस्तक — “अश्वघोष ए क्रिटिकल स्टडी” में इन्हें बौद्ध भिक्षु बनने से पहले शैव मतानुयायी माना है। इस महाकवि ने अपने ब्राह्मण होने का परिचय अपनी कृतियों में कई स्थलों पर दिया है।

यज्ञभूमि का निर्माण यज्ञ में मन्त्रपाठपूर्वक आहुति देना इत्यादि विषयों का सूक्ष्म वर्णन इन्होंने किया है। आरम्भ में ब्राह्मण धर्म से सम्बद्ध ग्रन्थों का इन्होंने सूक्ष्म अध्ययन किया था। तदनन्तर बौद्ध धर्म में दीक्षित होने पर इन्होंने सम्बद्ध ग्रन्थों का भी अध्ययन किया और धर्मप्रचारक बने। उनके ज्ञान की परिधि व्यापक थी जिसकी प्रशंसा हुएनत्सांग तथा इत्सिंग ने भी की है।

अश्वघोष ने बौद्धधर्म के त्रियानों (श्रावकयान, प्रत्येक बुद्धयान एवं बोधिसत्त्वयान या महायान) के अतिरिक्त वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों का उन्होंने सम्यक अध्ययन किया था। जिससे अपनी कृतियों में अनेक आख्यान उन्होंने उद्धृत किये हैं। श्रीमद्भगवद्गीता का उनके “सौन्दरनन्द” काव्य पर प्रभूत प्रभाव दिखाई पड़ता है। रामायण का प्रभाव अश्वघोष की रचनाओं पर साफ दिखाई देता है। बुद्धचरित में भी उनकी भाषा, भाव, छन्द, शैली एवं प्रकृति वर्णन रामायण स्मरण करा ही देता है।

अश्वघोष का समय

अश्वघोष सामान्य रूप से कुषाण नरेश कनिष्क के समकालिक थे। 78 ई. में प्रचलित शक संवत् को कनिष्क ने ही प्रारम्भ किया था। अतः संस्कृत के अन्य कवियों के समान अश्वघोष के समय और स्थान के विषय में अनिश्चितता नहीं है। अश्वघोष का समय प्रथम शताब्दी ई. है। कनिष्क तथा अश्वघोष के संबन्ध के विषय में कई कथाएँ प्रचलित हैं। एक कथा में निर्दिष्ट है कि कनिष्क ने मगध राज्य पर आक्रमण करके राजा के समक्ष दो माँगें रखीं – एक तो बुद्ध के भिक्षा पात्र की और दूसरे कवि अश्वघोष को पुरुषपुर ले जाने की। अत्यधिक कष्ट से मगधराज ने दोनों के विषय में सहमति दी। तदनुसार अश्वघोष पाटलिपुत्र छोड़कर कनिष्क के साथ कश्मीर चले गए।

अश्वघोष की रचनाएँ

अश्वघोष के नाम से अनेक रचनाएँ प्रचलित हैं, जिनमें काव्य, दर्शन तथा धर्मप्रचारक विषयक ग्रन्थ भी हैं, लेकिन सभी प्रचारित ग्रन्थों का लेखक एक ही अश्वघोष को मानना उचित नहीं है, क्योंकि कुछ रचनाएँ तो बहुत बाद की भी हैं। इनमें से अश्वघोष की प्रमाणसिद्ध काव्यकृतियाँ चार हैं –

1. बुद्धचरित – यह महाकाव्य मूलतः 28 सर्गों का था, किन्तु अभी संस्कृत में यह अधूरा ही प्राप्त है।
2. सौन्दरनन्द – 18 सर्गों का पूर्णतः उपलब्ध संस्कृत महाकाव्य।
3. शारिपुत्रप्रकरण – नौ अंकों का रूपक जो अंशतः प्राप्त है।

4. राष्ट्रपालनाटक — यह केवल चीनी भाषा में अनुवाद मात्र में सुरक्षित गेय नाटक है। इसके कुछ उद्धरण संस्कृत ग्रन्थों में मिलते हैं।

बुद्धचरितम्

यह अश्वघोष कृत 28 सर्गों का महाकाव्य है, किन्तु पूरा ग्रन्थ संस्कृत भाषा में उपलब्ध नहीं है। संस्कृत में प्रथम सर्ग के आरम्भिक सात श्लोक तथा चौदहवें सर्ग के 32वें श्लोक से ग्रन्थ के अन्त तक का भाग नहीं मिलता। चीनी और तिब्बती भाषा में पूरे महाकाव्य का अनुवाद सुरक्षित है, जिनके आधार पर ई.एच. जॉनस्टन ने इसका अंग्रेजी अनुवाद करके उपलब्ध मूल भाग के सम्पादन एवं विस्तृत भूमिका के साथ प्रकाशित कराया। मूल भाग को संस्कृत में पूरा न देखकर चीनी व तिब्बती भाषा के अनुवादों का सहारा लेकर संस्कृत के कई विद्वानों ने इन्हें पूरा करने का प्रयास किया है।

संस्कृत में प्राप्त (प्रथम 14 सर्ग) बुद्धचरित में महात्मा बुद्ध के जन्म से लेकर बुद्धत्व की प्राप्ति तक का ही प्रतिपादन होता है। शेष लुप्त भाग में धर्मचक्रप्रवर्तन से लेकर बुद्ध के महापरिनिर्वाण एवं अशोक के द्वारा स्तूप निर्माण तक का वर्णन है। बुद्धचरित का चीनी अनुवाद (फो-शो-हिंग-त्सन-किंग) धर्मक्षेत्र नामक भारतीय भिक्षु ने 414 से 421 ई. के बीच में किया था। इसका तिब्बती अनुवाद क्षितीन्द्रभद्र अथवा महीन्द्रभद्र एवं मतिराज के द्वारा सातवीं आठवीं शताब्दी ई. में हुआ था।

बुद्ध का संक्षिप्त परिचय

सर्ग	विषय	श्लोक संख्या
1.	भगवत्प्रसूति: (भगवान् का जन्म)	89
2.	अन्तःपुरविहार: (अन्तःपुर विहार)	56
3.	संवेगोत्पत्ति (संवेग-उत्पत्ति)	65
4.	स्त्री विघातन (स्त्री निवारण)	103
5.	अभिनिष्क्रमणम् (अभिनिष्क्रमण)	87
6.	छन्दक-निवर्तन: (छन्दक विसर्जन)	68

7.	तपोवन प्रवेशः (तपोवन प्रवेश)	58
8.	अन्तःपुर विलापः (अन्तःपुर विलाप)	87
9.	कुमारान्वेषणम् (कुमार का अन्वेषण)	82
10.	श्रेण्याभिगमनम् (बिम्बिसार का आगमन)	41
11.	कामनिर्गर्हणः (काम निन्दा)	73
12.	अराड दर्शनः (अराडदर्शन)	121
13.	मारविजयः (काम पर विजय)	73
14.	बुद्धत्व प्राप्तिः (बुद्धत्व प्राप्ति)	112 (32 तक वास्तविक)

प्रथम सर्ग (भगवत्प्रसूतिः)

इसमें शाक्यराज शुद्धोधन एवं उनकी धर्मपत्नी माया का गुणगान करते हुए रानी के गर्भधारण का वर्णन किया है। रानी का स्वप्न तथा उनका लुम्बिनी नामक वन में निवास तथा लोक कल्याणार्थ पुत्र का जन्म, भविष्यवक्ताओं द्वारा उसके मोक्षमार्ग प्रदर्शक ऋषि होने से संबंधित भविष्यवाणी सुनकर राजा का भयभीत होना दर्शाया गया है।

द्वितीय सर्ग (अन्तःपुरविहार)

पुत्ररत्न प्राप्ति के बाद राजा शुद्धोधन की अत्यन्त उन्नति व स्वार्थसिद्धि होने से बालक का नाम सर्वार्थसिद्ध (सिद्धार्थ) रखा गया। सिद्धार्थ की माता माया देवी का स्वर्गवास एवं मौसी गोतमी द्वारा उसका पालन-पोषण किया गया। असित महर्षि से अपने बच्चे की मोक्ष प्राप्ति की राह चुनने संबंधी भविष्यवाणी सुनकर शाक्यराज ने उसकी आसक्ति विषयों में उत्पन्न करने का प्रयास किया गया और असीम सुन्दरी यशोधरा से उसका विवाह करा दिया तथा सभी को यह आदेश दिया गया कि मन को क्षुब्ध करने वाला कोई भी दृश्य कुमार न देख सके। फिर भी कुमार अधीर पुरुष की तरह विषय सुख में आसक्त नहीं हुआ, स्त्रियों में उसका अनुचित अनुराग नहीं हुआ। उसने दूसरों के दुःख के लिए विद्या आदि नहीं सीखी, अपितु सुख देने वाले पवित्र ज्ञान का अध्ययन किया। उसने द्वेषी के अहंकार को युद्ध के बिना ही सदाचार

रूपी कुठार से काट दिया। उसने यज्ञ को उतना महत्त्व नहीं दिया, जितना व्यवहार (न्याय) को। तदनन्तर यशोधरा ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम राहुल रखा गया। अब राजा शुद्धोधन को लगा कि पुत्र का मुख देखकर कुमार अब मोक्षमार्गगामी नहीं होगा।

तृतीय सर्ग (संवेगोत्पत्ति)

किसी समय सिद्धार्थ की वन देखने की इच्छा हुई। राजा ने वन विहार की आज्ञा तो दे दी, परन्तु कोमल चित्त वाले राजकुमार के मन में संवेग (वैराग्य) उत्पन्न न हो जाए, इस विचार से राजमार्ग में रोगादि से पीड़ित लोगों के आवागमन पर रोक लगा दी। मार्ग में कुमार का सौन्दर्य देखने के लिए नर-नारियों का अलंकृत चित्रण किया गया। तदनन्तर देवों द्वारा एक वृद्ध पुरुष को कुमार के रास्ते में लाया गया, जिसे देखकर कुमार सोच में पड़ जाता है और सारथी से इस दीन-हीन अवस्था के विषय में प्रश्न करता है तथा क्या यह दोष मुझे भी होगा? तो न चाहते हुए भी सारथी को सच्चाई बतानी पड़ती है कि वृद्धावस्था अवश्यम्भावी है। कुमार बहुत चिन्तित हो जाता है। तदनन्तर क्रमशः व्याधिग्रस्त मनुष्य और मृतक पुरुष को देखकर और उत्तम, मध्यम, नीच कोई भी हो सबका विनाश निश्चित है — यह सुनकर वह नवीन व्रती मुनि जैसा वैरागी हो जाता है।

चतुर्थ सर्ग (स्त्री विधातन)

पद्मषण्ड नामक वन में उस नवीन मुनि को अप्सरासम स्त्रियों ने अपने शरीर-सौन्दर्य पर मुग्ध करने के अनेक प्रयास किये, लेकिन सिद्धार्थ को आसक्त करने में पूर्णतया असमर्थ रहती हैं। क्या ये स्त्रियाँ यौवन को क्षणिक नहीं समझती हैं? सब कुछ हर लेने वाली मृत्यु से क्या ये अनभिज्ञ हैं? जो किसी वृद्ध, रोगी या मृतक को देखकर उद्विग्न नहीं होता, वह अचेतन (जड़) सदृश है — ये विचार सिद्धार्थ के मनोमस्तिष्क पर छाये रहते हैं। कुमार को इस तरह ध्यान मग्न एवं विषयों में निःस्पृह देखकर नीतिशास्त्र के ज्ञाता व राजा द्वारा नियुक्त उदायी उसे अनेक उदाहरणों द्वारा समझाने का प्रयास करते हैं कि बड़े-बड़े ऋषियों ने भी निन्दित

विषयों का उपभोग किया है, आप तो राजकुमार हैं। सिद्धार्थ ने कहा कि आप मित्र होकर मुझे इन अशुभ विषयों में फंसाकर क्यों ठग रहे हो?

प्रासाद में वापिस आने पर सिद्धार्थ यही सोचता रहा कि जब मृत्यु निश्चित है और अनित्यता सर्वव्यापी है, तो मैं इनमें मूर्खबुद्धि की तरह आसक्त कैसे होऊँ? उस रात्रि उसे नींद नहीं आई।

पंचम सर्ग (अभिनिष्क्रमण)

एक बार फिर सिद्धार्थ राजा की आज्ञा पाकर वन प्रान्त देखने निकल पड़े। उसने किसानों द्वारा हल से पृथ्वी को जोतते हुए देखा और उस क्रिया में असंख्य कीड़े-मकोड़े को मरते देखकर वह बड़ा व्याकुल हुआ। वह दुखी होकर बोला – संसार सचमुच में दीन है। वहाँ जम्बु वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर जन्म-मृत्यु के विषय में चिंतन-मनन किया। तभी एक पुरुष भिक्षु वेश में उसके पास आया। राजपुत्र ने उससे पूछा कि आप कौन हैं? तब उसने कहा – जन्म-मृत्यु से डरा हुआ मैं संन्यासी हूँ तथा मोक्ष पाने के लिए मैंने संन्यास लिया है और परम कल्याणमय अविनाशी पद खोज रहा हूँ। इस संन्यासी से सिद्धार्थ बहुत प्रभावित हुआ और उससे धर्म का ज्ञान प्राप्त कर गृहत्याग का विचार आया। वह महल वापिस आ गया और अपने पिता से संन्यास की आज्ञा मांगी। राजा ने उसे बहुत समझाया कि यौवन अवस्था में चंचल मन को रोकना अत्यन्त कठिन है। विषयों के प्रति तरुण की इन्द्रियाँ उत्कण्ठित रहती हैं तथा व्रत के दुःख सहने में निश्चित रूप में असमर्थ रहता है और पिता, पत्नी और पुत्र के त्याग से अधर्म ही होगा। तब सिद्धार्थ ने उत्तर दिया कि हे राजन्! यदि चार बातों (मृत्यु-रोग-वृद्धावस्था-विपत्ति) में मेरे रक्षक बनो तो मैं वन नहीं जाऊँगा। राजा अपने पुत्र को सन्तुष्टिदायक उत्तर नहीं दे पाता। सिद्धार्थ महल में जाता है और रात्रि में सोती हुई स्त्रियों को देखकर ज्यादा वैरागी हो जाता है। वह महल से उतरकर छन्दक नामक अश्वरक्षक को जगाकर अश्व लाने को कहता है। तदनन्तर वह गृहत्याग कर देता है और नगर से निकलते समय यह प्रतिज्ञा करता है – “जन्म एवं मृत्यु का अन्त देखे बिना इस कपिलवस्तु नामक नगर में प्रवेश नहीं करूँगा।”

षष्ठ सर्ग (छन्दकनिवर्तन)

सूर्योदय होने पर सिद्धार्थ ने भार्गव ऋषि का आश्रम देखा। उसने प्रसन्न होकर छन्दक को कहा कि तुमने मेरा महान् प्रिय किया है। अब अश्व (कन्थक) लेकर लौट जाओ। छन्दक बहुत दुःखी होता है और उसे भी अपने साथ रखने का आग्रह करता है, लेकिन सिद्धार्थ द्वारा युक्तियुक्तपूर्वक समझाये जाने पर राम को वन में छोड़ कर जाते सुमन्त्र की भाँति विलाप करता हुआ छन्दक वापिस नगर लौटने को तैयार हुआ। तब सिद्धार्थ ने सभी राजसी आभूषण एवं वस्त्र त्याग कर छन्दक को दे दिए और गेरुए वस्त्र धारण किए।

सप्तम सर्ग (तपोवन प्रवेश)

सिद्धार्थ ने उस तपोवन में अनेक ऋषियों को तपस्या करते हुए देखा। कोई शास्त्रानुकूल कन्द-मूल-फल-जल पर ही आश्रित हैं तो कोई यज्ञ-हवन में रत हैं। तब वह उनसे इन क्रियाओं में प्रवृत्त होने का कारण पूछता है तो एक द्विजाति (ब्राह्मण) ने कहा कि बहुत काल से संचित श्रेष्ठ तपों से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। केवल स्वर्गप्राप्ति के लिए इतना प्रयास सिद्धार्थ को व्यर्थ लगा और लघुफल वाला प्रतीत हुआ। साथ ही कन्दमूल फल से अगर स्वर्गप्राप्ति है, फिर तो सारे पशु-पक्षी स्वर्ग ही जाते होंगे तथा जल को तीर्थ या पाप धोने वाला मानना भी मूढ़ता ही है। कुछ रात्रि वहाँ निवास करके और धार्मिक तपस्याओं की परीक्षा करके वह तपोभूमि छोड़कर चल पड़ता है और कहता है कि आप सबका यह धर्म स्वर्ग के लिए है, किन्तु मेरी अभिलाषा मोक्ष की है। तब एक द्विज ने बताया कि आप उत्तर दिशा में हिमालय की ओर जाइए। वहाँ पर अराड मुनि निवास करते हैं, जो नैष्ठिक हैं, वे ही आपको मोक्ष का मार्ग बताने में समर्थ हैं। तदनन्तर सिद्धार्थ अराड मुनि से मिलने चल पड़ा।

अष्टम सर्ग (अन्तःपुर विलाप)

अश्वरक्षक छन्दक जब नगर वापिस लौटा तो मार्ग में नगरवासियों ने उसकी बहुत निन्दा की और जैसे ही छन्दक को अकेले वापस आया देखा तो महल की औरतें फूट-फूटकर रोने लगी और छन्दक को उपालम्भ देने लगी। तब दुःखी हृदय से छन्दक ने उत्तर दिया कि

हम दोनों (छन्दक व अश्व) निर्दोष हैं। हमने स्वामी को नहीं छोड़ा, बल्कि उन्होंने हमें छोड़ दिया। सभी को दुख है कि सुकुमार सिद्धार्थ ठण्ड, गर्मी और वर्षा को कैसे सहन करेगा? दूसरों को जो हमेशा दानादि देकर संतुष्ट करता आया है, वह याचना कैसे करेगा? पति तो निष्ठुर हो सकता है, लेकिन एक पिता अपने पुत्र को छोड़कर वन में कैसे जा सकता है? राजा शुद्धोधन भी राजा दशरथ के समान शोकमग्न हो गए हैं। तब वे मन्त्रियों को कुमार की खोज में लगा देते हैं।

नवम सर्ग (कुमार अन्वेषण)

राजा द्वारा भेजे गए मन्त्री एवं पुरोहित भार्गव के आश्रम में गए। ऋषि भार्गव ने बताया कि राजकुमार मोक्ष की इच्छा से अराड मुनि की ओर चला गया। वे शीघ्रता से उस मार्ग पर जाते हैं और कुमार को ढूँढ लेते हैं। अब पुरोहित ने सनातन धर्म का आश्रय लेकर सिद्धार्थ को समझाया और घर में रहकर तीन ऋणों (पितृ, ऋषि, देव) से उऋण होना ही मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बताया और शास्त्रों में वर्णित भक्तिमार्ग उचित रीति से सेवन करने को कहा। इसके लिए अनेक राजाओं के प्रमाण भी प्रस्तुत किए, परन्तु सिद्धार्थ ने उन सभी का तार्किक उत्तर देते हुए उन्हें अपरिपूर्ण प्रमाणित किया तथा प्रतिज्ञा की “यदि सूर्य भी पृथ्वी पर गिर जाये, हिमालय स्थिरता छोड़ दे, किन्तु मैं बिना तत्त्व देखे, इन्द्रियों को विषयों की ओर मोड़कर, अज्ञानी बनकर घर नहीं आऊँगा। मैं प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर लूँगा, किन्तु असफल होकर घर में प्रवेश नहीं करूँगा।”

दशम सर्ग (श्रेण्याभिगमन)

सिद्धार्थ अराड मुनि से मिलने की इच्छा लिए राजगृह राज्य से गुजर रहा था तो वहाँ के नगरवासी उन्हें देखकर मोहित से उसके पीछे-पीछे चल पड़े। भीड़ देखकर वहाँ के राजा श्रेण्य (बिम्बसार) ने मन्त्रियों से पूछा कि यह कौन है? “शाक्यराज का पुत्र परिव्राजक हो गया है” जानकर वह उसके पास जाता है। पाण्डव पर्वत पर उनका वार्तालाप होता है। बिम्बसार उन्हें अपना आधा राज्य भेंट करने को तैयार है तथा प्रार्थना करते हैं कि युवावस्था में संन्यासी

मत बनिए। यह आयु राजसुख पाने की है, यदि आपको धर्म ही करना है तो यज्ञ कीजिए। इस प्रकार अनेक तर्कों द्वारा बिम्बसार उन्हें समझाने का प्रयास करता है।

एकादश सर्ग (कामविगर्हण)

सिद्धार्थ बिम्बसार की मित्रता को नमन करते हुए कहता है कि मैं विषधरों से उतना नहीं डरता जितना विषयों से डरता हूँ। काम अनित्य हैं और ज्ञान रूपी धन के चोर हैं। कामासक्त पुरुषों को मृत्युलोक में क्या स्वर्ग में भी शान्ति नहीं मिलती है। संसार में काम के समान अनर्थ दूसरा नहीं, किन्तु मोह के कारण लोग उसी में आसक्त हैं। मान्धाता, नहुष, एड आदि राजाओं को भी कभी संतुष्टि नहीं मिली। विषयों में स्वाद अल्प है और बन्धन अधिक है। स्वप्न के उपभोग के समान शत्रु की भाँति अशुभकारी उन विषयों में किस आत्मवान् को सुख होगा? जवानी में ही विकार होते हैं, बुढ़ापे में नहीं — यह बात भी असत्य है। यज्ञों के लिए नमस्कार है। मैं ऐसा सुख नहीं चाहता जो दूसरों को दुःख देकर चाहा जाता है। जिस पद में न जरा का भय है, न रोग है और न मृत्यु है, मैं तो उसी मोक्ष को चाहता हूँ। यह सुनकर राजा बिम्बसार अपने नगर राजगृह लौट जाता है।

द्वादश सर्ग (अराड दर्शन)

सिद्धार्थ अराड मुनि के आश्रम पहुँच जाता है। अराड मुनि उनका स्वागत करते हुए और अपना सिद्धान्त बताते हुए प्रकृति, विकार, जन्म-मृत्यु, जरा, क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, व्यक्त-अव्यक्त का रहस्य बताते हैं। अज्ञान, कर्म और तृष्णा को संसार का हेतु बताते हैं। इन तीनों में स्थित रहने वाला जन्तु जन्म-जरा-मृत्यु के पार नहीं जा सकता। तदनन्तर अहंकार, अविद्या, तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र तथा ब्रह्मचर्य आदि का भी वर्णन करते हैं। तत्पश्चात् समाधि का वर्णन करते हुए जीवनमुक्त (मोक्ष) का रहस्य भी प्रतिपादित करने का प्रयास करते हैं, लेकिन सिद्धार्थ इनसे सन्तुष्ट नहीं हुआ और इस ज्ञान में अनेक भ्रान्तियाँ प्रतिपादित करता है। इस प्रकार वह कुमार अराड का धर्म अपूर्ण है — ऐसा जानकर वहाँ से चला जाता है। फिर उद्रक मुनि के आत्मा स्वीकार करने के कारण उनके भी दार्शनिक विचारों से सहमत नहीं

हो पाता। सिद्धार्थ मोक्षप्राप्ति के लिए पाँच अन्य भिक्षुओं के साथ कठोर तपस्या करने लगता है। छह वर्ष तक कठोर उपवास करके शरीर को कृश कर लेता है। उन्हें अहसास होता है कि कठोर उपवास करके शरीर को कष्ट देने से भी मोक्ष प्राप्ति संभव नहीं है। वह गोपराज की कन्या द्वारा लाई गई पायस (खीर) खा लेता है। यह देखकर वे पाँचों भिक्षु उसे धर्म से निवृत्त समझ कर छोड़ जाते हैं। अब फिर सिद्धार्थ एक महावृक्ष के नीचे बैठकर समाधि लगा लेते हैं और जब तक कृतार्थ न हो जाऊँ, तब तक इससे नहीं उठूँगा, ऐसा निश्चय कर लेता है।

त्रयोदश सर्ग (मारविजय)

मोक्षमार्गी सिद्धार्थ को देखकर मार (कामदेव) चिंतित व व्याकुल हो उठता है। उसने सिद्धार्थ को विचलित करने के लिए अनेक प्रयत्न किये, लेकिन वह पूर्णतया असफल रहा। फिर वह अपनी सेना को बुला लेता है और सिद्धार्थ की समाधि भंग करने के लिए उन्हें आदेश देता है, लेकिन उनको डराने में तथा उसका ध्यान भंग करने में वे सभी असफल होते हैं। यहाँ अश्वघोष की उपमाएँ अत्यन्त दर्शनीय हैं। तदनन्तर एक आकाशवाणी कामदेव को समझाती है कि यह मुनि अपना निश्चय नहीं छोड़ेगा। अतः तुम व्यर्थ प्रयास मत करो। मार (कामदेव) पराजित होकर चला जाता है।

चतुर्दश सर्ग (बुद्धत्व प्राप्ति)

सिद्धार्थ ने परम तत्त्व को जानने की इच्छा से ध्यान लगाया था, उसमें वह सफल हुआ। उसे अपने पूर्व जन्मों का स्मरण हो आया और संसार केले के गर्भ की भांति निःसार है — यह निश्चय हुआ। उन्हें परम दिव्य चक्षु प्राप्त हुए जिससे सभी प्राणियों के उत्थान—पतन देखते हुए उनकी दयालुता बढ़ी। ये बेचारे चित्त—चांचल्य से ही विभिन्न योनियों को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार कठिनाई से प्राप्त होने वाला देवलोक भी क्षणिक व अनिश्चित देखा। कर्मभाव को ही उसने मूल कारण देखा। तृष्णा के कारण वेदना को जाना। विज्ञान एवं नामरूप को एक—दूसरे का कारण माना। इस प्रकार वह ज्ञेय को जानकर, बुद्ध होकर ध्यान से बाहर निकला।

उसने अष्टांग योग मार्ग से परम शान्ति पायी। तत्पश्चात् लोक का उपकार करने के लिए और जगत् की मुक्ति के लिए अपना मन लगाया और काशीपुरी जाने को तत्पर हुए।

सौन्दरनन्द महाकाव्य

अश्वघोष का दूसरा महाकाव्य सौन्दरनन्द है। इसके अठारह सर्गों में बुद्ध के सौतेले भाई नन्द के अपनी पत्नी सुन्दरी के प्रति अत्यधिक अनुराग और अन्त में विरक्त होकर बुद्ध के धर्म में दीक्षा लेने की कथा का वर्णन है। इसलिए इस काव्य का आरम्भिक भाग शृंगार प्रधान है। उसमें नन्द और सुन्दरी के प्रेम का वर्णन किया गया है। उसमें लीन नन्द अपने भाई बुद्ध के आगमन पर भी उनका स्वागत नहीं करता। जब उसे सद्बुद्धि आती है तो वह बुद्ध की शरण में जाता है। महात्मा बुद्ध उसे सुन्दरी से भी अधिक सुन्दर अप्सराओं के दर्शन कराते हैं। इस प्रसंग में पहले नन्द और सुन्दरी के अलग-अलग विरह का वर्णन अत्यन्त सरस है। पुनः नन्द के अन्तःसंघर्ष का चित्रण बड़ा मनोवैज्ञानिक और संगत है। अन्त में बुद्ध के उपदेशों का प्रतिपादन कवि ने उपमा आदि अलंकारों का स्वाभाविक उपयोग करते हुए रोचक तथा सशक्त ढंग से किया है।

सौन्दरनन्द महाकाव्य केवल संस्कृत में ही मिला है, इसके रूपान्तर तिब्बती या चीनी भाषा में नहीं हुए थे। ललित पक्ष के अत्यधिक निवेश के कारण सम्भवतः मोक्षधर्म प्रवण बौद्धों ने इसके प्रति उपेक्षा दिखायी। सौन्दरनन्द पर शैली की दृष्टि से रामायण का तो प्रभाव है ही, गीता का विषय की दृष्टि से प्रभूत प्रभाव है। गीता के अठारह अध्यायों के समान इसमें 18 सर्ग हैं। जिस प्रकार गीता में कर्तव्य पथ से च्युत अर्जुन को श्रीकृष्ण ने जो उपदेश दिया है, उसी प्रकार बुद्ध ने भोग विलास में लिप्त अपने भाई नन्द को उपदेश देकर सन्मार्ग पर प्रवृत्त किया है। अर्जुन और नन्द दोनों के चरित्र में गुरुभक्ति और शरणागति है।

सौन्दरनन्द का परवर्ती साहित्य पर भी पुष्कल प्रभाव है। इसके नैतिक उपदेश नीतिशास्त्रीय ग्रन्थों में शब्द परिवर्तन करके दिये गये हैं। इसके अष्टम सर्ग में स्त्री निन्दा करते हुए कहा गया है —

वचनेन हरन्ति वल्गुना निशितेन प्रहरन्ति चेतसा ।

मधु तिष्ठन्ति वाचि योषितां हृदये हलाहलं महद्विषम् ।। सौ. 8.35

अर्थात् औरतें अपनी मनोहर वाणी से आकर्षित करती हैं और तीव्र हृदय से चोट करती हैं। उनकी बोली में मधु तथा दिल हलाहल नामक तीव्र विष से भरा रहता है।

यह भाव संस्कृत के नीति साहित्य में कई स्थलों पर दुहराया गया है। पंचतन्त्र के मित्रभेद में, क्षीर स्वामी ने अमरकोश की टीका में, भर्तृहरि ने शृंगारशतक में, वल्लभदेव ने 'सुभाषितावली' में तथा हितोपदेश के मित्रलाभ में इसी श्लोक का प्रयोग हुआ है। कहीं कुछ शब्द बदले हैं और कहीं ये ही शब्द हैं।

चंचल इन्द्रियाँ दुश्मनों से भी ज्यादा भयंकर कैसे हैं —

न च प्रयति नरकं शत्रुप्रभृतिभिर्हतः ।

कृष्यते तत्र निघ्नस्तु चपलैरिन्द्रियैर्हतः ।। सौ. 13.33

दुश्मनों के हाथ मरकर मनुष्य नरक नहीं जाता है, किन्तु चंचल इन्द्रियों से मारा गया बेचारा घसीटकर नरक ले जाया जाता है।

सौन्दरनन्द में महात्मा बुद्ध का उपदेश पाकर नन्द कहता है —

न मे प्रियं किंचन नाप्रियं मे न मेऽनुरोधोऽस्ति कुतो विरोधः ।

तयोरभवात् सुखितोऽस्मि सद्यो हिमातपाभ्यामिव विप्रयुक्तः ।। सौन्दर. 17.67

मुझे न कुछ प्रिय है और न अप्रिय है, न अनुरोध है और न विरोध है। इन दोनों के अभाव से मैं अब सर्दी-गर्मी के प्रभाव से मुक्त हुए की तरह सुखी हूँ।

सौन्दरनन्द के अंत में अश्वघोष कहते हैं —

प्रायेणालोक्य लोकं विषयरतिपरं मोक्षात् प्रतिहतं

काव्यव्याजेन तत्त्वं कथितमिह मया मोक्षः परमिति । सौन्दर 18.64

संसार को प्रायः कामोपभोग में लीन तथा मोक्ष से विमुख देखकर मुक्ति को ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समझते हुए मैंने इस काव्य में यथार्थ वस्तु (मोक्ष) का ही उपदेश दिया है।

अश्वघोष का साहित्यिक वैशिष्ट्य

अश्वघोष को संस्कृत साहित्य के प्रारम्भिक कवियों में गिना जाता है, जब संस्कृत काव्य में जटिलता का समावेश नहीं हुआ था। पौराणिक शैली का सर्वत्र प्रचार था। इसलिए

अश्वघोष ने भी अपने युग की सरल अल्पसमासयुक्त पदावली अपनाकर अपनी बातों से सुललित भाषा में काव्य रचना की। उनकी कविता—रीति कालिदास के समान वैदर्भी ही है।

अश्वघोष के दोनों महाकाव्यों में पूर्वार्ध काव्य प्रधान है तथा उत्तरार्ध दर्शन प्रधान है। काव्य प्रधान अंशों में तो अश्वघोष इस प्रकार तन्मय होकर कवित्व और लालित्य का अभिव्यंजन करते हैं मानो वे अपने धर्म विषयक लक्ष्य को भूल गये हों। बुद्धचरित के सप्तम सर्ग में सिद्धार्थ के तपोवन—प्रवेश के समय अत्यन्त मनोहारी चित्रण कवि द्वारा किया गया है। भाषा की सरलता के अतिरिक्त पदावृत्ति द्वारा सौंदर्य उत्पन्न करने की इस पद्य में प्रचूर क्षमता है —

हृष्टाश्च केका मुमुचुर्मयूरा दृष्ट्वाम्बुदं नीलमिवोन्नमन्तः।

शष्पाणि हित्वाभिमुखाश्च तस्थुर्मगाश्चलाक्षा मृगचारिणश्च॥ बुद्ध. 7.5

अश्वघोष ने अपने काव्यों में अलंकार योजना भी बड़े कौशल से की है। उपमा के प्रति उनका विशेष आकर्षण है। अन्य अलंकारों में अनुप्रास, यमक, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, वक्रोक्ति, एकावली आदि प्रमुखता से प्रयुक्त हैं। सौन्दरनन्द के दर्शन प्रधान सर्गों में कवि ने उपमाओं की निरन्तर वर्षा की है। कहीं सीधे उपमान हैं तो कहीं दृष्टांत के रूप में दिये गये हैं। जैसे एक स्थान पर कवि कहते हैं कि बीती हुई ऋतु पुनः लौट जाती है, क्षीण चन्द्रमा बढ़ जाता है, किन्तु नदियों का जल और मनुष्यों का यौवन चले जाने के बाद फिर नहीं लौटता —

ऋतुर्व्यतीतः परिवर्तते पुनः क्षयं प्रयातः पुनरेति चन्द्रमा

गतं गतं नैव तु सन्निवर्तते जलं नदीनां च नृणां च यौवनम्॥ सौन्दर. 9.28

सामान्यतः दर्शन के गूढ़ रहस्यात्मक विषयों को अश्वघोष सरल, हृदयग्राही साधनों से ही स्पष्ट करते हैं, किन्तु कहीं—कहीं कवित्व के चक्र में दुरुहता और प्रतीकात्मकता का भी निवेश कर देते हैं, जैसे —

एकं विनिन्ये स जुगोप सप्त, सप्तैव तत्याज ररक्ष पंच।

प्राप त्रिवर्गं बुबुधे त्रिवर्गं, जज्ञे द्विवर्गं प्रजहौ द्विवर्गम्॥ बुद्ध. 2.41

अर्थात् राजा शुद्धोधन ने एक (मन) को वश में किया, सात (शरीर के सप्त धातुओं या राज्य के सात अंगों) की रक्षा की, सात (राजा के सात दुर्गुणों) को त्यागकर पाँच (तत्त्वों या पाँच उपायों) की रक्षा की, त्रिवर्ग (धर्म—अर्थ—काम) को प्राप्त किया और त्रिवर्ग

(शत्रु-मित्र-उदासीन) को समझ लिया, द्विवर्ग (नीति-अनीति) को समझ लिया एवं द्विवर्ग (काम-क्रोध तथा राग-द्वेष) को छोड़ दिया।

अश्वघोष व्याकरण शास्त्र के पण्डित थे। धातुरूपों और लकारों के प्रयोग से वे यह बात सिद्ध करते हैं। लिट् लकार के प्रति उनका उद्भूत आकर्षण है, जिससे अकेले सौन्दरनन्द में इस लकार का 460 बार प्रयोग है। लिट् लकार का 12 बार प्रयोग तो इसी श्लोक में है—

रुरोद मम्लौ विरुराव जग्लौ, बभ्राम तस्थौ विललाप दध्यौ।

चकार रोषं विचकार माल्यं, चकर्त वक्त्रं विचकर्ष वस्त्रम्॥ सौन्दर 4.34

अर्थान्तर न्यास के रूप में अश्वघोष ने अनेक सूक्तियाँ दी हैं —

1. व्यसनान्ता हि भवन्ति योषितः। (सौ. 8.31)
2. प्रमदानामगतिर्न विद्यते (सौ. 8.44)
3. सर्वस्य लोके नियतो विनाशः (बु. 3.59)
4. वरं मनुष्यस्य विचक्षणो रिपुः, न मित्रमप्राज्ञमयोगपेशलम् (बु. 8.35)
5. तमेव मन्ये पुरुषार्थमुत्तमं, न विद्यते यत्र पुनः पुनः क्रिया। (बु. 11.59)
6. सर्वेषु भूतेषु दया हि धर्मः (बु. 9.17)
7. प्रहीणदोषो ह्यनृतं न वक्ष्यति (बु. 9.76)
8. सद्भिः सहीया हि सतां समृद्धिः (बु. 10.26)
9. निर्बन्धिनः किञ्चन नास्त्यसाध्यं (बु. 13.60)
10. कदलीगर्भनिःसार संसार (बु. 14.6)
11. कामा ह्यनित्याः कुशलाथंचौरा (बु. 11.9)
12. कामाभिभूता हि न यान्ति शर्म त्रिविष्टपे किं बत मर्त्यलोके (बु. 11.10)

इन सूक्तियों में भाषा की सरलता तथा अर्थ का गौरव निहित है।

महाकवि कालिदास

कविकुलकलाधर कविवर कालिदास की कमनीयकलेवर कविता विश्व के किस सहृदय को आनन्दमग्न नहीं कर देती? महाकवि कालिदास हमारे राष्ट्रीय कवि तथा भारतीय संस्कृति

के प्रमुख परिपोषक थे। भारत की संस्कृति इनकी काव्यवाणी में बोलती है और इनके नाटकों में अपना मनोरम रूप दिखाकर मानव मात्र के हृदय का मनोरंजन करती है। कालिदास ने अपने काव्यचमत्कार से समस्त संसार में ख्याति प्राप्त की है। इनके काव्यों में पदलालित्य, रचनाचातुर्य, कल्पनाशक्ति, प्रकृति वर्णन एवं चरित्र चित्रण पढ़कर विश्व का प्रत्येक पाठक प्रफुल्ल हो उठता है। इनमें विचार गाम्भीर्य है, संसार का अनुभव है, बहुमूल्य सिद्धान्त हैं, इनके पदों में उपदेश भी मिलता है और इनकी उक्तियाँ आज भी हमारा पथ प्रदर्शन करती हैं।

समय – कालिदास के व्यक्तिगत जीवन, समय, स्थान, परिवार आदि के विषय में कहीं से कुछ निश्चित प्रमाण न मिलने से निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। विद्वानों ने यत्र तत्र प्राप्त उल्लेखों तथा उनकी रचनाओं में प्राप्त सूचनाओं के आधार पर कुछ अनुमान लगाए हैं। उनकी रचनाओं में उज्जयिनी और वहाँ स्थापित महाकाल के प्रति विशेष लगाव प्रतीत होता है। अतः यह माना जाता है कि कालिदास के जीवन का अधिकांश भाग उज्जयिनी में ही व्यतीत हुआ होगा। इसी प्रकार उनके समय में भी बड़ा मतभेद है। भारतीय परम्परा उन्हें महाराज विक्रमादित्य की राज्यसभा का रत्न मानती है।

मालव नरेश महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य उज्जयिनी के प्रशासक थे। उन्होंने शत्रुओं को परास्त कर विक्रम संवत् का प्रारम्भ किया था। इनकी राजसभा में यदि कालिदास को माना जाए तो कालिदास का समय ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी में रखा जा सकता है। रघुवंश मेघदूत और अभिज्ञानशाकुन्तल में निर्दिष्ट सामाजिक वर्णन तथा कालिदास की शैली का अश्वघोष की रचनाओं पर प्रभाव भी इसी ओर संकेत करता है। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त को भी विक्रमादित्य की उपाधि से विभूषित किया गया था। कुछ विद्वानों का कथन है कि इन्हीं चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (375–414 ई.) के समकालिक कालिदास थे। अतः इसका समय ईस्वी पश्चात् चौथी शताब्दी होना चाहिए। इस प्रकार कालिदास का समय ईसा पू. प्रथम शताब्दी से ईस्वी पश्चात् चतुर्थ शताब्दी तक माना जा सकता है।

कालिदास की रचनाएँ

राजशेखर (900 ई.) ने शृंगार रस की रचना करने वाले 'कालिदास' नाम वाले तीन कवियों का निर्देश किया है –

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।

शृंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ।।

सम्प्रति कालिदास के नाम से प्रायः 40 रचनाओं का निर्देश मिलता है, किन्तु इनमें मूल एवं प्राचीन कालिदास की सात रचनाएँ ही प्रमाणसिद्ध हैं। उनमें से रघुवंश और कुमारसंभवम्—दो महाकाव्य हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीय—तीन नाटक हैं और मेघदूत तथा ऋतुसंहार—दो खण्डकाव्य हैं। इनमें से रघुवंश, अभिज्ञानशाकुन्तल और मेघदूत कालिदास की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं, जिनके कारण कालिदास को कवियों में श्रेष्ठ माना जाता है। इन्हीं रचनाओं के आधार पर परवर्ती कवियों ने उनको अद्वितीय कवि मानते हुए कविकुलगुरु की उपाधि दी है। उनके दोनों महाकाव्यों में कुमारसंभव पहला और रघुवंश बाद का माना जाता है।

कुमारसंभवम् महाकाव्य

यह महाकाव्य कालिदास की प्रारम्भिक रचना है, जिसमें कवि ने शिव पार्वती के विवाह, कुमार कार्तिकेय के जन्म एवं उनके द्वारा तारकसुर के वध की कथा उपन्यस्त की है। हिमालय की पुत्री पार्वती ने तपस्या के द्वारा शिव को प्राप्त किया था। इस महाकाव्य में यद्यपि 17 सर्ग हैं, किन्तु प्रथम आठ सर्गों को ही कालिदास की रचना माना जाता है, शेष सर्ग कथा की पूर्ति करने के लिए किसी परवर्ती कवि ने लिखकर जोड़े थे। प्रथम आठ सर्गों में शिव पार्वती के विवाह तथा दाम्पत्य जीवन तक का ही वर्णन है। कुमार कार्तिकेय का जन्म 11वें सर्ग में वर्णित है। अतः आठ सर्ग की कथा से भी यही बात प्रकट होती है, क्योंकि तब तारकासुर के वध तक का वर्णन शीर्षक का समर्थन कैसे करेगा? काव्यशास्त्र के आचार्यों ने प्रथम आठ सर्गों से ही उद्धरण दिये हैं। मल्लिनाथ की संजीवनी टीका वस्तुतः सात सर्गों तक ही है, अष्टम सर्ग पर उनकी टीका दोषपूर्ण है। अष्टम सर्ग शिव पार्वती के केलि वर्णन से सम्बद्ध है, अतएव यह परवर्ती विद्वानों के बीच विवाद का विषय बना है।

कुमारसंभवम् का सर्गानुसार सार

प्रथम सर्ग — प्रारम्भ में हिमालय का भव्य वर्णन 15 श्लोकों में करके हिमालय से मेना के विवाह, पार्वती के जन्म और उसका अद्भुत सौन्दर्य, नारद द्वारा शिव-पार्वती के विवाह की चर्चा तथा पार्वती द्वारा शिव की आराधना का वर्णन कवि ने किया है।

द्वितीय सर्ग — इसमें तारकासुर से पीड़ित देवताओं के द्वारा ब्रह्मा की प्रार्थना है। ब्रह्मा कहते हैं कि सृष्टि के व्यापार में लगे मुझसे तो उसका वध नहीं हो सकता, किन्तु आप लोग शंकर के चित्त को पार्वती के रूप द्वारा आकृष्ट कर सकें तो आपका कार्य हो जाएगा, क्योंकि उनका पुत्र ही तारकासुर का वध कर सकता है।

तृतीय सर्ग — इसमें देवगण शिव के चित्त में क्षोभ उत्पन्न करने के लिए कामदेव का उपयोग करते हैं, जो शिव के समाधि स्थल पर वसन्त ऋतु को फैलाकर शिव पर बाण चलाता है। शिव अपनी नेत्रज अग्नि से उसे भस्मात् कर देते हैं —

क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद् गिरः खे मरुतां चरन्ति ।

तावत्स वहिर्भवेनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ॥ (कु. 3.72)

चतुर्थ सर्ग — इसमें कामदेव की पत्नी रति विलाप करती है। वसन्त रति को सान्त्वना देता है, फिर भी पति की चिता पर वह जल जाना चाहती है। आकाशवाणी से पुनर्मिलन की बात जानकर वह रुक जाती है।

पंचम सर्ग— यह इस महाकाव्य का श्रेष्ठ सर्ग है। इसमें शिव को प्रसन्न करने के लिए पार्वती की तपस्या तथा ब्रह्मचारी के वेश में समागत शिव के द्वारा पार्वती के प्रेम की परीक्षा का वर्णन है। अन्य सभी उपायों से असाध्य शिव को तपस्या ही द्रवित करती है। यहाँ शिव-पार्वती का रमणीय संवाद दिया गया है, जिसमें शिव के एक-एक तर्क का उत्तर पार्वती देती जाती है। अन्त में शिव कहते हैं कि तुम्हारी तपस्या से खरीदा गया दास बन गया हूँ।

षष्ठ सर्ग — शिव का सन्देश लेकर सप्तऋषिगण हिमालय के पास जाते हैं। हिमालय पार्वती का वाग्दान करते हैं। शिव को सप्तऋषियों से यह बात ज्ञात हुई तो पार्वती के समागम की उत्सुकता में तीन दिन बड़े कष्ट से बिताए।

सप्तम सर्ग — इसमें शिव पार्वती के विवाह का वर्णन है। इस प्रसंग में विवाहपूर्व पार्वती का शृंगार एवं शिव की बारात को देखने के लिए उत्सुक नारियों की चेष्टाओं का रमणीय चित्रण किया गया है। इस प्रसंग में आए सात पद्य रघुवंश के सप्तम सर्ग में भी यथावत् दिये गये हैं। स्त्रियाँ वर-वधू की अनुरूपता पर टिप्पणी भी करती हैं।

अष्टम सर्ग — इसमें (स्थोद्धता छन्द में) विवाह के अनन्तर शिव पार्वती के विलास तथा कामशास्त्रानुकूल आमोद-प्रमोद का वर्णन है।

अन्य सर्गों के प्रतिपाद्य इस प्रकार हैं —

सर्ग—9 : शिव पार्वती का विहार यात्रा करते हुए कैलास गमन ।

सर्ग—10 : कार्तिकेय (कुमार, स्कन्द) का गर्भ में आना ।

सर्ग—11 : कुमार का जन्म तथा बाल्यावस्था ।

सर्ग—12 : कुमार का सेनापति बनना ।

सर्ग—13 : कुमार का सैन्य संचालन ।

सर्ग—14 : देव सेना का प्रयाण ।

सर्ग—15 : देवासुर सेनाओं का संघर्ष ।

सर्ग—16 : युद्ध वर्णन ।

सर्ग—17 : तारकासुर का वध ।

इस महाकाव्य में कालिदास ने अपनी सौन्दर्य भावना का पूरा प्रकर्ष दिखाया है। ध्वनिवादी आचार्यों ने इससे पर्याप्त उदाहरण दिये हैं। इसमें भाषा की सहजता, वर्णनों की रमणीयता (हिमालय वर्णन, उमा रूपवर्णन), रस की उद्भावना (रति विलाप, शिव—पार्वती विलास) अर्थ गौरव से युक्त सामान्य उक्तियों का प्राचुर्य है : जैसे —

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्क (1.3)

विष्वक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेतुमसाम्प्रतम् (2.55)

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् (5.33)

प्रायेण गृहिणीनेत्राः कन्थार्थेषु कुटुम्बिनः (6.85)

रघुवंश

यह उन्नीस सर्गों का महाकाव्य है, जिसमें 1569 श्लोक हैं। इसमें सूर्यवंश के 29 राजाओं का वर्णन है। इसी वंश में राम का आविर्भाव हुआ था। दिलीप, रघु, अज, दशरथ, राम तथा कुश का विस्तार से वर्णन हुआ है। किन्तु अन्य राजाओं (अतिथि, निषध, नल, नभ, पुण्डरीक, क्षेमधन्वा, देवानीक, अहीनग, पारियात्र, शील, उन्नाभ, वज्रनाभ, शंखण, व्युषिताश्व, विश्वसह, हिरण्यनाभ, कौशल्य, पुत्र, पौष्य, ध्रुवसन्धि, सुदर्शन तथा अग्निवर्ण) का संक्षिप्त रूप में

विवरण है। अन्तिम राजा अग्निवर्ण की विलासिता का वर्णन करते हुए कालिदास ने इस महान् वंश का पतन दिखाया है। उपर्युक्त सूर्यवंश के राजाओं के वर्णन में कालिदास ने वाल्मीकि रामायण में दी गई वंशावली का अनुकरण न करके वायुपुराण तथा विष्णुपुराण में वर्णित वंशावली का ग्रहण किया है।

रघुवंश महाकाव्य का सार

प्रथम सर्ग — इसमें रघुवंशियों की सामान्य प्रशंसा करते हुए कालिदास ने राजा का आदर्श प्रस्तुत किया है। इस वंश में प्रथम राजा मनु थे। उन्हीं के वंश में दिलीप हुए, जो अनेक गुणों से सम्पन्न थे। उनकी पत्नी मगधवंश की राजकुमारी सुदक्षिणा थी। सन्तानहीन होने के कारण दिलीप अपने कुलगुरु वसिष्ठ के आश्रम में पहुँचे और अपने दुःख का वर्णन किया। वसिष्ठ ने राजा को कामधेनु की पुत्री नन्दिनी गौ की सेवा का उपदेश दिया। तदनुसार राजा पत्नी सहित वहीं रहकर नन्दिनी की सेवा में लग गये।

द्वितीय सर्ग — इसमें राजा दिलीप के द्वारा नन्दिनी की सेवा का वर्णन है। इक्कीस दिनों की सेवा से प्रसन्न होकर नन्दिनी ने राजा की परीक्षा ली। वन में नन्दिनी पर एक सिंह ने आक्रमण किया और राजा को लौट जाने के लिए कहा। राजा ने नन्दिनी के स्थान पर अपने आप को समर्पित कर दिया और सिंह से प्रार्थना की कि वह नन्दिनी को छोड़ दे। सिंह और दिलीप का हृदयावर्जक संवाद कवि ने प्रस्तुत करते हुए दिलीप के चरित्र की उदात्तता दिखायी है। दिलीप की परीक्षा लेकर नन्दिनी ने उन्हें पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद दिया। रानी सुदक्षिणा ने गर्भ धारण किया।

तृतीय सर्ग — इसमें रघु का जन्म, विद्या प्राप्ति, दिलीप द्वारा अश्वमेध यज्ञानुष्ठान, इन्द्र के द्वारा अश्वपहरण के कारण रघु का इन्द्र पर आक्रमण, इन्द्र का आशीर्वाद तथा रघु का राज्याभिषेक वर्णित है। दिलीप तपस्यार्थ वन चले गए।

चतुर्थ सर्ग — इसमें रघु की दिग्विजय का मनोरम वर्णन है। पूर्व के राजाओं को जीतते हुए रघु समुद्र तट तक पहुँच गए। पुनः बङ्गीय नरेशों को हराकर रघु ने अपना जयस्तम्भ गङ्गासागर के द्वीपों में गाड़ दिया। फिर वे कलिङ्ग, महेन्द्र पर्वत आदि होते हुए कावेरी के

तट पर पहुँचे। उन्होंने दक्षिण भारत को भी जीता। रघु की सेना क्रमशः पश्चिम दिशा में गई। सिन्धु नदी, हूण—नरेश, कम्बोज प्रदेश तथा हिमालय का वर्णन करके पुनः रघु को असम प्रदेश में लौहित्य नद पार करते दिखाया गया है। इस प्रकार समस्त पृथ्वी (भारत) को रघु ने आक्रान्त कर दिया।

पंचम सर्ग — इसमें रघु से सम्बद्ध अनेक घटनाओं का वर्णन है। ब्रह्मचारी कौत्स का गुरु दक्षिणा हेतु 14 करोड़ स्वर्णमुद्राएँ मांगना, रघु का कुबेर पर आक्रमण करने की सोचना, उनका कोष धन से भर जाना और प्रसन्न कौत्स के आशीर्वाद से पुत्र अज का जन्म होना, इन्दुमती स्वयंवर में अज को बुलाया जाना वर्णित है।

षष्ठ सर्ग — यह रघुवंश का उत्कृष्ट सर्ग है। इसमें इन्दुमती स्वयंवर का वर्णन है। विदर्भराज की राजधानी में इन्दुमती से विवाह के इच्छुक सभी राजाओं को छोड़कर उसका अज का वरण करना कवि ने अत्यन्त मनोहर उपमाओं द्वारा किया है।

सप्तम सर्ग — अज और इन्दुमती का विवाह, प्रतिस्पर्धी राजाओं से युद्ध और अज की विजय का वर्णन करके रघु द्वारा अज का स्वागत किया गया है।

अष्टम सर्ग — यह सर्ग अत्यन्त कारुणिक है, जिसमें इन्दुमति की असामयिक मृत्यु पर अज का विलाप वर्णित है। वशिष्ठ के सन्देश से अज को सान्त्वना मिली। अपने पुत्र दशरथ की बाल्यावस्था का ध्यान करके उन्होंने प्रिया का चित्र देख—देख कर किसी प्रकार आठ वर्ष बिताये। गंगा—सरयू के संगम पर उन्होंने प्राण त्याग दिए।

नवम सर्ग — इसमें दशरथ के आखेट का वर्णन है, जिसमें मुनि पुत्र श्रवण कुमार का वध हो गया। मुनि ने दशरथ को वृद्धावस्था में पुत्र—वियोग के कारण मृत्यु होने का शाप दिया।

दशम सर्ग — दशरथ द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ किये जाने का वर्णन है, जिसमें राम आदि चारों भाइयों का जन्म होता है। देवताओं की स्तुति से प्रसन्न होकर विष्णु का राम के रूप में अवतीर्ण होना प्रकट किया है तथा चारों भाइयों को पुरुषार्थों के अवतार जैसा बताया गया है।

एकादश सर्ग — इसमें सीता स्वयंवर, रामादि से विवाह और परशुराम के साथ संवाद का वर्णन है।

द्वादश सर्ग — राम—वनवास, सीता—हरण, युद्ध और रावण वध की कथा कवि ने शीघ्रता से कही है, किन्तु कहीं भी इस त्वरा से उद्वेग नहीं होता।

त्रयोदश सर्ग — इसमें कवि ने लंका से अयोध्या लौटते समय राम की यात्रा का वर्णन करते हुए मार्ग के पवित्र और रमणीय स्थलों का परिचय दिया गया है। सर्ग के अन्त में सभी भाइयों का समागम सूचित किया गया है।

चतुर्दश सर्ग — यह सर्ग राम के राज्याभिषेक तथा सीता—परित्याग की घटनाओं से सम्बद्ध है। सीता वाल्मीकि के आश्रम में पहुँच गयी। फिर उन्होंने सीता की स्वर्णमूर्ति को अपने साथ बैठाकर अश्वमेध यज्ञ किया।

पंचदश सर्ग — इसमें शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर के वध का, सीता के दो पुत्रों के होने का, शम्बूक वध का, राम के यज्ञ में कुश और लव द्वारा रामायण गान का, सीता के पाताल प्रवेश का एवं राम द्वारा कुश को कुशावती और लव को शरावती राज्य देकर स्वयं स्वर्ग चले जाने का वर्णन है।

षोडश सर्ग — इस सर्ग के आरम्भ में कुश की अनुपस्थिति में अयोध्या नगरी की दुर्दशा का वर्णन है। कुश ने कुशावती को छोड़कर पुनः अयोध्या को राजधानी बना लिया। इस एक ही सर्ग में नगर के उजड़ने और बसने का सुन्दर वर्णन है। नागराज कुमुद की बहन कुमुद्वती के साथ कुश के विवाह का वर्णन भी है।

सप्तदश सर्ग — इसमें कुमुद्वती से अतिथि नामक पुत्र होने का वर्णन है। युद्ध में कुश के मारे जाने पर कुमुद्वती सती हो गई, अतिथि का राज्याभिषेक हुआ। उनके राज्यकाल का आदर्शमय वर्णन इस सर्ग में कवि ने किया है।

अष्टादश सर्ग — इसमें अतिथि के बाद की अनेक पीढ़ियों के राजाओं का वर्णन कवि ने प्रस्तुत किया है।

एकोनविंश सर्ग — इस अन्तिम सर्ग में राजा सुदर्शन के पुत्र अग्निवर्ण की कामुकता का चित्रण है। वह कभी प्रजा को दर्शन नहीं देता था। अनेक रानियों के प्रति प्रेम करने से उसे क्षयरोग हो गया और वैद्य भी उसे न बचा सके। मन्त्रियों ने गुप्त रूप से उपवन में ही उसे जला दिया। उसकी गर्भवती पटरानी को सिंहासन पर बैठाया गया। इस प्रकार रघुवंश की समाप्ति हो गई।

कालिदास का काव्यगत वैशिष्ट्य

कालिदास सरल, प्रवाहमय किन्तु स्वाभाविक अलंकारों से युक्त शैली के प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी कविता में विद्यमान प्रसादगुण सभी रसों के सहज परिपाक को करने वाला है। वैदर्भी रीति में उन्होंने समासरहित किन्तु आकर्षक भाषा का प्रयोग किया है। उपमा, यमक और अर्थान्तरन्यास उनके प्रिय अलंकार हैं। इन्दुमती के स्वयंवर के अवसर का वर्णन करते हुए कवि ने इन्दुमती की दीपशिखा से उपमा देते हुए जो चित्र प्रस्तुत किए हैं, उससे कवि को 'दीपशिखा कालिदास' कहा जाने लगा और 'उपमा कालिदासस्य' इत्यादि उक्तियाँ प्रसिद्ध हो गई —

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा ।

नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ॥ (रघुवंश 6.67)

जिस तरह रात में आगे बढ़ने वाली दीपशिखा राजमार्ग में बने हुए जिस महल को पार कर जब आगे बढ़ जाती है, तब वह महल अंधेरा व्याप्त हो जाने के कारण शोभारहित हो जाता है। उसी तरह पति का स्वयं वरण करने वाली वह इन्दुमती जिस—जिस राजा को छोड़कर आगे बढ़ती जाती थी, वह राजा उदासीन होता जाता था।

इसी प्रकार रघुवंश के प्रारम्भ में ही दिलीप सन्ध्या समय जब नन्दिनी को आगे करके वन से लौट रहे थे और सुदक्षिणा उसकी प्रतीक्षा में खड़ी थी, तो कवि ने उसकी उपमा दिन और रात्रि के मध्य सन्ध्या की दी है, जो अत्यन्त व्यंजनापूर्ण है —

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या ।

तदन्तरे सा विरराज धेनु र्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या ॥ (रघु. 2.20)

मार्ग में राजा दिलीप से आगे की गई और सुदक्षिणा द्वारा अगवानी की गई वह नन्दिनी उन दोनों के बीच में दिन और रात के मध्य में वर्तमान सन्ध्या के समान सुशोभित हुई।

उनका प्रिय रस शृंगार है। संभोग शृंगार का वर्णन कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग तथा रघुवंश के अन्तिम सर्ग में मुक्त रूप से मिलता है —

चुम्बनेष्वधरदानवर्जितं खिन्नहस्तसदयोपगूहनम् ।

क्लिष्टमन्मथमपि प्रियं प्रभोर्दुर्लभप्रतिकृतं वधूरतम् ॥ कु. 8.8

करुणरस के उद्भावन् में कुमारसंभव का रतिविलाप और रघुवंश का अजविलाप परस्पर विरुद्ध धरातल पर रहकर भी अत्यन्त द्रावक हैं। सीता का निर्वासन प्रसंग भी अत्यन्त कारुणिक है। वीर रस के प्रयोग में कालिदास पौराणिक अनुष्टुप् छन्द का आश्रय लेते हैं। रघु की दिग्विजय का प्रसंग हो या राम द्वारा रावण के मारे जाने का – सर्वत्र अपनी स्वाभाविक वैदर्भी शैली में कवि अत्यन्त संक्षेप में प्रतिपाद्य की स्थापना करते हैं। राम-रावण के बीच संग्राम का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं –

विक्रमव्यतिहारेण सामान्याऽभूद्द्वयोरपि ।

जयश्रीरन्तरा वेदिर्मत्तवारणयोरिव । रघु. 12.93

अर्थात् कभी राम अपना पराक्रम दिखलाते थे कभी रावण, इसलिए विजयश्री कभी राम के पास जाती थी कभी रावण के पास। उसकी दशा वैसी ही हो गई थी जैसे लड़ते हुए मतवाले हाथियों के बीच की दीवार की होती है।

अर्थान्तरन्यास के द्वारा कालिदास ने अपने काव्यों को विभूषित किया है –

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्क (कु. 1.3)

तेजसां हि न वयः समीक्ष्यते । (रघु 11.1)

विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया (रघु. 8.46)

क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति (रघु. 3.29)

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् (कु. 5.33)

कालिदास ने छन्द प्रयोग की दृष्टि से गेय छन्दों का अधिक उपयोग किया है। उनका सर्वाधिक प्रिय उपजाति छन्द है, जो रघुवंश के नौ सर्गों में (2, 5, 6, 7, 13, 14, 16, 18, 19) मुख्य छन्द हैं, कुमार संभव में भी सर्ग 1, 3, 7 का यह मुख्य छन्द है। दूसरा स्थान उन्होंने पौराणिक छन्द अनुष्टुप् छन्द को दिया है। रघुवंश के छह सर्गों एवं कुमारसंभव के दो सर्गों का यह मुख्य छन्द है। रघुवंश के नवम सर्ग में अनेक छन्दों का प्रयोग है।

भारवि

‘किरातार्जुनीयम्’ महाकाव्य के रचयिता के रूप में संस्कृत महाकाव्यों के इतिहास में भारवि विख्यात है। इन्होंने महाकाव्य के विचित्र मार्ग का प्रवर्तन किया, जिसमें भावपक्ष की

अपेक्षा कलापक्ष पर ही अधिक बल रहता है। पाण्डित्य-प्रकर्ष की अभिव्यक्ति और मूल विषय का त्याग करके लम्बे वर्णनों में उलझ जाना इस मार्ग की विशिष्टता है। इन्हीं का अनुसरण माघ और श्री हर्ष ने भी किया है।

भारवि के जीवन के विषय में प्रचलित किवदन्तियों के आधार पर निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अवन्तिसुन्दरी कथा के एक उद्धरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दण्डी के प्रपितामह दामोदर और भारवि परस्पर मित्र थे। भारवि ने महाराष्ट्र के राजा विष्णुवर्धन से दामोदर की मित्रता कराई थी तो दामोदर ने कर्णाटक के राजा कोंगणि दुर्विनीत तथा कांची के राजा सिंह विष्णु (600 ई.) से भारवि का परिचय कराया था। 634 ई. के ऐहोल शिलालेख में लेखक रविकीर्ति ने भारवि को कालिदास के साथ यशस्वी कवि के रूप में माना है। इधर वामन व जयादित्य की काशिका में भी भारवि की रचना का उदाहरण मिलता है। उपर्युक्त आधारों पर भारवि का समय 550 ई. से 600 ई. के मध्य मानना उचित है।

किरातार्जुनीयम् भारवि की एकमात्र उपलब्ध कृति है। विचित्र मार्ग या कलावाद का प्रवर्तन करने वाले इस महाकाव्य में 18 सर्ग हैं। इसका कथानक महाभारत के वनपर्व के कुछ अध्यायों पर आश्रित है। वनवास काल में अर्जुन द्वारा कौरवों पर विजय-प्राप्ति के लिए हिमालय पर्वत पर जाकर तपस्या करने, वहाँ किरात वेश में आये हुए शिव से युद्ध करने एवं प्रसन्न हुए शिव से पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति की मुख्य कथा इसमें निरूपित है। इसलिए इसका शीर्षक है किरातार्जुनीयम् – किरातश्च अर्जुनश्च = किरातार्जुनौ तावधिकृत्य कृतं काव्यं किरातार्जुनीयम् (द्वन्द्व समास)। इसके कई सर्ग मुख्य कथा को छोड़कर कलात्मक वर्णनों में लगाए गए हैं।

इस महाकाव्य का आरम्भ 'श्रियः' शब्द से होता है तथा प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य में 'लक्ष्मी' शब्द भी प्रयुक्त है।

ग्रन्थ का सर्गानुसार सार

प्रथम सर्ग – द्वैतवन में वनेचर का आकर युधिष्ठिर को दुर्योधन की प्रजापालन नीति का वर्णन सुनाना तथा द्रौपदी का उत्तेजनापूर्ण भाषण।

द्वितीय सर्ग — युधिष्ठिर और भीम का वार्तालाप, भीम द्वारा द्रौपदी का समर्थन करते हुए पराक्रम की महत्ता दिखाना एवं युधिष्ठिर का प्रतिवाद तथा व्यास का आगमन।

तृतीय सर्ग — व्यास द्वारा अर्जुन को शिव की आराधना करके पाशुपतास्त्र प्राप्त करने का उपदेश, योग विधि का निरूपण करके व्यास का अन्तर्धान होना, व्यास द्वारा प्रेषित यक्ष के साथ अर्जुन का प्रस्थान।

चतुर्थ सर्ग — इन्द्र झील पर्वत पर अर्जुन का पहुँचना व शरद् ऋतु का मनोरम वर्णन।

पंचम सर्ग — हिमालय का वर्णन तथा यक्ष का अर्जुन को इन्द्रिय संयम का उपदेश।

षष्ठ सर्ग — अर्जुन की तपस्या तथा विघ्न डालने के लिए इन्द्र द्वारा प्रेषित अप्सराओं का आगमन।

सप्तम सर्ग — गन्धर्वों तथा अप्सराओं के विलासों का वर्णन, वन विहार तथा पुष्पचयन।

अष्टम सर्ग — गन्धर्वों और अप्सराओं की उद्यान क्रीड़ा तथा जल क्रीड़ा का मोहक वर्णन।

नवम सर्ग — सायंकाल, चन्द्रोदय, मान, मानभङ्ग, दूतीप्रेषण, सुरति तथा प्रभात का वर्णन।

दशम सर्ग — अप्सराओं की चेष्टाएँ तथा उनकी विफलता।

एकादश सर्ग — मुनि रूप में इन्द्र का आगमन, इन्द्रार्जुन संवाद तथा इन्द्र का अर्जुन को शिव आराधना का उपदेश।

द्वादश सर्ग — अर्जुन की तपस्या, तपस्वियों का शिव को प्रेरित करना, अर्जुन को देवताओं का कार्यसाधक जानकर 'मूक' नामक दानव का शूकर रूप में अर्जुन वध के लिए आगमन तथा किरातवेशधारी शिव का आगमन।

त्रयोदश सर्ग — शूकर (मूक दानव) पर शिव और अर्जुन दोनों का बाण प्रहार, दानव की मृत्यु, बाण के विषय में शिव के अनुचर तथा अर्जुन का विवाद।

चतुर्दश सर्ग — सेना सहित शिव का आगमन और सेना के साथ अर्जुन का युद्ध।

पंचदश सर्ग — युद्ध का चित्रकाव्य के रूप में वर्णन।

षोडश सर्ग — शिव और अर्जुन का अस्त्रयुद्ध व मल्लयुद्ध।

सप्तदश सर्ग — शिव और उनकी सेना के साथ अर्जुन का युद्ध।

अष्टादश सर्ग — बाहुयुद्ध के बाद शिव का अपने मूल रूप में प्रकट होना, इन्द्रादि का आगमन, अर्जुन को पाशुपतास्त्र की प्राप्ति, इन्द्रादि द्वारा भी अर्जुन को विविध दिव्यास्त्रों का प्रदान तथा अर्जुन का युधिष्ठिर के पास आगमन।

भारवि का साहित्यिक वैशिष्ट्य

भारवि मुख्य रूप से कलावादी कवि हैं, जिनका ध्यान बहिरङ्ग पर अधिक रहा है। अर्थपक्ष में गम्भीरता का निवेश भी उन्होंने किया है। चित्रकाव्य का प्रयोग करने वाले वे प्रथम संस्कृत कवि हैं। कृत्रिम भाषा का प्रयोग करते हुए उन्होंने यह प्रकट किया है कि संस्कृत काव्य कितना दुरुह हो सकता है। यहाँ एकाक्षर (केवल एक व्यंजन 'न') प्रयोग वाले पद्य का उदाहरण दिया जाता है —

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।

नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना नुन्ननुन्ननुत्॥ (किरात. 15.14)

अर्थात् (नानाननाः) हे अनेक मुख वाले शिवसैनिकों, (ऊननुन्नः) निकृष्ट व्यक्ति के द्वारा आहत पुरुष (ना न) वस्तुतः पुरुष नहीं है। (नुन्नोनः) जिसने न्यूनता को नष्ट कर दिया है ऐसा (ना ननु अना) पुरुष वस्तुतः पुरुष से भिन्न अर्थात् देवता है। (न नुन्नेनः) जिसका स्वामी अनाहत या अक्षत है वह (नुन्नः अनुन्नः) आहत होने पर भी आहत नहीं है। (नुन्ननुन्ननुत्) अत्यधिक आहत व्यक्ति को क्षति पहुँचाने वाला (न अनेनाः) अपराध मुक्त नहीं हो सकता।

इसी प्रकार पूर्वार्ध की आवृत्ति उत्तरार्ध के रूप में होने से दो-दो अर्थ निकलते हैं —

घनं विदार्यार्जुनबाणपूगं ससारवाणोऽयुगलोचनस्य।

घनं विदार्यार्जुनबाणपूगं ससारबाणो युगलोचनस्य॥ किरात. 15.50

निम्नलिखित श्लोक का प्रथम का उलटा द्वितीय पाद है एवं तृतीय पाद का उलटा चतुर्थ पाद है —

वेत्रशाककुजे शैलेऽलेशैजेऽकुशशात्रवे।

यात किं विदिशो जेतुं तुंजेशो दिवि किंतया॥ किरात. 15.18

इस प्रकार भारवि ने बौद्धिक व्यायाम के रूप में चित्रालंकार का प्रयोग करके संस्कृत भाषा की क्षमता का प्रकर्ष दिखाया है, जो संसार की अन्य किसी भाषा में नहीं है। शब्द विश्लेषण शास्त्र (व्याकरण) का इसमें प्रभूत योगदान है।

भारवि के विषय में कुछ उक्तियाँ प्रचलित हैं जैसे — भारवेरर्थगौरवम्, भारवेरिव भारवेः, प्रकृति मधुरा भारविगिरः, नारिकेलफल सम्मितं वचो भारवेः इत्यादि। इनमें भारवि की शैली की स्वाभाविक मधुरता के अतिरिक्त बाह्य रुक्षता तथा अन्तः सरसता एवं अर्थगौरव की प्रशंसा की गई है। अर्थगौरव से संबंधित श्लोक भी किरातार्जुनीयम् में आया है —

स्फुटता न पदैरपाकृता, न च न स्वीकृतमर्थगौरम्।

रचिता पृथगर्थता गिरां, न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्। किरात. 2.27

यहाँ भीम की वाणी की प्रशंसा में युधिष्ठिर कहते हैं कि तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कौन है, जिसके शब्दों में स्फुटता हो, अर्थगौरव विद्यमान हो, बातों के पृथगर्थता (पुनरुक्ति व परस्पर विरोध का अभाव) हो और शब्दों की परस्पर आकांक्षा भी उपस्थित हो। भाषा के ये गुण भारवि के लिए भी सटीक हैं।

सभी अलंकारों का स्वाभाविक तथा परिश्रम साध्य प्रयोग भी भारवि के काव्य में प्रचूर मात्रा से मिलता है। प्रयत्न साध्य अलंकारों में अर्थालंकार ही नहीं, अपितु शब्दालंकार भी हैं जो चित्रकाव्य के रूप में प्रयुक्त हैं। श्रेष्ठ उपमान (कनकमयातपत्र लक्ष्मीम् — कि. 5.39) के कारण भारवि को 'आतपत्र-भारवि' भी कहा जाता है। पंचम सर्ग व अठारहवें सर्ग में कवि ने अनेक छन्दों के प्रयोग की क्षमता भी दिखाई है।

उनके सुभाषित शास्त्रों के पाण्डित्य से मण्डित तथा व्यापक अनुभूतियों से समन्वित हैं। उनमें नीति, राजनीति तथा सामान्य जीवन से सम्बद्ध सूक्तियों का भाण्डागार है। इन सभी में अर्थान्तरन्यास अलंकार निहित है तथा अर्थगौरव का काव्यगुण है —

1. हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः (किरात. 1.4)
2. अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता (किरात. 1.23)
3. वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि (किरात. 8.1.23)
4. आपातरम्या विषयाः पर्यन्तपरितापिनः (किरात. 11.12)
5. सहसा विदधीत न क्रियाम (किरात. 2.30)

6. सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम् (किरात. 11.11)
7. दुरधिगमा हि गतिः प्रयोजनानाम् (किरात. 10.40)
8. आत्मवर्गहितमिच्छति सर्वः (किरात. 9.64)
9. यथोत्तरेच्छा हि गुणेषु कामिनः (किरात. 8.4)
10. वस्तुमिच्छति निरापदि सर्वः (किरात. 9.16)

1.4. अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्न

1. महाकाव्य में कितने सर्ग होने चाहिए?
2. अश्वघोष द्वारा रचित महाकाव्यों के नाम बताइए।
3. रघुवंश किसकी रचना है और इसमें कितने सर्ग हैं?
4. सौन्दरनन्द किसकी रचना है?
5. कुमारसंभवम् के कितने सर्ग कालिदास द्वारा रचित कहे जाते हैं?
6. किरातार्जुनीयम् किसकी रचना है?
7. केवल एकाक्षर 'न' का प्रयोग करके लिखा गया श्लोक किस ग्रन्थ में विद्यमान है?

1.5. सारांश

इस अध्याय में वर्णित तीनों कवियों का संस्कृत लौकिक साहित्य में अन्यतम स्थान रहा है। अश्वघोष का आदर केवल सनातन परम्परा में ही नहीं, बल्कि बौद्ध धर्म में भी अद्वितीय दार्शनिक के रूप में रहा है। इसे बौद्ध धर्म में वही स्थान प्राप्त है, जो स्थान सनातन धर्म में आदिकवि वाल्मीकि का है। महाकवि कालिदास तो विश्व में भारतीयता की पहचान कराने वाले राष्ट्रीय कवि कहे जा सकते हैं। इनकी उपमाएँ अद्वितीय एवं सटीक होने के कारण 'उपमा कालिदासस्य' उक्ति प्रचलित हुई। इसी प्रकार अर्थगाम्भीर्य (अर्थगौरव) के क्षेत्र में भारवि अद्वितीय है। इनकी रचना किरातार्जुनीयम् बृहत्त्रयी का प्रारम्भिक ग्रन्थ है।

1.6 मुख्य शब्दावली

1. महाकाव्य — 'सर्गबन्धो महाकाव्यम्' सर्गों से निबद्ध महाकाव्य होता है।

2. बुद्धचरितम् – अश्वघोष की रचना, महात्मा बुद्ध के जीवन चरित से सम्बद्ध मुख्य ग्रन्थ, 28 सर्गों में से केवल 14 सर्ग उपलब्ध हैं।
3. सौन्दरनन्द – बुद्ध के सौतेले भाई नन्द व उसकी पत्नी सुन्दरी से सम्बद्ध अश्वघोष द्वारा रचित महाकाव्य।
4. रघुवंश – सूर्यवंश के 29 राजाओं का वर्णन, महाकवि कालिदास की अद्वितीय रचना।
5. कुमारसंभवम् – शिव-पार्वती के पुत्र कुमार कार्तिकेय के जन्म से संबद्ध महाकाव्य, कालिदास की प्रारम्भिक रचना।
6. किरातार्जुनीयम् – किरात वेशधारी शिव एवं तपस्यारत अर्जुन से संबद्ध भारवि द्वारा रचित महाकाव्य।

1.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. आठ से अधिक सर्ग
2. बुद्धचरित एवं सौन्दरनन्द
3. कालिदास की एवं 19 सर्ग
4. अश्वघोष की
5. आठ सर्ग
6. भारवि की
7. किरातार्जुनीयम् में

1.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. महाकाव्य के लक्षण विस्तार से लिखिए।
2. अश्वघोष का जीवन परिचय एवं काव्य वैशिष्ट्य बताइए।
3. बुद्धचरितम् का सर्गानुसार सार संक्षेप लिखिए।
4. महाकवि कालिदास के काव्य वैशिष्ट्य की विवेचना कीजिए।
5. रघुवंश में प्रयुक्त करुण रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

6. “भारवेरर्थ गौरवम्” का विश्लेषण कीजिए।
7. किरातार्जुनीयम् की अद्वितीयता की समीक्षा कीजिए।

1.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास – वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ. उमाशंकर शर्मा ‘ऋषि’, चौखम्बा भारती अकादमी वाराणसी
3. बुद्ध चरितम् – अश्वघोष, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी, व्याख्याकार श्री रामचन्द्रदास शास्त्री
4. कुमारसंभवम् – कालिदास, व्याख्याकार श्री प्रद्युम्न पाण्डेय, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी
5. रघुवंश – कालिदास, व्याख्याकार डॉ. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
6. किरातार्जुनीयम् – भारवि, व्याख्याकार बद्रीनारायण मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

अध्याय—2

महाकाव्य (भट्टि से श्रीहर्ष तक)

अध्याय की रूपरेखा (Structure)

- 2.1 अध्याय के उद्देश्य (Objectives)
- 2.2 परिचय (Introduction)
- 2.3 भट्टि से श्रीहर्ष तक के महाकाव्य
- 2.4 अपनी प्रगति जाँचिए प्रश्न
- 2.5 सारांश
- 2.6. मुख्य शब्दावली
- 2.7. अपनी प्रगति जाँचिए के उत्तर
- 2.8. अभ्यास हेतु प्रश्न
- 2.9. आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.1 अध्याय के उद्देश्य

- भट्टि और रावणवध महाकाव्य से परिचित हो पाएंगे।
- भट्टिकाव्य में व्याकरणसम्मत प्रयोगों की अवधारणा समझ पाएंगे।
- कुमारदास और जानकीहरण काव्य को प्रस्तुत कर पाएंगे।
- माघरचित शिशुपालवध महाकाव्य का विश्लेषण कर पाएंगे।
- रत्नाकर रचित हरविजय महाकाव्य की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।
- श्रीहर्ष रचित नैषधीयचरित का विश्लेषण कर पाएंगे।
- ऐतिहासिक महाकाव्यों से संबंधित जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।

2.2 परिचय

लौकिक संस्कृत साहित्य में भट्टि, कुमारदास, माघ, रत्नाकर और श्रीहर्ष के महाकाव्यों का विशेष स्थान है। भट्टि ने अपने महाकाव्य रावणवध को व्याकरण और अलंकार शास्त्र से भरा है। भट्टि का ध्येय काव्य के इतिवृत्त पर विशेष ध्यान देना नहीं, अपितु व्याकरण सम्मत शुद्ध प्रयोगों का निदर्शन करना है। भट्टि ने रावणवध के 22 सर्गों को प्रकीर्णकाण्ड, अधिकार काण्ड, प्रसन्नकाण्ड और तिडन्त काण्ड नामक चार काण्डों में विभक्त किया है। इनमें व्याकरण की सभी प्रक्रियाओं का भरपूर प्रयोग भट्टि ने किया है। कुमारदास रामकथा को अपने काव्य का कथानक मानकर महाकाव्य की रचना करने वाले वाल्मीकि के पश्चात् प्रथम कवि कहे जा सकते हैं। कालिदास ने तो रघुवंश महाकाव्य में एक राजा के रूप में राम के चरित्र का वर्णन किया है।

माघ कवि ने भारवि द्वारा प्रारम्भ की गई विचित्र मार्ग युक्त अलंकृत शैली और छोटे से कथानक को विस्तार से कहने की प्रवृत्ति को आगे बढ़ाया। इनके द्वारा रचित शिशुपाल वध नामक महाकाव्य में 20 सर्गों में महाभारत की एक छोटी सी कथा को अतिविस्तृत रूप में प्रस्तुत किया है। भारवि की प्रतिस्पर्धा में आगे बढ़ने के लिए अनेक चित्रालंकारों का श्रमसाध्य प्रयोग माघ के द्वारा किया गया है। एकाक्षर 'द' पर आधारित इनका पद्य दर्शनीय है। उपमा का प्रयोग, अर्थगौरव और पदलालित्य – इन तीनों के प्रयोग में माघ विशेष रूप से विख्यात है। रत्नाकर का विशालतम महाकाव्य हरविजय 50 सर्गों में निबद्ध है। इसमें शिव से अन्धकासुर के जन्म तथा शिव द्वारा ही उसके संहार की कथा वर्णित है। माघ के समान शास्त्रीय उत्कर्ष का प्रदर्शन रत्नाकर ने किया है। रत्नाकर का महाकाव्य अलंकृत पद्धति का अन्तिम ग्रन्थ है। भारवि और माघ द्वारा प्रवर्तित शैली इसके आगे नहीं जा सकी।

भारवि और माघ के साथ श्रीहर्ष का नाम संस्कृत के महान् कवियों के रूप में लिया जाता है। इन तीनों के महाकाव्य 'बृहत्त्रयी' के नाम से जाने जाते हैं। इनका महाकाव्य नैषधीयचरितम् अलंकृत और रसमयी अर्थात् सुकुमार और विचित्र दोनों पद्धतियों का समन्वय

करता है। भारवि और माघ की चित्रालंकार की प्रवृत्ति इसमें नहीं है, फिर भी कल्पनाजन्य वर्णनों का प्राचुर्य इस काव्य को भारवि और माघ के काव्यों से आगे बढ़ा देता है –

उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः?

ऐतिहासिक महाकाव्यों में पद्मगुप्त रचित नवसाहसांकचरित, बिल्हण रचित विक्रमांकदेवचरित तथा कवि कल्हण रचित राजतरंगिणी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन महाकाव्यों ने भारतीय मनीषा में इतिहास विषयक चेतना के अस्तित्व को स्थापित किया है।

2.3 भट्टि से श्रीहर्ष तक के महाकाव्य

भट्टि और भट्टिकाव्य

दक्षिण भारत में यदि भारवि छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अपनी कीर्ति कौमुदी से सम्पन्न थे तो उसी काल में पश्चिम भारत भट्टि की यशःसुरभि से सुवासित था। अपने महाकाव्य 'रावण वध' में इन्होंने व्याकरण और अलङ्कार शास्त्र को कसकर भरा है। इनका महाकाव्य अपने मूल नाम से कम ही जाना जाता है। लेखक के आधार पर इसे प्रायः 'भट्टिकाव्य' ही कहा जाता है।

काव्यशास्त्र की परम्परा में महाकवि भट्टि सर्वाग्रणी माने जाते हैं। इस महाकाव्य की रचना स्वयं ग्रन्थकार के अनुसार श्रीधर सेन के राज्यकाल में सौराष्ट्र की वलभी नगरी में हुई।

काव्यमिदं विहितं मया वलभ्यां

श्रीधरसेननरेन्द्रपालितायाम्।

कीर्तिरतो भवतान्नुपस्य तस्य

क्षेमकरः क्षितिपो यतः प्रजानाम्। भट्टिकाव्य 22.35

गुप्त साम्राज्य के पतन होने पर वलभी के नरेशों ने पंडितों को आश्रय दिया। यद्यपि वलभी में श्रीधरसेन नामक चार नरेश हो चुके हैं तथापि अधिकतर विद्वानों के मतानुसार श्रीधरसेन द्वितीय (571 ई.) महाकवि भट्टि के आश्रयदाता थे। इसमें यह प्रमाण दिया जाता है

कि श्रीधरसेन द्वितीय के द्वारा प्रसारित एक शिलाभिलेख में किसी भट्टि नामक विद्वान् को कुछ भूमिदान देने का उल्लेख किया गया है।

रावण वध (भट्टिकाव्य)

भट्टि के रावणवध का आधार वाल्मीकीय रामायण है। राम के जन्म से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की रामायण कथा को भट्टि ने 22 सर्गों में निबद्ध किया है। भट्टि का ध्येय काव्य के इतिवृत्त पर विशेष ध्यान देना नहीं है, अपितु व्याकरणसम्मत शुद्ध प्रयोगों का निदर्शन करना है। भट्टि ने इन 22 सर्गों को चार काण्डों में विभक्त किया है।

1. प्रकीर्ण काण्ड
2. अधिकार काण्ड
3. प्रसन्न काण्ड
4. तिङन्त काण्ड

1. **प्रकीर्ण काण्ड** — इनमें से प्रथम पाँच सर्ग प्रकीर्ण काण्ड के नाम से विख्यात हैं। इस काण्ड में रामजन्म से लेकर राम प्रवास तथा सीता हरण तक कथा वर्णित है। व्याकरण के नियमों की दृष्टि से प्रथम चार सर्ग योजनाबद्ध नहीं हैं। इस भाग में तथा प्रसन्न काण्ड में भट्टि की कवित्वशक्ति का अच्छा परिचय मिलता है। पंचम सर्ग से अधिकतर पद्य प्रकीर्ण है। केवल दो स्थलों पर क्रमशः 'ट' प्रत्यय (टाधिकार 97—100) तथा 'आम्' अधिकार (104—107) के प्रयोगों का संकेत मिलता है।

2. **अधिकार काण्ड** — अग्रिम 6, 7, 8 तथा 9 सर्ग अधिकार काण्ड से प्रख्यात हैं। इन चार सर्गों में सुग्रीवाभिषेक, सीतान्वेषण अशोकवनिका भङ्ग तथा मारुति संयम की कथा वर्णित है। इस भाग में भी अनेक पद्य प्रकीर्ण हैं। अधिकार काण्ड में प्रमुख रूप से क्रियाओं के प्रयोग संबंधी अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं।

3. **प्रसन्न काण्ड** — यह अलंकार शास्त्र से संबद्ध है। अतः इस काण्ड का नाम प्रसन्नकाण्ड सर्वथा सार्थक है। इसके अन्तर्गत 10, 11, 12 तथा 13 सर्ग आते हैं। दशम सर्ग

में शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का उदाहरण सहित स्पष्टीकरण है। 11वें सर्ग तथा 12वें सर्ग में क्रमशः माधुर्य तथा भाविक का विवेचन है। 13वें सर्ग में भाषासम नामक श्लेष भेद का प्रदर्शन है। यहाँ सीताभिज्ञान का राम द्वारा दर्शन, विभीषण का आगमन और सेतुबन्ध वर्णित है। एक प्रकार से रामायण के सुन्दरकाण्ड का आनन्ददायक कथानक यहाँ वर्णित है।

4. तिङन्त काण्ड – इस काण्ड में 14वें से 22वें सर्ग तक हैं। युद्ध से लेकर रामराज्याभिषेक तक की घटनाएँ इसमें वर्णित हैं। इस काण्ड में क्रमशः लिट्, लुङ्, लृट्, लङ्, लट्, लिङ्, लोट्, लृङ् और लुट् के प्रयोग किये गए हैं। भट्टि ने कथानक को इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि एक सर्ग में एक ही लकार का आद्यन्त प्रयोग है।

भट्टि का साहित्यिक वैशिष्ट्य

व्याकरण के प्रति अत्यधिक प्रेम होने पर भी भट्टि ने अश्वघोष के समान कहीं-कहीं काव्य की ऊँचाई का आदर्श प्रस्तुत किया है। प्रसन्न काण्ड में तो साहित्यिक उत्कर्ष का निरूपण है। भट्टि अन्यत्र भी भावपूर्ण स्थलों में वैयाकरणत्व को छोड़कर कवि बन जाते हैं।

सीता परिणय की पूर्व पीठिका में शरद् ऋतु का मनोरम वर्णन भट्टि ने द्वितीय सर्ग के 19 श्लोकों में किया है। प्रातः काल में भ्रमर को, कुमुद्वती सम्पर्क से दूषित होने के कारण, पद्मिनी अपने पास सटने नहीं दे रही है। वह भ्रमर पर कुपित है जैसे मानिनी स्त्री अपने प्रेमी को दूसरे के साथ नहीं देख सकती –

प्रभात वाताहति कम्पिताकृतिः

कुमुद्वती रेणु पिशङ्गविग्रहम्।

निरास भृङ्गं कुपितेव पद्मिनी

न मानिनी संसहतेऽन्यसङ्गमम्॥ (रावण. 2.6)

रावण वध के दशम सर्ग से यमकावली का उदाहरण देखिए –

न गजा नगजा दयिता दयिता

विगतं विगतं ललितं ललितम्।

प्रमदा प्रमदा महता महता

मरणं मरणं समयात्समयात् ।। (रावण. 10.9)

इस महाकाव्य के बारहवें सर्ग में विभीषण की मन्त्रणा के रूप में बहुत सुन्दर नीतिप्रद उपदेश दिए गए हैं। एक पद्य में विभीषण कहता है कि सीता हरण के कारण राम सन्तप्त हैं और बन्धुओं के मारे जाने से इधर हम भी सन्तप्त हैं। जैसे तप्त लोहे से तप्त लोहा जोड़ा जाता है, वैसे ही संतप्त पक्षों के बीच सन्धि की जानी चाहिए और सीता को छोड़ दिया जाना चाहिए –

रामोऽपि दाराहरणेन तप्तो

वयं हतैर्बन्धुभिरात्मतुल्यैः ।

तप्तस्य तप्तेन यथायसो नः

सन्धिः परेणास्तु विमुयंच सीताम् ।। रावण. 12.40

एक ओर काव्य का आनन्द लिया जाए और दूसरी ओर व्याकरण के नियमों और प्रयोगों को आत्मसात् किया जाए – भट्टि ने यही लक्ष्य रखा था। भाषा को सजाने का साधन तो व्याकरण अवश्य है, किन्तु भट्टि ने भाषा पर बहुधा व्याकरण को इतना प्रभावी बना दिया है कि कहीं-कहीं धातु रूप पाठ का भ्रम होता है, जैसे लंका में पहुँचे हुए वानरों के क्रिया कलाप के वर्णन में लिट् लकार के रूपों से भरे इस पद्य को देखिए –

भ्रेमुर्ववल्गुर्ननृतुर्जक्षुर्जगुः

समुत्पुप्लुविरे निषेदुः ।

आस्फोटयांचक्रूरभिप्रणेदुः

रेजुर्नन्दुर्विययुः समीयुः ।। (रावण. 13.28)

इस प्रकार काव्य के आरम्भ में दशरथ का वर्णन करते हुए अनेक लघुवाक्य लुङ्लकार के सिच् वाले रूपों से भरकर एक ही पद्य में कवि ने छोड़ रखे हैं –

सोऽध्यैष्ट वेदाँस्त्रिदशानयष्ट

पितृनपारीत् सममंस्त बन्धून् ।

व्यजेष्ट षड्वर्गमरंस्त नीतौ

समूलघातं न्यवधीदरींश्च ।। रावण. 1.3

यहाँ अध्यैष्ट (अध्ययन किया), अयष्ट (यज्ञ किया) अपारीत् (तृप्त किया), सममंस्त (आदर किया), व्यजेष्ट (जीत लिया), अरंस्त (रम गया), न्यवधीत् (मार दिया) – ये सभी लुङ् के प्रयोग हैं जिनमें च्लि विकरण का सिच् आदेश है।

भट्टिकाव्य की महत्ता शास्त्र के तुल्य मानी गई है। संस्कृत भाषा का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए इसे अष्टाध्यायी और अमरकोश के परस्पर समन्वित परिणत फल के रूप में माना गया है। निर्णयसागर प्रेस संस्करण भट्टिकाव्य प्रस्तावना श्लोक—3 में देखिये –

अष्टाध्यायी जगन्माताऽमरकोशो जगत्पिता ।

भट्टिकाव्यं गणेशश्च त्रयीयं सुखदास्तु वः ।।

अर्थात् व्याकरण, कोश, छन्द, अलंकार और रस—इन पाँचों से समन्वित भट्टिकाव्य शोभायुक्त है।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि अन्य उपादानों के विषय में सत्य जो भी हो, व्याकरण की तो सभी प्रक्रियाओं का भरपूर प्रयोग भट्टि ने किया है। राम के चारु चरित्र के वर्णन में सभी उपादान स्वमेव आ जाते हैं।

कुमारदास

कुमारदास रामकथा को अपने काव्य का कथानक मानकर महाकाव्य की रचना करने वाले वाल्मीकि के पश्चात् प्रथम कवि कहे जा सकते हैं। कालिदास ने तो रघुवंश में एक राजा के रूप में राम के चरित्र का वर्णन किया है। सम्भवतः इसीलिए राजशेखर ने कुमारदास की प्रशंसा में लिखा है –

जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति ।

कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमः ।।

अर्थात् रघुवंश के स्थित होने पर भी या तो कवि कुमारदास अथवा रावण ही जानकीहरण करने में समर्थ हुए। इसमें श्लेष द्वारा जानकीकरण का अर्थ सीता का हरण और जानकीहरण काव्य हैं तथा रघुवंश के अर्थ रघुवंशी और रघुवंश महाकाव्य हैं।

स्थान व समय — कुमारदास के स्थान के विषय में मतभेद होने पर भी अधिसंख्यक प्रमाण इन्हें सिंहल (लंका) का निवासी सिद्ध करते हैं। उनका महाकाव्य सिंहली भाषा में शब्दशः अनुवाद के रूप में सुरक्षित है। कीथ ने काशिकावृत्ति (650 ई. के आसपास) का प्रभाव कुमारदास पर बताया है। दूसरी ओर वामन (800 ई.) ने उनके एक प्रयोग पर टिप्पणी दी है। इसलिए इनका समय 650–700 ई. के बीच मानना युक्तियुक्त है।

जानकीहरण महाकाव्य

कुमारदास की केवल एक ही रचना मिली है, जो जानकीहरण महाकाव्य है। इसमें बीस सर्ग हैं। जानकीहरण की सर्गानुसार कथा इस प्रकार है —

- सर्ग — 1. अयोध्या, दशरथ तथा उनकी रानियों का वर्णन
2. रावण के चरित्र का बृहस्पति द्वारा वर्णन
3. राजा दशरथ की जलकेलि तथा सन्ध्या वर्णन
4. रामादि भाइयों का जन्म
5. ताड़का एवं सुबाहु का वध
6. राम लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र का जनकपुर गमन तथा जनक से भेंट
7. राम और सीता का प्रेम एवं विवाह
8. सीता और राम का श्रृंगार
9. विवाह के बाद भाइयों का अयोध्या पहुँचना
10. दशरथ द्वारा राजनीति का प्रवचन, राम वनगमन, सीताहरण
11. राम हनुमान की मित्रता, बालिवध तथा वर्षा वर्णन

12. शरद् ऋतु के आरम्भ में लक्ष्मण का सुग्रीव को डाँटना, सुग्रीव की क्षमा याचना, पर्वत वर्णन।
13. हनुमान द्वारा लंका दहन
14. समुद्र पर सेतुबन्ध
15. अंगद का रावण की सभा में जाना
16. राक्षसों के विलास का वर्णन
- 17–20. युद्ध वर्णन, राम की विजय

कुमारदास का काव्य वैशिष्ट्य

कुमारदास ने महाकाव्यों की अलंकारवादी प्रवृत्ति के युग में 'जानकीहरण' महाकाव्य की रचना की है। अतएव अलंकरण और लम्बे वर्णनों का इसमें प्राधान्य है, फिर भी वर्णन कथानक को नहीं छोड़ते। ये कथा के अंग हैं। भारवि के समान इसमें भी चित्रकाव्य के प्रति बहुत आकर्षण दिखायी पड़ता है। अठारहवें सर्ग में डटकर चित्रकाव्य दिखाया गया है। सन्ध्या, सूर्यास्त, अन्धकार, चन्द्रोदय आदि का अलंकृत वर्णन कवि के प्रकृति प्रेम का सूचक है।

भावों के वर्णन में कवि की सहज प्रवृत्ति कहीं-कहीं चित्त को हठात् खींच लेती है, जैसे बालक रूप राम का यह चित्रण स्वाभाविक शिशुलीला का रूप प्रस्तुत करता है —

न स राम इह क्व यात

इत्यनुयुक्तो वनिताभिरग्रतः।

निजहस्तपुटावृताननो

विदधेऽलीक निलीननमर्भकः॥ जानकी. 4.8

“राम यहाँ नहीं है, कहाँ गए?” इस प्रकार जब स्त्रियाँ खेल खेल में पूछने लगीं, तो उनके सामने शिशु राम ने अपनी हथेलियों से मुँह ढक लिया और अपने को झूठ-मूठ में छिपा लिया।

यमक के द्वारा भी अर्थ सौन्दर्य उत्पन्न करने में कुमारदास की विशिष्टता है, जैसे —

अतनुना तनुना घनदारुभिः

स्मरहितं रहितं प्रदिधक्षुणा ।

रुचिरभाचिरभासितवर्त्मना

प्रखचिता खचिता न न दयिता ।।

अर्थात् सुन्दर कान्ति वाली बिजली से प्रकाशित करने वाले बलशाली कामदेव ने बादलरूपी लकड़ियों से विरही प्रेमी को जलाने की इच्छा से आकाश रूपी चिता प्रस्तुत करके उसमें आग लगा दी ।

कुमारदास ने भी प्रमुख रूप से अनुष्टुप् (सर्ग 2, 6, 10) उपजाति (1, 3, 7), वंशस्थ (5, 9, 12) वैतालिक (4), स्थोद्धता (8), द्रुतविलम्बित (11), प्रतिमाक्षरा (13) इत्यादि का एवं गौण रूप में मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, शार्दूल विक्रीडित और स्रग्धरा आदि लोकप्रिय छन्दों का प्रयोग किया है ।

भारवि के समान कुमारदास ने अर्थान्तरन्यास का प्रयोग करते हुए कुछ मनोरम सूक्तियाँ भी दी हैं, जैसे —

सज्जनेषु विहितं हि यच्छुभं, सद्य एव फलबन्धि जायते (जानकी. 8.45)

अर्थात् सज्जनों के प्रति किया गया शुभकर्म शीघ्र ही सुन्दर फल देता है ।

पतिप्रसादोन्नतयो हि योषितः (जानकी. 9.4) पति को प्रसन्न रखना ही स्त्रियों का उत्कर्ष है ।

कुलस्त्रियो भर्तृजनस्य भर्त्सने परं हि मौनं प्रवदन्ति साधनम् (जानकी. 9.6)

पति के द्वारा डाँटे जाने पर कुलवधुओं के लिए मौन धारण करना ही उत्तमसाधन है ।

ए.बी. कीथ ने कुमारदास की प्रशंसा में कहा है — “सौन्दर्य सम्भवतः कुमारदास की प्रधान विशेषता है । उनकी कविता में प्रसादयुक्त शैली में ध्वनि और छन्द के सौन्दर्य के साथ अभिव्यक्त की गई सुरुचिपूर्ण कल्पनाएँ बहुलता से पाई जाती हैं । संस्कृत के अतिरिक्त अन्य कोई भाषा उक्त प्रकार के सौन्दर्य को उत्पन्न कर ही नहीं सकती । (संस्कृत साहित्य का इतिहास (कीथ) हिन्दी अनुवाद, पृ. 149

माघ

महाकवि माघ आबू पर्वत के निकट राजस्थान के सिरोंही जिले के अन्तर्गत श्रीमाल के भीनमाल नामक प्रसिद्ध नगर के निवासी कुमुद पण्डित (दत्तक सर्वाश्रय) के नाम से विख्यात एक धनी ब्राह्मण के पुत्र थे। माघ के पितामह श्री सुप्रभदेव राजा वर्मलात के यहाँ सर्वाधिकारी मन्त्री के पद पर आसीन थे। राजा वर्मलात संबंधी 682 सम्वत् का एक शिलालेख आबू के निकट वसन्तगढ़ से प्राप्त हुआ है। इस शिलालेख के वर्ष का सम्बन्ध कुछ विद्वान् शक सम्वत् से जोड़ते हैं तो कुछ विक्रम सम्वत् से। राजनैतिक घटनाओं के सन्दर्भ में इस बात की पुष्टि होती है कि वर्मलात का समय 682 शक संवत् अर्थात् 760 ई. ही ठीक है तथा यही समय माघ के पितामह सुप्रभदेव का था। भोज के साथ माघ का संबंध होने के कारण माघ को प्रतिहारवंशी मिहिर भोज (835–895) के समय में माना जा सकता है, जबकि कुछ विद्वान् माघ को सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही मानते हैं।

माघ कवि होने के साथ प्रकाण्ड पण्डित भी थे। एक बार उन्हें शास्त्रार्थ में नीचा देखना पड़ा। परिणामस्वरूप आत्मसम्मान की कवि देशाटन को चल दिये तथा जब वे देश-विदेश के भ्रमण से लौटे तो उन्होंने शिशुपालवध महाकाव्य का निर्माण करके वृद्धावस्था में अपनी कीर्ति को पुनः प्राप्त किया। माघ दानी भी बड़े थे तथा इनका बहुत सा धन दान में ही समाप्त हो जाता था। या तो इनकी यह अवस्था होती थी कि स्वयं राजा इनके द्वार पर आश्रय के लिए ठहरा करते थे या ये स्वयं दाने-दाने के लिए तरस रहे होते थे। प्रबन्ध चिन्तामणि तथा प्रभावकचरित से माघ के जीवन से संबंधित अनेक घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है। शिशुपाल वध के चौदहवें, पन्द्रहवें तथा उन्नीसवें सर्गों के कुछ श्लोकों में कवि ने श्लेष के माध्यम से अपने आश्रयदाता आदिवराह भोज का ही बार-बार स्मरण किया है। 19वें सर्ग के अन्त में माघ ने एक प्रशस्ति के द्वारा अपने पिता, पितामह आदि के नाम तथा उनके कार्यों का संकेत किया है।

शिशुपालवध

यह महाकवि की एकमात्र कृति 20 सर्गों के शिशुपालवध महाकाव्य के रूप में है। यह महाभारत के सभापर्व (अध्याय 35–46) से लिया गया है, जिसमें युधिष्ठिर के यज्ञ में शिशुपाल के मारे जाने की कथा है। श्रीमद्भागवतपुराण के दशम स्कन्ध (अध्याय 71–75) में भी शिशुपाल की कथा प्रायः वैसी ही है, जैसी इस महाकाव्य में वर्णित है। इसलिए बहुत से विद्वान् भागवतपुराण को ही इस महाकाव्य का उपजीव्य (स्रोत) बताते हैं। इस मूल कथानक को माघ ने कलात्मक और विविध वर्णनों का प्रयोग करके बड़ा बना दिया है, जिसमें किरातार्जुनीय की अपेक्षा बड़े-बड़े सर्गों में विभक्त 1645 पद्य हैं। पन्द्रहवें सर्ग में 34 प्रक्षिप्त श्लोक अतिरिक्त हैं, जिनकी रचना मल्लिनाथ के अनुसार माघ ने नहीं की है। पाँच पद्य कविवंश वर्णन के हैं, उन्हें लगाकर माघ की रचना 1650 पद्यों की है।

सर्गानुसार इसका वर्ण्य विषय

- सर्ग—1.** देवर्षि नारद का द्वारका में आगमन, श्रीकृष्ण द्वारा उनका सत्कार, नारद द्वारा शिशुपाल के पूर्वजन्मों तथा उनके अत्याचारों का वर्णन और शिशुपाल को मारने के लिए प्रेरित करना।
- सर्ग—2.** श्रीकृष्ण, बलराम और उद्धव की मन्त्रणा, बलराम का शिशुपाल पर आक्रमण का प्रस्ताव, किन्तु उद्धव का नीतिपूर्ण प्रस्ताव कि इस विषय में शीघ्रता न करके युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सेना सहित भाग लें।
- सर्ग—3.** द्वारका से श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान, नगरी, सेना और समुद्र का वर्णन।
- सर्ग—4.** रैवतक पर्वत का वर्णन।
- सर्ग—5.** रैवतक पर शैल्य शिविर की स्थापना।
- सर्ग—6.** छह ऋतुओं का द्रुतविलम्बित छन्द में 'यमक' का निवेश करते हुए वर्णन।
- सर्ग—7.** वन विहार वर्णन।
- सर्ग—8.** जल क्रीडा वर्णन।

- सर्ग—9.** सन्ध्या, चन्द्रोदय तथा शृंगार—विधान का वर्णन ।
- सर्ग—10.** पान गोष्ठी एवं रात्रि विहार का वर्णन ।
- सर्ग—11.** प्रभात वर्णन ।
- सर्ग—12.** श्रीकृष्ण का पुनः प्रस्थान तथा यमुना नदी का वर्णन
- सर्ग—13.** श्रीकृष्ण और पाण्डवों का मिलना, नगर—प्रवेश तथा दर्शक नारियों की चेष्टाओं का वर्णन ।
- सर्ग—14.** युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ का प्रस्ताव, श्रीकृष्ण की पूजा तथा भीष्म द्वारा उनकी स्तुति ।
- सर्ग—15.** शिशुपाल का कोप और उसके पक्ष के राजाओं का युद्ध के लिए तैयार होना ।
- सर्ग—16.** शिशुपाल के दूत का श्रीकृष्ण के समक्ष उभयार्थक शब्दों का प्रयोग, सात्यकि का उत्तर, दूत का पुनः शिशुपाल के पराक्रम का वर्णन करना ।
- सर्ग—17.** श्रीकृष्ण के पक्ष के राजाओं का कोप, सेना की स्तुति तथा प्रस्थान ।
- सर्ग—18.** सेनाओं का घोर युद्ध ।
- सर्ग—19.** चित्रालंकार से पूर्ण पद्यों के द्वारा व्यूह रचना एवं विचित्र युद्ध का वर्णन ।
- सर्ग—20.** श्रीकृष्ण और शिशुपाल का शस्त्रयुद्ध, दिव्यास्त्र युद्ध तथा वाग्युद्ध, शिशुपाल के अपशब्दों से कुपित कृष्ण द्वारा सुदर्शन से शिशुपाल का शिरश्छेदन, शिशुपाल के तेज का विजयी कृष्ण में प्रवेश ।

माघ का साहित्यिक वैशिष्ट्य

संस्कृत साहित्य में एकमात्र माघ ही ऐसे कवि हैं, जिन्होंने अपने काल तक विकसित महाकाव्यों के सभी उत्कृष्ट गुणों का समावेश अपनी रचना में किया है। कालिदास का काव्य सौंदर्य और अभिव्यंजना भी इनमें है, तो भारवि का अर्थगौरव एवं भट्टि का शब्दशास्त्रानुराग भी इनमें वर्तमान है। काव्य के अन्तरंग भेद उत्तम, मध्यम और चित्रकाव्य के रूप में मम्मट द्वारा कालान्तर में किये गए। माघ ने तीनों के उदाहरण अपनी रचना में पहले ही प्रस्तुत कर रखे हैं। कलापक्ष और भावपक्ष दोनों को सजाने—संवारने की प्रवृत्ति माघ में पुष्कल रूप में है, तभी

तो इन्होंने जीवन में दैव और पुरुषार्थ के समन्वय के समान काव्य जगत् में शब्द और अर्थ दोनों का समान महत्त्व स्थापित किया है —

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे ।

शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ।। शिशुपाल. 2.86

अर्थात् बुद्धिमान केवल भाग्य का ही अवलम्बन नहीं करता अथवा केवल पुरुषार्थ पर ही निर्भर नहीं रहता, किन्तु जिस प्रकार श्रेष्ठ कवि शब्द और अर्थ दोनों की अपेक्षा करता है, उसी प्रकार विद्वान् भी भाग्य तथा पुरुषार्थ दोनों का अवलम्बन करता है ।

विद्वानों के बीच एक लोकोक्ति है — “काव्येषु माघः कविः कालिदासः” अर्थात् कवि की दृष्टि से कालिदास श्रेष्ठ है, किन्तु काव्य के लेखन में माघ उत्कृष्ट है। अलंकारवादी महाकवियों में भी माघ अग्रणी है, क्योंकि प्रौढ़ पाण्डित्य के साथ कथानक को विचित्र मार्ग पर ले जाने की क्षमता इसमें सर्वाधिक है ।

भारवि की प्रतिस्पर्धा में आगे बढ़ने के लिए तथा चित्र काव्य का समावेश करने के लिए माघ ने शिशुपालवध के 19वें सर्ग में एकाक्षर, द्वयक्षर, सर्वतोभद्र, मुरजबन्ध, प्रतिलोमयमक, गोमूत्रिकाबन्ध अर्धप्रतिलोमयमक तथा चक्रबन्ध जैसे श्रमसाध्य चित्रकाव्यों का प्रयोग किया है। एकाक्ष पद्य का उदाहरण देखिये —

दाददो दुद्ददुद्दादी दादादो दूददीददोः ।

दुद्दादं दददे दुद्दे ददाददददोऽददः ।। शिशु. 19.114

अर्थात् दान देने वाले (दादद) दुष्टों को उपताप देने वाले (दुद्दो) शुद्धि देने वाले (दादाद) के नाशक बाहुवाले और दाताओं तथा अदाताओं दोनों को देने वाले श्रीकृष्ण भगवान ने दुःखदायी शत्रु (दुद्दु) पर दुःखदायी बाण को चलाया ।

माघ ने द्वयक्षर पद्यों की तो शिशुपालवध के 19वें सर्ग में भरमार कर रखी है —

(व, भ) विभावी विभवी भाभ्रो विभाभावी विवो विभीः ।

भवाभिभावी भावावो भवाभावो भुवो विभुः ।। शिशु. 19.86

(प, र) प्रापे रूपी पुराऽरेपाः परिपूरी परः परैः ।

रोपैपारैरुपरि पुपूरेऽपि पुरोऽपरैः ।। शिशु. 19.94

(ल, क) लोकालोकी कलोऽकल्क—कलिलोऽलिकुलालकः ।

कालोऽकलोऽकलिः काले कोलकेलिकिलः किल ।। शिशु. 19.48

(द, र) दारी दरदरिद्रोऽरिदारुदारोऽद्रिदूरदः ।

दुरादरौद्रोऽददरद्रोदोरुद्दारुरादरी ।। शिशु. 19.106

(क, र) क्रूरारिकारि कोरेककारकः कारिकाकरः ।

कोरकाकारकरकः करीरः कर्करोऽर्करुक् ।। शिशु. 19.104

प्रतिलोम यमक का प्रयोग भी माघ ने बड़ी कुशलता से किया है। चित्रकाव्य के अन्तर्गत प्रतिलोम यमक वहाँ होता है, जहाँ किसी श्लोक के अन्तिम अक्षर से लौटते हुए पूर्व की ओर उसे पढ़ें तो इससे नवीन अर्थ की प्राप्ति होती है —

विदितं दिवि केऽनीके तं यातं निजिताजिनि ।

विगदं गवि रोद्धारो योद्धा यो नतिमेति न ।। शिशु. 19.90

उपर्युक्त का उलटा —

नतिमेति न योद्धा यो रोद्धारो विगदं गवि ।

निजिताजिनि तं यातं केऽनीके विदितं दिवि ।।

उपर्युक्त श्लोक को सीधा और उल्टा पढ़ने से एक ही अर्थ की प्राप्ति होती है। “जो योद्धा (श्रीकृष्ण भगवान् शत्रुओं के सामने) कभी नम्र नहीं हुए, जो युद्ध को सम्यक् प्रकार से जीती हुई सेना में पहुँचे हुए एवं जो स्वर्ग में भी विख्यात थे, उन निरामय (श्रीकृष्ण भगवान्) को पृथ्वी पर रोकने (जीतने) वाला कौन था? अर्थात् कोई नहीं।

माघ के पाण्डित्य और कवित्व के विषय में कई प्रशस्तियाँ विख्यात हैं। इनके शब्द भाण्डागार के विषय में कहा गया है —

“नवसर्गगते माघे नव शब्दो न जायते ।”

अर्थात् माघकाव्य में नौ सर्ग समाप्त कर लेने पर संस्कृत में कोई नया शब्द जानने को नहीं रह जाता। एक अर्थ के लिए माघ ने यथाशक्ति पुनः उसी नाम और आख्यात की आवृत्ति

नहीं की है। उदाहरणार्थ एकादश सर्ग में सूर्य का वर्णन 43वें पद्य से आरम्भ करके अन्त तक (67वें पद्य तक) किया गया है, किन्तु कहीं भी सूर्य के किसी एक नाम को दुहराया नहीं गया है। ये प्रयोग शब्दों पर कवि के अधिकार को सिद्ध करते हैं।

माघ की एक अन्य प्रशस्ति है —

“माघे मेघे गतं वयः”

अर्थात् माघकाव्य के अध्ययन में और मेघदूत का आनन्द लेने में सारी आयु बीत गई। इन दोनों काव्यों के समीचीन अनुशीलन तथा आस्वादन में यदि किसी विद्वान् का पूरा जीवन लग जाए, तो आश्चर्य की बात नहीं।

माघ विषयक प्रशस्तियों में निम्न उक्ति सर्वाधिक प्रसिद्ध है —

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरम्।

दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।

अर्थात् महाकवि कालिदास की विशिष्टता उपमा के कारण है, भारवि का प्रधान गुण अर्थगौरव है, दण्डी की विशिष्टता पद लालित्य के कारण है तो माघ में पूर्वोक्त तीन गुणों का समन्वित प्रयोग वैशिष्ट्य है। परम्परा में समीक्षकों ने यही व्याख्या की है कि माघ में ये सारी विशिष्टताएँ (उपमा, अर्थ गौरव और पदलालित्य) वर्तमान हैं। यह तात्पर्य नहीं है कि माघ उन कवियों से बढ़कर है, बल्कि ये कवि अपनी विशिष्टताओं से सम्पन्न है तो माघ इनका समन्वय करने में श्रेष्ठ है।

माघ कभी-कभी अपने पाण्डित्य को दिखाते हुए शास्त्रीय उपमान भी देता है। वैसे उनकी उपमाएँ सामान्य जीवन की हैं। माघ की सामान्य उपमाओं में बहुत प्रसिद्धि है, जिसके कारण उन्हें ‘घण्टामाघ’ का विरुद्ध प्राप्त हुआ है।

शास्त्रगत उपमाओं में माघ से आगे बढ़ने की कल्पना भी नहीं हो सकती। आयुर्वेद, वेद, व्याकरण आदि शास्त्रों के अवगाहन से ही इन उपमाओं का सौन्दर्य जाना जा सकता है। इनके महाकाव्य में द्वितीय सर्ग में राजनीति की तुलना शब्दविद्या से की गई है —

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।

शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ।। शिशु. 2.112

माघ के अर्थान्तरन्यास भी, भारवि की प्रतिस्पर्धा के कारण बड़े व्यापक अर्थ निवेश से सम्पन्न हैं। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं :

1. श्रेयसि केन तृप्यते (शिशु. 1.29)
2. सदाभिमानैकधना हि मानिनः (1.67)
3. ज्ञातसारोऽपि खल्वेकः सन्दिग्धे कार्यवस्तुनि (2.12)
4. महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः (2.13)
5. सर्वं स्वार्थं समीहते (2.65)
6. शास्त्रं हि निश्चितधियां क्व न सिद्धिमेति (5.47)
7. मन्दोऽपि नाम न महानवगृह्य साध्यः (5.49)
8. समय एव करोति बलाबलम् (6.44)
9. परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहः (6.45)
10. क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः (4.17)

माघ और भारवि की तुलना

“संस्कृत साहित्य का इतिहास” के रचयिता डॉ. उमाशंकर शर्मा ‘ऋषि’ ने माघ और भारवि की तुलना निम्न प्रकार से की है —

भारवि के द्वारा प्रवर्तित अलंकार पद्धति का माघ ने अनुसरण किया तथा इसे प्रौढ़ता दी। भावों की अभिव्यक्ति, चित्र काव्य, अलंकार प्रयोग, विषय व्यवस्थापन आदि में माघ भारवि से आगे हैं। छन्दों की योजना एवं वर्णनों की विपुलता में भी भारवि को माघ ने पृष्ठभूमि में डाल दिया है। भारवि के काव्य से पद-पद पर प्रतिस्पर्धा करने वाले माघ ने अपने महाकाव्य को श्रेष्ठतर बनाने का भूरि-भूरि प्रयास किया है।

भारवि ने 'किरातार्जुनीय' में शिव का गुणगान किया है तो माघ ने विष्णु के अवतार कृष्ण का महात्म्य 'शिशुपालवध' में वर्णित किया है। परवर्ती कवि रत्नाकर ने पुनः शिव की महिमा गाकर अपने महाकाव्य 'हरविजय' में माघ को पराजित करने का निष्फल प्रयास किया।

भारवि तथा माघ दोनों ने महाभारत से ही अपने ग्रन्थों के कथानक लिए श्री शब्द से काव्यों का आरम्भ किया और संवाद से प्रथम सर्ग का प्रवर्तन किया। माघ काव्य में कृष्ण नारद संवाद है तो भारवि के काव्य में युधिष्ठिर और वनेचर का संवाद है। दोनों संवाद ही महाकाव्य की मुख्य घटनाओं को प्रवर्तित करते हैं। वनेचर की सूचना से यदि पाण्डवों को शक्ति संग्रह के लिए प्रयत्न करने के क्रम में अर्जुन को शिव से पाशुपतास्त्र पाने के लिए तपस्या करनी पड़ती है, तो नारद के वाक्यों को सुनकर कृष्ण भी शिशुपालवध के लिए प्रस्तुत होते हैं।

दोनों महाकाव्यों में द्वितीय सर्ग राजनीति वर्णन से भरे हैं। भारवि शरद् वर्णन करते हैं तो माघ षड् ऋतु वर्णन करते हैं। भारवि हिमालय के वर्णन को उदात्त बनाते हैं तो माघ रेवतक जैसे साधारण पर्वत को उदात्त वर्णन से सनाथ करते हैं। भारवि सर्ग 3 को और माघ सर्ग 4 को विविध छन्दों से भर देते हैं। यहाँ भारवि ने 16 और माघ ने 22 छन्दों का प्रयोग किया है।

भारवि के काव्य में द्रौपदी तथा भीम युधिष्ठिर को उत्तेजित करते हैं और माघकाव्य में कृष्ण को नारद और बलराम उत्तेजित करते हैं। युधिष्ठिर को व्यास का सत्परामर्श मिलता है तो कृष्ण को उद्धव का।

भारवि ने अपने काव्य के सर्ग छोटे रखे हैं, जबकि माघकाव्य के सर्ग उनसे बड़े हैं। अर्थगौरव से भरे अर्थान्तरन्यासात्मक सूक्तियों को छोड़कर माघ भारवि से बहुत आगे हैं। जिस मार्ग का आरम्भ भारवि ने किया, उसे माघ ने परिणति पर पहुँचा दिया। इसीलिए कहा जाता है —

“तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।”

अर्थात् भारवि की शोभा माघ के उदय के पूर्व तक ही है। माघ का उदय होने पर या आ जाने पर सूर्य की किरणें जैसे मन्द हो जाती हैं वैसे भारवि की शोभा भी मन्द हो गई।

रत्नाकर

रत्नाकर का समय 800—850 ई. माना जाता है। अवन्तिवर्मा के राज्यकाल में रत्नाकर को विशेष ख्याति मिली थी। रत्नाकर ने अपना वार्धव्य उनके शासनकाल में व्यतीत किया। उनके पिता का नाम अमृतभानु था। रत्नाकर की दो उपाधियाँ थी — राजानक तथा वागीश्वर। रत्नाकर की तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं — हरविजय, वक्रोक्तिपंचाशिका तथा ध्वनिगाथापंजिका। इनमें हरविजय महाकाव्य के कारण ही इन्हें ख्याति मिली।

हरविजय महाकाव्य

यह संस्कृत भाषा का विशालतम महाकाव्य है, जिसमें 50 सर्ग तथा 4321 पद्य हैं। इसमें शिव से अन्धकासुर के जन्म तथा शिव द्वारा ही उसके संहार की कथा वर्णित है। लघुकाय कथा होने के कारण एवं वर्णनों के फैलाव के कारण इसमें कथा प्रवाह प्रायः समाप्त है। दूसरे प्रसंगों से अनेक सर्ग भरे हुए हैं। ग्यारह सर्गों में अन्धकासुर के वध के लिए शिव के मन्त्रियों का परामर्श, तेरह सर्गों में शिव गणों का विहार तथा सात सर्गों में शिव के दूत और अन्धकासुर का संवाद वर्णित है। युद्ध वर्णन में ही 11 सर्ग लगे हुए हैं। ये वर्णन ही ग्रन्थ के विस्तार का कारण हैं।

भारवि की प्रतिस्पर्धा में जिस प्रकार माघ ने काव्य लिखा, उसी प्रकार माघ की प्रतिस्पर्धा में यह काव्य लिखा गया है। दोनों अपने इष्ट देवों की विजयगाथा के गायक कवि हैं। अल्प कथानक को इतना विस्तार देने वाला कवि संस्कृत में दूसरा कोई नहीं। चित्रालंकार का निवेश इसमें बड़े-बड़े छन्दों में किया गया है।

इस महाकाव्य की चर्चा राजतरंगिणी में की गई है। क्षेमेन्द्र ने रत्नाकर के द्वारा प्रयुक्त वसन्ततिलका छन्द की प्रशंसा की है और कश्मीरी विद्वान् राजानक अलक ने इसकी प्रथम व्याख्या लिखी है (1000 ई.)। सूक्ति संग्रहों में भी 'हरविजय' के पद्य बहुधा उद्धृत किए हैं।

माघ के समान शास्त्रीय उत्कर्ष का भी प्रदर्शन रत्नाकर ने किया है। षष्ठ सर्ग में प्रायः 200 पद्यों में शिव की स्तुति की गई है, जिनमें एक-एक पद्य शास्त्रगत पाण्डित्य से विभूषित है। रत्नाकर ने माघ के समान अपने महाकाव्य को सर्वांगपूर्ण बनाने का अत्यधिक प्रयास किया है। चित्रकला, संगीत और नृत्य का शास्त्रानुकूल विवेचन एवं विश्लेषण भी कवि ने किया है। कवि ने अपने ग्रन्थ के विषय में गर्वोक्ति की है कि इसमें प्रसाद, माधुर्य, ओज, श्लेष, यमक, लालित्य, चित्रालंकार आदि सब कुछ है। इसे पाकर न केवल राजा में अपितु बृहस्पति के चित्त में भी शंका उत्पन्न हो जाती है —

ललितमधुराः सालंकाराः प्रसादमनोहरा
विकट यमक श्लोषोद्धार प्रबन्ध निरर्गलाः ।
असदृशमतीश्चित्रे मार्गे ममोद्गिरतो गिरो
न खलु नृपतेश्चेतो वाचस्पतेरपि शङ्कते ।।

रत्नाकर का महाकाव्य अलंकृत पद्धति का अन्तिम ग्रन्थ है। भारवि और माघ द्वारा प्रवर्तित शैली इसके आगे नहीं जा सकी। रत्नाकर ने इस ग्रन्थ में प्रतिज्ञा की है कि इसे पढ़ने वाला अकवि भी कवि बन जाता है तथा कवि क्रमशः महाकवि हो जाता है —

हरविजय महाकवेः प्रतिज्ञां
शृणुत कृतप्रणयो मम प्रबन्धे ।
अपि शिशुरकविः कविः प्रभावाद्
भवति कविश्च महाकविः क्रमेण ।।

श्रीहर्ष

भारवि और माघ के साथ श्रीहर्ष का नाम संस्कृत के महान् कवियों के रूप में लिया जाता है। इन तीनों के महाकाव्य 'बृहत्त्रयी' के नाम से विशिष्ट रूप में जाने जाते हैं। इनका

महाकाव्य 'नैषधीयचरित' अलंकृत और रसमयी अर्थात् विचित्र और सुकुमार दोनों पद्धतियों का समन्वय करता है। भारवि द्वारा प्रवर्तित चित्रालंकार की प्रवृत्ति इसमें नहीं है, फिर भी कल्पनाजन्य वर्णनों का प्राचुर्य इस काव्य को भारवि और माघ के काव्यों से आगे बढ़ा देता है—

“उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः”

श्री हर्ष ने अपने महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में अपने नाम के साथ अपने पिता तथा अपनी माता मामल्यदेवी के नामों का भी उल्लेख किया है। इन श्लोकों से यह भी ज्ञात होता है कि वे कान्यकुब्जेश्वर (कन्नौज के राजा) जयचन्द्र के दरबार कवि थे तथा जयचन्द्र से सदा दो ताम्बूल व आसन पाया करते थे। श्रीहर्ष अपने युक्तिवचनों से शास्त्रार्थों में प्रतिवादी को तर्कशून्य कर देते थे। अतिरसवती होने से उनकी कविता मधुवर्षा करने वाली कही गई है।

स्थितिकाल — श्रीहर्ष की रचना 'खण्डन खण्ड खाद्य' की एक उक्ति में महिमभट्ट तथा उनकी रचना व्यक्तिविवेक का उल्लेख हुआ है। महिमभट्ट का समय 1020 तथा 1100 ई. के बीच माना जाता है। दूसरी ओर हेमचन्द्र के शिष्य महेन्द्रसूरि ने अनेकार्थ संग्रह की टीका करते हुए अनेक पद नैषध से उदाहरण के रूप में दिये हैं। उपर्युक्त आधार पर नैषध का समय 1150 ई. के आसपास होना सम्भव है। गाहडवाल वंशीय गोविन्दचन्द्र का समय भी 1104 से 1154 ई. तक है। श्रीहर्ष विरचित 'विजय प्रशस्ति' इन्हीं महाराज गोविन्दचन्द्र के पुत्र विजयचन्द्र की प्रशंसा में लिखा गया काव्यग्रन्थ प्रतीत होता है।

रचनाएँ — श्रीहर्ष ने नैषधीय चरित के अतिरिक्त शिवशक्ति सिद्धि, स्थैर्य विचरण, खण्डन खण्ड खाद्य, नवसाहसांक चरितचम्पू, अर्णववर्णन, गोडोर्वीशकुलप्रशस्ति, श्रीविजयप्रशस्ति तथा छिन्दप्रशस्ति नाम के तान्त्रिक उपासना, दार्शनिक विचार और काव्य विषयों वाले अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया। इन ग्रन्थों का उल्लेख उनके द्वारा प्रसिद्ध महाकाव्य नैषधीयचरित के बीच-बीच में किया हुआ मिलता है। इनके नैषधीयचरित का सम्मान कश्मीर के चतुर्दश विद्याओं के विशेषज्ञ विद्वानों द्वारा हुआ था। इनके अभी केवल दो ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं —

नैषधीयचरित महाकाव्य

महाकवि श्रीहर्ष रचित एकमात्र उपलब्ध काव्य के रूप में नैषधीयचरित भारतीय विद्वानों के बीच अत्यधिक प्रसिद्ध है। इसमें नल और दमयन्ती के परस्पर प्रणय और परिणय का कथानक है। 22 सर्गात्मक नैषधीयचरित के कथानक का आधार महाभारत की नल कथा है, जो वनपर्व में संकलित है, किन्तु उनका सम्पूर्ण व्याख्यान इसमें नहीं है। विवाह के अनन्तर जो नल-दमयन्ती को कलि के कारण संकट झेलने पड़े, वे इसमें वर्णित नहीं हैं।

इस महाकाव्य में अल्प कथानक को लम्बे-लम्बे 22 सर्गों में फैलाया गया है, जिसमें कवि की कल्पना शक्ति और तर्क प्रवणता का महत्वपूर्ण योगदान है। इसके केवल दो सर्ग छोटे हैं (13, 19) अन्यथा सभी सर्गों में 100 से अधिक पद्य हैं। कई सर्गों में 150 से भी अधिक पद्य हैं तथा सर्ग 17 में 222 पद्य हैं।

सर्गानुसार कथा

- सर्ग-1 :** नल दमयन्ती का एक दूसरे के गुणों को सुनकर परस्पर अनुरक्त होना, नल का विहार, एक हंस को पकड़ना किन्तु दयावश छोड़ देना।
- सर्ग-2 :** हंस की कृतज्ञता तथा दमयन्ती का गुण वर्णन नल के अनुरोध पर हंस का दमयन्ती के पास कुण्डिनपुरी जाना।
- सर्ग-3 :** हंस का दमयन्ती के समक्ष नल का गुण वर्णन, दमयन्ती की नल विषयक अनुरक्ति तथा हंस का नल के पास लौटना।
- सर्ग-4 :** दमयन्ती की विकलता, चन्द्रोपालम्भ, उसके पिता भीमसेन द्वारा स्वयंवर का निर्णय।
- सर्ग-5 :** इन्द्र, अग्नि, यम और वरुण द्वारा नल को दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजना।

- सर्ग-6 :** अदृश्य रूप में नल का दमयन्ती के पास पहुंचना और उसके सौन्दर्य का निरीक्षण ।
- सर्ग-7 :** दमयन्ती का नख-शिख वर्णन ।
- सर्ग-8 :** नल का प्रकट होकर देवताओं का सन्देश दमयन्ती को सुनाना तथा उन चारों देवताओं में किसी एक को वरण करने का आग्रह ।
- सर्ग-9 :** नल दमयन्ती संवाद, दमयन्ती का देवताओं को वरण न करने का निश्चय और नल को स्वयंवर में आने के लिए राजी करना ।
- सर्ग-10 :** दमयन्ती के स्वयंवर का वर्णन ।
- सर्ग-11-12 :** सरस्वती द्वारा स्वयंवर में आए हुए राजाओं का परिचय दिया जाना ।
- सर्ग-13 :** इन्द्र, अग्नि, यम और वरुण के अतिरिक्त नल का श्लेषयुक्त पंचार्थ प्रतिपादक श्लोकों में सरस्वती का वर्णन ।
- सर्ग-14 :** दमयन्ती द्वारा देवताओं की स्तुति, देवताओं द्वारा दमयन्ती का श्लेष समझने की शक्ति देना, वास्तविक नल का वरण और देवताओं का आशीर्वाद ।
- सर्ग-15 :** विवाह का उपक्रम ।
- सर्ग-16 :** विवाह-संस्कार, भोजन तथा नल का अपनी राजधानी लौटना ।
- सर्ग-17 :** देवताओं का लौटना, मार्ग में कलि की सेना से भेंट, कलि द्वारा चार्वाक सिद्धान्त का वर्णन, देवताओं द्वारा खण्डन, नल के विवाह की बात सुनकर कलि का नल को राज्यच्युति और दमयन्ती को शाप देना ।
- सर्ग-18 :** नल और दमयन्ती का विहार ।
- सर्ग-19 :** प्रभातकाल में वैतालिक द्वारा नल को जगाना, सूर्योदय तथा चन्द्रास्त का वर्णन ।
- सर्ग-20 :** नल और दमयन्ती का प्रेमालाप ।
- सर्ग-21 :** नल द्वारा विष्णु, शिव, वामन आदि देवताओं की प्रार्थना ।
- सर्ग-22 :** सन्ध्या और रात्रि का वर्णन, चन्द्रोदय एवं दमयन्ती के सौन्दर्य का वर्णन, ग्रन्थ समाप्ति ।

श्रीहर्ष का साहित्यिक वैशिष्ट्य

महाकवि कालिदास के बाद के कलावादी कवियों में श्रीहर्ष सर्वोत्तम हैं, जिन्होंने सुकुमार मार्ग की सरसता और विचित्र मार्ग की प्रौढि का समन्वय करके एक अद्भुत महाकाव्य की रचना की। महाकाव्य के आरम्भ में राजा नल का वर्णन बिल्कुल नये ढंग से किया गया है, जिसमें श्लेष के द्वारा कल्पना की ऊँचाई दिखाई देती है –

अमुष्य विद्या रसनाग्रनर्तकी

त्रयीव नीताङ्गुणेन विस्तरम्।

अगाहताष्टादशतां जिगीषया

नव-द्वय-द्वीप-पृथग्जयश्रियम्॥ नैषध 1.5

नैषधचरित का मुख्य रस शृंगार है। शृंगार का सम्भोग पक्ष नल-दमयन्ती के समागम (सर्ग 18) में पूर्णतया चित्रित है, तो वियोग पक्ष को दमयन्ती की दृष्टि से चतुर्थ सर्ग में व्यापक रूप से अंकित किया गया है। संभोग शृंगार का एकचित्र इस प्रकार है –

स्वेन भावजनने स तु प्रियां

बहूमूल कुच-नाभि-चुम्बनैः।

निर्ममे रत रहः समापना

शर्मसार सम संविभागिनीम् ॥ नैषध ॥ 18.116

हंस को जब नल पकड़ लेता है तब हंस की उक्तियों में कवि ने आक्रोश और करुणा दोनों की अभिव्यक्ति की है –

पदे पदे सन्ति भटा रणोद्भटा

न तेषु हिंसारस एष पूर्यते?

धिगीदृशं ते नृपते कुविक्रमं

कृपाश्रये यः कृपणे पतत्त्रिणि॥ नैषध 1.132

अर्थात् संसार में पद पद पर युद्ध में प्रचण्ड पराक्रम करने वाले सैनिक हैं, उनसे तुम्हारा हिंसानुराग क्या नहीं पूरा होता? तुम्हारे इस निन्दित पराक्रम को धिक्कार है जो इस कृपापात्र दीन पक्षी पर प्रयुक्त हो रहा है।

मदेकपुत्रा जननी जरातुरा

नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।

गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्न

हा विधे! त्वां करुणा रुणद्धि नो ॥ नैषध 1.135

अर्थात् अपनी माता का एकमात्र पुत्र मैं ही हूँ। वह माँ वृद्धता से पीड़ित है। मेरी हंसी को नया प्रसव हुआ है, वह पतिव्रता है। उन दोनों (माँ और पत्नी) की जीविका चलाने वाला मैं ही हूँ। हे देव! उस हंस को मारते हुए क्या तुम्हें करुणा नहीं रोकती?

नैषधीयचरित की विशिष्टता है कि वर्णनों की लम्बाई होने पर भी कहीं उद्वेग नहीं होता, क्योंकि कथानक कहीं न कहीं सम्बद्ध रहता है। वर्णनों में भी श्रीहर्ष ने रसोद्भावना को मुख्य लक्ष्य रखा है। इसीलिए आरम्भ में ही कवि ने नल की कथा को रसों से ऐसा परिपूर्ण बताया है कि अमृत का भी तिरस्कार हो जाता है —

रसै कथा यस्य सुधावधीरणी

नलः स भूजानिरभूद्गुणाद्भुतः॥ नैषध 1.2

अपनी शैली को श्रीहर्ष ने प्रच्छन्न रूप से वैदर्भी बताया है। नैषध के आकर्षण का विषय यही वैदर्भी (दमयन्ती, रीति) है —

धन्यासि वैदर्भि! गुणैरुदारैः यमा समांकृष्यत नैषधोऽपि।

इतः स्तुतिः का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति॥ नैषध 3.116

हे वैदर्भि (दमयन्ती, वैदर्भी रीति) तुम अपने उदार गुणों के कारण धन्य हो, क्योंकि तुमसे नैषध (काव्य, नल) जैसा धीरोदात्त पुरुष (या महाकाव्य) आकृष्ट हो गया। इससे बढ़कर चन्द्रज्योत्स्ना की प्रशंसा क्या होगी कि विशाल सागर को वह अत्यन्त चंचल कर देती है?

जिस अर्थ गौरव (अर्थान्तरन्यास) के लिए भारवि आदि प्रसिद्ध हैं, उस क्षेत्र में भी श्रीहर्ष अग्रणी हैं। इनके कुछ प्रसिद्ध वाक्य इस प्रकार हैं —

क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभागजनः (1.102)

आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः (5.103)

कर्म कः स्वकृतमत्र न भुङ्क्ते (5.6)

प्रतीक्षते जातु न कालमार्तिः (3.91)

कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते (3.17)

पित्तेन दूने रसने सितापि तिक्तायते हंस कुलावंतस (3.94)

सब प्रकार के काव्य सौन्दर्य के साथ श्रीहर्ष दर्शन तथा अन्य शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उसका प्रभाव इनके काव्यों में भी दृष्टिगोचर होता है। इसीलिए इनके काव्य के लिए यह उक्ति प्रसिद्ध है —

“नैषधं विद्वदौषधम्”

अर्थात् नैषध विद्वानों के लिए औषध के समान है।

“नैषधे पदलालित्यम्”

श्री हर्ष के काव्यगत वैशिष्ट्य के अनेकानेक उपादानों में इनके पदलालित्य का बहुत आदर है। पदलालित्य श्रीहर्ष के श्लोकों का स्वाभाविक गुण है, जिसे लाने के लिए इन्हें पृथक् प्रयास नहीं करना पड़ता।

ऐतिहासिक महाकाव्य

कुछ पाश्चात्य विद्वानों तथा उनसे प्रभावित कुछ भारतीय विद्वानों की यह धारणा रही है कि भारत में इतिहास को सुरक्षित रखने की चेतना ही नहीं थी। संस्कृत में जिन ग्रन्थों को इतिहास की संज्ञा दी जाती है उनमें यथार्थ घटनाओं का विवरण तथा तिथिक्रम के निर्धारण का अभाव है। वास्तव में, पाश्चात्य विद्वानों की इतिहास विषयक जो सम्मति है वह भारतीय विद्वानों की नहीं रही है। यहाँ तिथिक्रम और यथातथ्य घटनाओं के वर्णन की अपेक्षा चरित्र के

उदात्त स्वरूप को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति अधिक रही है। यह अवश्य है कि अत्यन्त प्राचीन काल से 'इतिहास' शब्द का प्रयोग होता रहा है। जिसका अर्थ— 'इति ह आस' = निश्चय ही ऐसा हुआ था—किया जाता रहा था। ऋग्वेद में इतिहास से युक्त मन्त्रों की व्याख्या का निर्देश यास्क ने अपने निरुक्त में किया है। उसने व्याख्याकारों का एक मत ऐतिहासिक भी माना है और ब्राह्मणग्रन्थों तथा प्राचीन आचार्यों की कथाओं को 'इतिहासमाचक्षते' इस कथन के साथ उद्धृत किया है। छान्दोग्य उपनिषद् (7.1) में पुराण के साथ इतिहास को भी पंचमवेद कहा गया है। महाभारत (आदि०. 1.376). में आता है—इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृहयेत् । बिभेत्यल्पश्रुतात् वेदो मामयं प्रहरिष्यति—अर्थात् इतिहास और पुराण से वेद को समझने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि अल्पश्रुत अर्थात् थोड़ा जानने वाले व्यक्ति से वेद डरता है । कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी इतिहास को वेद माना गया है और इतिहास में ही पुराण, इतिवृत्त, उदाहरण, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि को समाहित किया गया है। राजशेखर ने उपवेदों में इतिहासवेद को सर्वोत्तम माना है। उसने इतिहास को दो प्रकार का—परिक्रिया और पुराकल्प—माना है। परिक्रिया नामक इतिहास में एक ही व्यक्ति को नायक मानकर उसके जीवन का चित्रण किया जाता है। जैसे— रामायण। पुराकल्प में एक वंश के अनेक नायकों का चित्रण होता है जैसे—महाभारत, रघुवंश आदि में है।

वस्तुतः भारतीय संस्कृति आध्यात्मिकता को अधिक महत्त्व देती है। उसमें संसार को क्षणिक मानने की दार्शनिक विचारधारा समस्त क्रियाकलापों को प्रभावित करती रही है। इसीलिए लौकिक व्यक्तियों के जीवन और उनकी घटनाओं की अपेक्षा उन्हें राम, कृष्ण, शिव आदि आदर्श महापुरुषों के जीवन ने अधिक अभिभूत किया है। उन्हीं के जीवन की घटनाओं को कथानक बनाकर अधिकतर महाकाव्य लिखे गए हैं। तो भी कुछ ऐसी रचनाएँ हैं, जिन्हें ऐतिहासिक कहा जा सकता है। इन रचनाओं को चार भागों में बाँटा जा सकता है

(क) कुछ विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में अपने पूर्ववर्ती इतिहास ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

जैसे—कल्हण ने राजतरंगिणी में अपने पहले के सुव्रत के इतिहासग्रन्थ, हेलाराज के

‘पार्थिवावलि’, भर्तृमेण्ड के ‘हयग्रीववध’, शंकुक के ‘भुवनाभ्युदय’ का उल्लेख किया है यद्यपि ये इतिहास ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हो पाये हैं।

(ख) रामायण, महाभारत और पुराणों में प्राप्त होने वाले ऐतिहासिक उल्लेखों के आधार पर अनेक प्राचीन वंशावलियों का क्रम और लगभग समय निर्धारित किया जा सकता है।

(ग) शिलालेखों, प्रशस्तियों, ताम्रपत्रों, दानपत्रों में दाता, प्राप्तकर्ता आदि के नाम, कुल, समय आदि का ज्ञान होता है।

(घ) अनेक कवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं के जीवन की घटनाओं को लेकर काव्य ग्रन्थ लिखे।

इनमें से (घ) भाग में आये काव्यग्रन्थों में ही अनेक महाकाव्य आते हैं। लघुकाव्य ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण कौमुदीमहोत्सव (400 ई०), महेन्द्र विक्रम लिखित मत्तविलास (610 ई०), बाणभट्ट का हर्षचरित (648 ई०), प्रवरसेन का सेतुबन्ध (सातवीं शताब्दी), वाक्पतिराज का गउडवहो (आठवीं शताब्दी), कनकसेन वादिराज द्वारा रचित ‘यशोधराचरित’ (आठवीं शताब्दी), शंकुक रचित भुवनाभ्युदय (नौवीं शताब्दी) ऐसे लघु काव्य ग्रन्थ हैं जिनसे उस समय की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है, किन्तु उनमें भी कालक्रम के निर्धारण का अभाव है जिससे पाश्चात्य ऐतिहासिक असन्तुष्ट रह जाते हैं।

नवसाहसांकचरित

महाकाव्य परम्परा में सबसे पहला ऐतिहासिक महत्त्व का काव्य पद्मगुप्त (परिमल) रचित नवसाहसांकचरित है। पद्मगुप्त वाक्पतिराज मुंज (राजा भोज के पिता सिन्धुराज के भाई) की राजसभा में सम्मानित कवि थे। मुंज की मृत्यु के पश्चात् सिन्धुराज ने पद्मगुप्त को अत्यधिक सम्मान दिया। पद्मगुप्त ने नवसाहसांक के नाम से सिन्धुराज के जीवन का ही वर्णन अपने काव्य में किया है। इसका समय 1005 ई० के लगभग माना गया है।

इस महाकाव्य के आठ सर्गों में 1500 श्लोक हैं। इससे उस समय के ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रामाणिक प्रकाश पड़ता है। इन्होंने कालिदास की शैली का अनुकरण करते हुए वैदर्भी

रीति में प्रसादगुणमय सरस और मधुर काव्य का सृजन किया है। इसी कारण इन्हें 'परिमल कालिदास' कहा जाने लगा था।

विक्रमांकदेवचरित

कश्मीर के रहने वाले कवि बिल्हण का यह महाकाव्य ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। इनके ही काव्य से ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम ज्येष्ठकलश और माता का नाम नागादेवी था। श्रीनगर से लगभग 24 कोस दूर स्थित खोनमुष नामक स्थान पर इनका जन्म हुआ था। 1065 ई० के लगभग अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए यह दक्षिण भारत के कल्याण नगर में पहुँच गए। वहाँ के चालुक्यवंशी राजा विक्रमादित्य षष्ठ (1076—1127 ई०) की राजसभा में सम्मानपूर्वक रहते हुए, 'विद्यापति' की उपाधि से विभूषित होकर उन्होंने अपने आश्रयदाता विक्रम के जीवन के कार्यों का तथा उनके वंश का वर्णन इस महाकाव्य में किया।

इनकी दो अन्य रचनाएँ कर्णसुन्दरी नाटिका और चौरपंचाशिका भी ऐतिहासिक सामग्री की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

ऐतिहासिक सामग्री को स्वाभाविक और प्रवाहपूर्ण भाषा में वैदर्भी रीति का आश्रय लेकर माधुर्य और प्रसाद गुणों से युक्त करके कवि ने अनुपम प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि बिल्हण ने कविधर्म और इतिहासकार के कर्तव्य दोनों का अत्यन्त सफलता से निर्वाह किया है जिससे 'विक्रमांकदेवचरित' दोनों दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ माना जा सकता है। 18 सर्गों के इस महाकाव्य में ऐतिहासिक तथ्यों की स्थापना के अतिरिक्त महाकाव्य में आवश्यक माने गए नायक—नायिका के प्रणय, विवाह, जलक्रीड़ा, मृगया आदि के अतिरिक्त वन, पर्वत, नदी, प्रातः, सायं, ऋतुचक्र आदि का भी यथास्थान सुन्दर वर्णन किया गया है।

इसके अतिरिक्त कवि ने अपनी भारत यात्रा का वर्णन इस महाकाव्य में करके अन्त में अपने जन्म स्थान कश्मीर की बहुत प्रशंसा की है। उनका कहना है कि केसर और कविता का

उद्गम तो कश्मीर ही है । कस्तूरी और केसर की सुगन्ध से सुवासित पशमीना और वितस्ता में तैरती हुई नौकाएँ स्वर्ग के सुख को भी पीछे छोड़ देती हैं।

राजतरंगिणी

ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण यह महाकाव्य कश्मीरी कवि कल्हण की अपूर्व रचना है। कल्हण के पिता का नाम चम्पक था। वह कश्मीर के राजा हर्ष के पक्षपाती थे। हर्ष की हत्या कर दिए जाने पर उन्होंने राजनीति से संन्यास ले लिया, इसीलिए कल्हण भी राजनीति में सक्रिय भाग नहीं ले सके। कल्हण के चाचा का नाम कनक था जो बड़े संगीतज्ञ थे। राजा हर्ष को संगीत की शिक्षा वे ही देते थे। शिष्यभाव से राजा उनकी बात मानते थे। इसीलिए परिहासपुर में बुद्ध की प्रतिमा कनक के कहने पर ही भंग नहीं की गई। कल्हण भी यद्यपि संस्कृत शास्त्रों के बड़े विद्वान् थे और कश्मीर की घाटी में प्रचलित शैवधर्म के उपासक थे, तो भी उदारतामय दृष्टिकोण के कारण बौद्ध धर्म की भी प्रशंसा करते थे और बौद्ध धर्माचार्यों का सम्मान भी करते थे।

रचना—राजतरंगिणी उनका ऐतिहासिक महाकाव्य है। इसमें आठ तरंग हैं। प्रारम्भिक तरंगों की रचना करने में उन्होंने पुराणों को आधार बनाया तथा अन्तिम अर्थात् आठवाँ तरंग अपने साक्षात् अनुभव के आधार पर लिखा इसी कारण वह अत्यन्त विस्तृत है। सारे काव्य का लगभग आधा कलेवर आठवें तरंग में ही है। इस काव्य की रचना कल्हण ने 1148 ई० में प्रारम्भ की थी। उन्हें इसे पूरा करने में लगभग तीन वर्ष लगे। इन तीन वर्षों में अपने काव्य को ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक बनाने के लिए सभी उपलब्ध सामग्री का अध्ययन किया। उन्होंने अनेक मन्दिरों, भवनों तथा स्मारकों में रखे हुए राजाओं के शासन पत्रों तथा दान पत्रों को भी देखा। अपने से पहले के अनेक ग्रन्थों से इतिहास सम्बन्धी सामग्री का चयन किया। शिलालेखों, मुद्राओं और प्रशस्तिपत्रों का भी उपयोग किया। इस प्रकार कल्हण ने 13वीं शताब्दी ई० पू० के गोनन्द नाम के राजा के वर्णन से प्रारम्भ करके 1150 ई० पू० तक की घटनाओं का वर्णन किया है। पहले तीन तरंगों में उसने पुराण आदि प्राचीन ग्रन्थों का उपयोग किया है। अतः वह व्यक्तियों और घटनाओं के समय तथा तिथि के विषय में निश्चित नहीं कर

सके। सबसे पहले जो तिथि उन्होंने दी है वह 813 ई० के लगभग की है। 10वीं, ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी के राजाओं, व्यक्तियों और घटनाओं के वर्णन में प्रामाणिकता, पूर्णता और ऐतिहासिक दृष्टि से वैज्ञानिकता भी है।

कल्हण स्वयं पक्षपात रहित तथा धर्म सहिष्णु थे, अतः उनके वर्णनों में भी निष्पक्षता है। उन्होंने तत्कालीन राजाओं के गुण-दोष दोनों का विवेचन किया है। राजाओं के अच्छे और बुरे सभी आचरणों का निर्भीकता से दिग्दर्शन कराया है। इस प्रकार इनके इतिहास पर तत्कालीन दर्शन, भाग्यवाद, कर्मसिद्धान्त, तन्त्र-मन्त्र आदि सभी का प्रभाव दिखाई देता है। इनको नैतिकता अतिप्रिय थी, अतः इन्होंने दुष्ट और बेईमान कर्मचारियों, अनुशासनहीन सैनिकों और लोभी पण्डों और पुरोहितों की कटु आलोचना की है। कश्मीर की रानी दिद्धा ने अपने स्वार्थसाधन और महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए क्या-क्या कार्य किए, उन सबका वर्णन विस्तार के साथ किया है। इनका उद्देश्य राजाओं और अधिकारियों के सामने नैतिक आदर्श प्रस्तुत करना था।

कल्हण की काव्यात्मकता

कल्हण ने अपने आपको मूलतः कवि माना है अतः इतिहास के प्रति एक वैज्ञानिक और अन्वेषणापूर्ण दृष्टि होते हुए भी जगह-जगह उनकी काव्य प्रतिभा उभरकर आ ही जाती है। उनकी भाषा सरल किन्तु प्रभावपूर्ण है। उन्होंने समस्त ग्रन्थ में प्रायः अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया है। अलंकार भी स्वाभाविक रूप से अनायास ही जो आ गए हैं, वे काव्य की शोभा को ही बढ़ाने वाले हैं। इस प्रकार कल्हण का यह ग्रन्थ काव्य और इतिहास दोनों दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह भारतीय मनीषा में इतिहास विषयक चेतना के अस्तित्व को स्थापित करता है।

2.4 अपनी प्रगति जाँचिए

1. भट्टि काव्य के नाम से प्रसिद्ध महाकाव्य का नाम बताइए।
2. रावणवधम् में कितने सर्ग और कितने काण्ड हैं?

3. कुमारदास रचित महाकाव्य का नाम क्या है?
4. जानकीहरण महाकाव्य में कितने सर्ग हैं?
5. माघ कवि भारत के किस राज्य के निवासी थे?
6. शिशुपालवध के नायक का नाम बताइए।
7. हरविजय महाकाव्य के रचयिता कौन हैं?
8. नैषधीयचरित महाकाव्य के नायक—नायिका का नाम बताइए।
9. विक्रमांकदेवचरित महाकाव्य के रचयिता का नाम बताइए।
10. राजतरंगिणी में कितने तरंग हैं?

2.5 सारांश

भट्टि द्वारा रचित रावणवधम् महाकाव्य व्याकरण एवं अलंकारशास्त्र के प्रयोगों में अद्वितीय स्थान रखता है। रावणवध के 22 सर्गों को व्याकरणिक प्रयोगों को दृष्टिगत रखते हुए चार काण्डों में (प्रकीर्णकाण्ड, अधिकारकाण्ड, प्रसन्नकाण्ड और तिङन्त काण्ड) विभाजित किया गया है। तदनन्तर माघ कवि ने भारवि को पीछे छोड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी। किरातार्जुनीय के 18 सर्गों की अपेक्षा शिशुपालवध में 20 सर्ग रखे। चित्रालंकारों का भी अत्यधिक प्रयोग किया। भारवि ने किरातार्जुनीय में एक अक्षर 'न' से पूरा श्लोक रचा था तो माघ ने भी एकाक्षर 'द' का प्रयोग करते हुए एक श्लोक बना डाला। इनकी तुलना कई अन्य बिन्दुओं पर भी हो सकती है तथा दोनों कवियों की काँटे की टक्कर कही जा सकती है। इसी क्रम में श्रीहर्ष का महाकाव्य नैषधीयचरितम् भी शामिल है। इन तीनों (भारवि, माघ, श्रीहर्ष) कवियों द्वारा रचित महाकाव्यों (किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम्) को बृहत्त्रयी कहा जाता है। रत्नाकर ने 50 सर्गों में निबद्ध हरविजय नामक विशालतम महाकाव्य लिखा है, जिसमें माघ के समान शास्त्रीय उत्कर्ष है। कुमारदास रचित जानकीहरण महाकाव्य का भी लौकिक साहित्य महाकाव्य परम्परा में विशेष सम्मान है। इस समयावधि में कुछ ऐतिहासिक महाकाव्यों ने इतिहास विषयक चेतना का परिचय दिया।

2.6. मुख्य शब्दावली

1. भट्टिकाव्य – कवि भट्टि द्वारा रचित महाकाव्य 'रावणवधम्' को ही भट्टिकाव्य कहा जाता है।
2. विचित्रमार्ग – काव्य रचना में अत्यधिक अलंकृत शैली का प्रयोग करके छोटे से कथानक को अत्यधिक विस्तार देने की प्रवृत्ति।
3. बृहत्त्रयी – किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् और नैषधीयचरितम्।
4. माघे सन्ति त्रयो गुणाः – उपमा, अर्थगौरव और पदलालित्य – ये तीनों गुण माघ के महाकाव्य शिशुपालवध में दर्शनीय हैं।
5. नैषधं विद्वदौषधम् – श्रीहर्ष द्वारा रचित महाकाव्य नैषधीयचरित विद्वानों के लिए औषध के समान कहा गया है।
6. इतिहास – इति ह आस = निश्चय ही ऐसा हुआ था।

2.7. अपनी प्रगति जाँचिए के उत्तर

1. रावणवधम्
2. 22 सर्ग और 4 काण्ड
3. जानकीहरण
4. बीस सर्ग
5. राजस्थान
6. श्रीकृष्ण
7. रत्नाकर
8. नल-दमयन्ती
9. बिल्हण
10. आठ तरंग

2.8. अभ्यास हेतु प्रश्न

1. बृहत्त्रयी महाकाव्यों के विषय में संक्षेप में बताइए।
2. माघ का जीवन परिचय एवं काव्यगत वैशिष्ट्य प्रतिपादित कीजिए।
3. जानकीहरण महाकाव्य और उसके कवि के विषय में एक टिप्पणी लिखिए।
4. हरविजय महाकाव्य के विषय में विस्तार से बताइए।
5. भट्टिकाव्य में व्याकरणिक प्रयोगों पर टिप्पणी लिखिए।
6. श्रीहर्षरचित नैषधीय चरित का काव्यगत वैशिष्ट्य तुलनात्मक दृष्टि से प्रतिपादित कीजिए।
7. संस्कृत के ऐतिहासिक महाकाव्यों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

2.9. आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. भट्टिकाव्यम् – भट्टिकवि, व्याख्याकार डॉ. गोपाल शास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
2. शिशुपालवधम् – माघ, व्याख्याकार डॉ. देवनारायण मिश्र, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ।
3. शिशुपालवधम् – माघ, व्याख्याकार हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
4. नैषधीय चरितम् – श्रीहर्ष, व्याख्याकार आचार्य शेषराज शर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास—वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास—डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी।

अध्याय—3

गद्य साहित्य (आर्यशूर से अम्बिकादत्त व्यास तक)

- 3.1 अध्याय के उद्देश्य
- 3.2 परिचय
- 3.3 आर्यशूर से अम्बिकादत्त व्यास तक का गद्य साहित्य
- 3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्न
- 3.5 सारांश
- 3.6 मुख्य शब्दावली
- 3.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर
- 3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 3.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

3.1 अध्याय के उद्देश्य

- संस्कृत गद्य काव्य से भली प्रकार परिचित हो सकेंगे।
- आर्यशूर रचित जातकमाला की अवधारणा प्रस्तुत कर पाएंगे।
- दण्डी रचित दशकुमारचरित एवं अवन्तिसुन्दरी कथा की जानकारी पा सकेंगे।
- दण्डी के काव्यगत वैशिष्ट्य तथा पदलालित्य का विश्लेषण कर सकेंगे।
- सुबन्धु रचित वासवदत्ता से परिचित हो सकेंगे।
- बाणभट्ट के वस्तुविन्यास तथा कथावस्तु का विश्लेषण कर सकेंगे।
- बाणभट्ट की अद्वितीय गद्य शैली की तुलना कर सकेंगे।
- अम्बिकादत्त व्यास तथा शिवराजविजय की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- अन्य गद्य रचनाकारों का संक्षिप्त परिचय पा सकेंगे।

3.2 परिचय

गद्य वह बोलचाल की भाषा होती है, जिसमें छन्दों के बन्धन और लय की सीमाएँ नहीं होती। यह मानव अभिव्यक्ति की मौलिक प्रक्रिया कही जा सकती है। कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों के साथ व्याख्या अथवा ब्राह्मण भाग भी शामिल है। यह ब्राह्मण भाग गद्यमय है। इसके पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों में, आरण्यकों तथा उपनिषदों में गद्य में रोचकता दिखाई दी। गद्य का दूसरा सशक्त रूप सूत्र साहित्य में मिलता है। इसमें अभिव्यक्ति की समग्रता के साथ अत्यन्त संक्षेप में कहने की शैली को अपनाया गया है। कल्पसूत्र, अष्टाध्यायी, मोक्षसूत्र, न्यायसूत्र, ब्रह्मसूत्र और मीमांसासूत्र विशेष उल्लेखनीय हैं।

गद्यमय ग्रन्थ रचना में आर्यशूर रचित जातकमाला का विशेष स्थान है। इस ग्रन्थ में कुछ पद्य का भी मिश्रण है। जातकमाला में 34 उपजातक कथाएँ निबद्ध हैं। ये कथाएँ महात्मा बुद्ध के पूर्व जन्मों से सम्बद्ध हैं। जातकमाला की जातक कथाओं में प्रधानपात्र बोधिसत्त्व ही है। वे पशु-पक्षियों, देव-योनि तथा मृग या हंस आदि के रूप में जन्म लेते हैं। इसकी शिक्षाप्रद कथाओं का उद्देश्य लोकहित और मानवों में सद्गुणों का प्रचार-प्रसार करना है।

संस्कृत गद्यकाव्य में सरल, प्रांजल एवं भावपूर्ण गद्य लेखक दण्डी भी अमर कवि हैं। दण्डी का दशकुमारचरित ग्रन्थ की कथावस्तु घटनाप्रधान है तथा कल्पना प्रसूत है। इसमें दस कुमारों की कथाओं का चित्र-विचित्र वर्णन है। दण्डी का पदलालित्य अत्यन्त श्रेष्ठ बताया गया है। वासवदत्ता नामक एकमात्र गद्यरचना से ही सुबन्धु का नाम श्रेष्ठ गद्यकारों में सम्मिलित किया जाता है। सुबन्धु की रचना का कलापक्ष उदार और हृदयावर्जक है।

काव्य तथा नाटक के क्षेत्रों में जो कीर्ति कालिदास को प्राप्त है, वही गद्य रचना में बाणभट्ट को उपलब्ध है। इनकी प्रथम रचना हर्षचरित एक ऐतिहासिक रचना है, जिसमें सम्राट हर्षवर्धन का वर्णन है। बाणभट्ट की अद्वितीय गद्य रचना कादम्बरी कला कौशल का उच्चतम और अतिसुन्दर प्रतीक है। इसकी काल्पनिक कथा तीन जन्मों पर आधारित है। बाणभट्ट की गद्यशैली सभी गद्यकारों के लिए आदर्श प्रस्तुत करती है। बाण ने गद्यकाव्य को इस ऊँचाई पर पहुँचाया कि वह परवर्ती कवियों के लिए अनुकरणीय हो गया।

मध्यकालीन गद्यकारों में धनपाल, प्रभाचन्द्र, मेरुतुङ्गाचार्य, राजशेखर सूरी और वामनभट्ट के नाम उल्लेखनीय हैं। इन गद्यकारों ने भी गद्यमय रचनाएं एवं टीकाएं लिखी। आधुनिक गद्यकारों में अम्बिकादत्त व्यास अग्रगण्य हैं। इनमें प्राचीनता और नवीनता दोनों का समन्वय है। इसके मुख्य पात्र छत्रपति शिवाजी और मुगल सम्राट औरंगजेब हैं। दण्डी और बाणभट्ट के समान कथा का प्रवाह और कल्पना की विशदता पाठकों को आकृष्ट किये रहती है।

3.3 गद्य साहित्य (आर्यशूर से अम्बिकादत्त व्यास)

यह बोलचाल की भाषा जिसमें छन्दों के बन्धन और लय की सीमाएँ नहीं होती, गद्य कहलाती है। 'गद्य' शब्द गद् धातु (व्यक्तायां वाचि) से यत् प्रत्यय लगकर बना है, जिसका अर्थ है मानव की अभिव्यक्ति की मौलिक प्रक्रिया। जब से मनुष्य ने भाषा के माध्यम से अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त किया, तभी से गद्य काव्य का प्रारम्भ माना जाता है।

गद्य काव्य का प्रारम्भ — भारतीय साहित्य में सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ ऋग्वेद है। यद्यपि यह पद्यमय है, तो भी बोलचाल की भाषा का गद्यमय रूप इसके छोटे छोटे वाक्यों में मिल जाता है। कृष्ण यजुर्वेद में मन्त्रों के साथ व्याख्या अथवा ब्राह्मण भाग भी सम्मिलित है। यह ब्राह्मण भाग गद्यमय है। अतः गद्य का प्रथम रूप हमें यजुर्वेद की संहिताओं में मिलता है। यजुर्वेद की परिभाषा दी गई थी —

अनियताक्षरावसानं यजुः।

गद्यात्मकं यजुः।

अर्थात् वाक्य में आने वाले शब्दों की सीमा न हो तो वे वैदिक मन्त्र यजुष् कहे जाते थे।

इसके पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों में विशेषतः शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थों में अच्छे गद्य का प्रयोग होने लगा था। उनके कुछ आख्यान तो अति प्रसिद्ध हैं। यह गद्य सरल और बोलचाल की भाषा वाला ही था। उपनिषदों में गद्य में अधिक रोचकता दिखाई देती है। कठोपनिषद् में नचिकेता का उपाख्यान रोचक और विचार युक्त भी है।

गद्य का दूसरा सशक्त रूप सूत्र साहित्य में मिलता है। इसमें अभिव्यक्ति की समग्रता के साथ अत्यन्त संक्षेप में कहने की शैली को अपनाया गया है। कल्पसूत्र, अष्टाध्यायी, योगसूत्र, न्यायसूत्र, ब्रह्मसूत्र, मीमांसा सूत्र गद्य के एक विशेष रूप में प्रतिनिधि हैं। इनके अनन्तर इन सूत्र ग्रन्थों पर भाष्य के रूप में प्रांजल युक्तियुक्त विचार प्रधान गद्य का प्रारम्भ हुआ। पतंजलि के महाभाष्य में अनेक स्थल गद्यकाव्य की शोभा से युक्त हैं। इसी प्रकार महाभारत के आरण्यक पर्व में 'मण्डूकोपाख्यान' आदि के रूप में काव्यमय गद्य के दर्शन होते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे गद्य में भी पद्यकाव्य के उपादानों को अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ती गई।

अलंकृत गद्य का रूप रुद्रदामन के गिरनार के शिलालेख में भी प्राप्त होता है। इसका समय 150 ई. पूर्व के लगभग माना गया है।

इस समय के नाटकों में संवादों के रूप में तथा लोककथाओं में सरल, रोचक और अभिव्यंजनापूर्ण गद्य का प्रारम्भ हो गया। 360 ई. का समुद्रगुप्त की प्रशस्ति से युक्त हरिषेण रचित कविता से सुशोभित शिलालेख अलंकार युक्त मधुर गद्य का प्रतीक है। संभवतः लेखन के विकास के सीमित होने से गद्य रचना को याद रखना कठिन होता था। गद्यकाव्य का मानदण्ड अत्यन्त ऊँचा रखा गया था। अतः आलोचकों की टिप्पणी के भय से भी गद्यकाव्य लिखना कम ही पसन्द किया जाता था। छठी-सातवीं शताब्दी में कुछ महत्त्वपूर्ण कवियों की गद्य रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

गद्यकाव्य के भेद

संस्कृत गद्यकाव्य के दो मुख्य भेद माने गए हैं — कथा और आख्यायिका। इन भेदों का निरूपण अग्निपुराण, काव्यादर्श, रुद्रटकृत काव्यालंकार और साहित्य दर्पण इत्यादि ग्रन्थों में हुआ है। अमरकोश में भी 'आख्यायिकोपलब्धार्था' और प्रबन्धकल्पना कथा कहकर इनका भेद बताया गया है। तदनुसार ऐतिहासिक विषय पर आख्यायिका एवं पूर्णतः काल्पनिक विषय पर कथा आश्रित होती है।

दण्डी ने काव्यादर्श में दोनों का अन्तर बतलाकर इन भेदों के प्रति अरुचि दिखाई है कि लम्भादि में कथा का और उच्छ्वासों में आख्यायिका का विभाजन हो ही गया तो क्या अन्तर पड़ा, वस्तुतः एक ही जाति की दो संज्ञाएँ दी गई हैं —

भेदश्च दृष्टो लम्भादिरुच्छ्वासो वाऽस्तु किं ततः ।

तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाकिता ।। (काव्यादर्श 1.28)

साहित्यदर्पण में स्पष्ट रूप से इन दोनों में भेद इस प्रकार बताया गया है कि कथा में गद्य द्वारा सरस कथानक का निर्माण होता है, इसमें कहीं आर्या और कहीं वक्त्र या अपवक्त्र छन्द का प्रयोग होता है। इसके आरम्भ के पद्यों में नमस्कार और खल आदि का वर्णन रहता है। दूसरी ओर आख्यायिका भी कथा के समान होती है जिसमें कवि के वंश का भी वर्णन रहता है। इसमें अन्य कवियों का भी कहीं-कहीं पद्यात्मक वर्णन होता है। कथा भाग के खण्डों को उच्छ्वास कहते हैं। प्रत्येक उच्छ्वास (आश्वास) के आरम्भ में आर्या आदि उपर्युक्त छन्दों के द्वारा किसी बहाने से भावी घटना की सूचना भी रहती है।

बाणभट्ट की गद्य रचनाओं में 'हर्षचरित' आख्यायिका तथा 'कादम्बरी' कथा के रूप में प्रसिद्ध हुई, स्वयं बाण ने इन्हें इस रूप में निर्दिष्ट किया। अतः बाण के अनन्तर सभी काव्यशास्त्रियों ने इन लक्ष्य ग्रन्थों को ध्यान में रखकर ही गद्य काव्य भेदों के लक्षण दिए। संक्षेप में यदि कहा जाए तो कथा में कथावस्तु कविकल्पित होती है और आख्यायिका में ऐतिहासिक होती है। यहाँ कुछ मुख्य-मुख्य गद्य लेखकों और उनकी रचनाओं का परिचय दिया जा रहा है —

1. आर्यशूर

आर्यशूर संस्कृत के प्रख्यात बौद्ध कवि एवं गद्यकार थे। कई इतिहासकार इन्हें अश्वघोष से अभिन्न मानते हैं, परन्तु दोनों ही रचनाओं की भिन्नता व शैली के कारण आर्यशूर को अश्वघोष से भिन्न तथा पश्चाद्वर्ती मानना ही युक्तिसंगत है। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'जातकमाला' की प्रख्याति भारत की अपेक्षा भारत के बाहर बौद्धजगत् में कम न थी। इसका चीनी भाषा में अनुवाद 10वीं शताब्दी में किया गया था। इत्सिंग ने आर्यशूर की कविता की ख्याति का वर्णन

अपने यात्रा विवरण में किया है। अजन्ता की दीवारों पर जातकमाला के शांतिवादी, शिवि, मैत्रीबल आदि जातकों के दृश्यों का अंकन और परिचयात्मक पद्यों का उत्खनन छठी शताब्दी में इसकी प्रसिद्धि का पर्याप्त परिचायक है। अश्वघोष द्वारा प्रभावित होने के कारण आर्यशूर का समय द्वितीय शताब्दी के अनंतर तथा पाँचवीं शताब्दी से पूर्व मानना न्यायसंगत होगा।

इनका मुख्य ग्रन्थ जातकमाला गद्य-पद्यमय है। इसमें संस्कृत के गद्य-पद्य का मनोरम मिश्रण है। उपजातकों का सुन्दर काव्यशैली में तथा भव्य भाषा में वर्णन हुआ है। इसकी दो टीकाएँ संस्कृत में अनुपलब्ध होने पर भी तिब्बती अनुवाद में सुरक्षित हैं। अश्वघोषीय काव्यकृतियों के समान ही इसका उद्देश्य रूखे मन वाले पाठकों को प्रसन्न कर बौद्ध धर्म के उपदेशों का विपुल प्रचार और प्रसार है। कवि ने अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए बोलचाल की व्यवहारिक संस्कृत का प्रयोग किया है और उसे अलंकार के आडम्बर से प्रयत्नपूर्वक बचाया है। पद्यभाग के समान गद्यभाग भी संश्लिष्ट तथा सुन्दर है।

जातकमाला

आर्यशूर विरचित जातकमाला में गद्य-पद्य मिश्रित 34 उपजातक कथाएँ निबद्ध हैं। ये कथाएँ बुद्ध के पूर्व जन्मों से संबद्ध हैं। बुद्ध होने से पूर्व की अवस्था ही तो बोधिसत्त्व की अवस्था है। इस अवस्था में सिद्धार्थ गौतम ने 547 जन्मों तक पारमिताओं का अभ्यास किया, तभी वे बुद्ध हुए।

जातकमाला का दूसरा नाम — बोधिसत्त्वावदानमाला। अवदान का अर्थ है सुकर्म। इस प्रकार बोधिसत्त्वावदानमाला का अर्थ होगा — बोधिसत्त्व के अवदानों की अर्थात् सुकर्मा की माला। पालि जातकों की संख्या 547 मानी जाती है। ये कथाएँ बौद्ध कथाओं का कोश हैं। इन्हीं कथाओं में से कुछ उपदेशमयी कथाओं का संग्रह कर आर्यशूर ने संस्कृत भाषा में अनूदित कर इन्हें जातकमाला में समाविष्ट किया है। इसके अतिरिक्त अन्य कथाओं का भी संग्रह कर जातकमाला की रचना की है, किन्तु संस्कृत भाषान्तर होकर भी यह रचना सर्वथा मौलिक एवं स्वतन्त्र है।

जातकमाला की सभी जातक कथाओं में प्रधान पात्र बोधिसत्त्व ही हैं। वे पशु-पक्षियों, देव योनि तथा मृग या हंस आदि के रूप में जन्म लेते हैं। यह ग्रन्थ बोधिसत्त्व के आदर्श चरित्र तथा सत्कर्मों का प्रतिपादक ग्रन्थ है। इसकी शिक्षाप्रद कथाओं का उद्देश्य लोकहित और मानव में सद्गुणों का प्रचार-प्रसार करता है। कवि आर्यशूर बौद्ध धर्म को सद्धर्म मानते हैं। उनकी इस रचना का उद्देश्य बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों एवं मन्तव्यों का काव्यगद्य शैली में प्रचार-प्रसार करना है।

महाकपि जातक में बोधिसत्त्व का कृतघ्न मनुष्य के प्रति कथन है कि तुम पाप कर्म छोड़ने का यत्न करो, क्योंकि पापकर्म का परिणाम अवश्यमेव दुःखमयी होता है —

पापं च कर्म परिवर्जयितुं यतेथा

दुःखो हि तस्य नियमेन विपाककालः।

बोधिसत्त्व की प्राणभूत विशेषता परोपकार एवं महाकरुणा है। दूसरे के हित करने की चित्त की निरन्तर क्रियाशीलता ही करुणा एवं परोपकारिता है। किसी भी प्राणी के दुःख या कष्ट से वे स्वयं द्रवीभूत हो जाते हैं।

2. दण्डी

संस्कृत गद्यकाव्य के इतिहास में सरल, प्रांजल एवं भावपूर्ण गद्य के लेखक के रूप में दण्डी का नाम अमर है। दण्डी के विषय में अनेक प्रशस्तियाँ सुभाषितों के संग्रह-ग्रन्थों में उपलब्ध हैं। एक प्रशस्ति में वाल्मीकि और व्यास के बाद तीसरा स्थान दण्डी को ही दिया गया है —

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाभवत्।

कनी इती ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि॥

अर्थात् वाल्मीकि के आने पर 'कवि' शब्द बना, व्यास के आने पर द्विवचन में 'कवी' रूप हुआ और दण्डी का आविर्भाव होने पर ही बहुवचन रूप 'कवयः' हो सका।

ऐसे महान् कवि के काल, व्यक्तित्व तथा रचनाओं के विषय में विद्वानों में ऐकमत्य नहीं है।

दण्डी के काल के विषय में विद्वानों का एक दल छठी शताब्दी ई. का मत प्रस्तुत करता है तो दूसरा दल उन्हें 700 ई. के आसपास रखता है। दोनों दल अन्तरंग और बहिरंग प्रमाणों को इस विषय में सामने रखते हैं। अन्तरंग प्रमाणों के अन्तर्गत उनकी तीन रचनाओं (काव्यादर्श, अवन्तिसुन्दरी कथा, दशकुमारचरित) की सहायता ली जाती है। बहिरंग प्रमाणों में दण्डी के विषय में अन्य कवियों की चर्चाएँ मुख्य आधार हैं। दण्डी का समय यद्यपि अभी तक अन्तिम रूप से निश्चित नहीं हो पाया है, तथापि 600 ई. के आसपास का समय अधिकतर विद्वानों को मान्य है।

दण्डी की रचनाएँ

दण्डी के नाम से अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं, फिर भी इनकी तीन रचनाएँ सर्वमान्य हैं — काव्यादर्श, दशकुमारचरित और अवन्तिसुन्दरी कथा। काव्यादर्श तीन परिच्छेदों का काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है। यह पद्यात्मक ग्रन्थ है, अतः इसका यहाँ विवेचन औचित्यपूर्ण नहीं रहेगा।

दशकुमारचरितम्

दशकुमारचरित की कथावस्तु घटना प्रधान है। यह कवि की अपनी कल्पना से प्रसूत है। किसी प्राचीन ग्रन्थ अथवा लोककथाओं में इसकी कथा का आधार नहीं मिलता।

वर्तमान समय में उपलब्ध दशकुमार चरित के तीन भाग हैं। प्रथम भाग को पूर्वपीठिका कहा जाता है। इसमें पाँच उच्छ्वास हैं। मध्य भाग में आठ उच्छ्वास हैं। इसी को असली दशकुमार चरित माना जाता है। तृतीय भाग उत्तर पीठिका है। इसका उच्छ्वासों में विभाजन नहीं है। मध्य भाग में केवल आठ कुमारों की कथा है। उसमें से भी आठवें उच्छ्वास में विश्रुत की कथा अधूरी छूट गई है। दो कुमारों की कथा पूर्वपीठिका में है और विश्रुत कथा को उत्तर पीठिका में पूरा किया गया है।

दशकुमारचरित की संक्षिप्त कथा

मगध राज्य की राजधानी पुष्पपुरी (पटना) में राजहंस नाम का दयालु और प्रतापी राजा राज्य करता था। उसकी रानी अनुपम सुन्दरी वसुमती थी। उसके धर्मपाल, पद्मोद्भव और

सितवर्मा नाम के तीन मंत्री थे। उनमें से धर्मपाल के सुमन्त्र, सुमित्र और कामपाल तीन पुत्र थे। पद्मोद्भव के सुश्रुत तथा रत्नोद्भव दो पुत्र थे। सितवर्मा के भी सुमति और सत्यवर्मा दो पुत्र थे। इनमें से कामपाल आवारा हो गया। रत्नोद्भव विदेशों से व्यापार में लग गया और सत्यवर्मा संसार से निराश होकर तीर्थयात्रा पर निकल गया। शेष चारों अपने पिताओं के उत्तराधिकारी के रूप में राजा के मंत्री बने।

एक बार राजा राजहंस का मालव नरेश मानसार से युद्ध हो गया। पहले तो राजहंस विजयी हुआ, किन्तु बाद में पराजित होकर विन्ध्य वन में भाग गया। वहाँ उसका सम्पर्क वामदेव नामक एक संन्यासी से हुआ। उसने राजा को वन में रहकर कुछ वर्ष प्रतीक्षा करने को कहा। राजा अपने चारों मन्त्रियों के साथ वहाँ रहने लगा। वहाँ ही उसकी रानी ने राजवाहन नामक पुत्र को जन्म दिया। इसी समय मन्त्रियों के भी चार पुत्र हुए — सुमति का प्रमति, सुमन्त्र का मन्त्रगुप्त, सुमित्र का मित्रगुप्त, और सुश्रुत का विश्रुत। इसी बीच राजा को पाँच कुमार और प्राप्त हुए — मिथिला के राजा प्रहार वर्मा के पुत्र उपहार वर्मा और अपहार वर्मा, रत्नोद्भव का पुत्र पुष्पोद्भव, कामपाल का पुत्र अर्थपाल और सत्यवर्मा का पुत्र सोमदत्त। ये दस कुमार एकत्र हो गए। पढ़ लिखकर ये सभी कलाओं और विज्ञानों में पारंगत हो गए।

जब ये राजकुमार बड़े हो गए तो वामदेव के कहने पर राजा ने उन्हें दिग्विजय के लिए भेज दिया। कुछ दूर तक वे साथ-साथ गए। आगे चलकर राजवाहन एक ब्राह्मण के कहने पर उसकी सहायता के लिए पाताल लोक चला गया। वहाँ से लौटने पर उसे कोई भी कुमार नहीं मिला। वस्तुतः वे राजवाहन के एकदम गायब हो जाने से उसे ढूँढने के लिए विभिन्न दिशाओं में चले गए थे। अन्त में सभी राजकुमार एक स्थान पर मिल गए। प्रत्येक ने अपने-अपने अनुभव सुनाए। यही दशकुमारचरित की असली कथा है। पुष्पोद्भव और सोमदत्त की कथा पूर्वपीठिका में ही आ जाती है। राजवाहन और उसकी प्रेयसी अवन्तिसुन्दरी की कथा भी इसी में है। ये कथाएँ दशकुमार चरित के मूल कलेवर में नहीं हैं।

मूल दशकुमारचरित के मूल कलेवर में राजवाहन की कथा और उसके साथियों के मिलने तथा उनसे अपने अनुभव सुनाने का अनुरोध है। द्वितीय उच्छ्वास से आठवें उच्छ्वास तक शेष सात कुमारों की अनुभव कथाएँ हैं। उपहार वर्मा का चरित सबसे दीर्घ, सबसे जटिल और मनोरंजक है। इसमें अनेक विचित्र घटनाएँ और रोचक पात्रों से परिचय होता है। अर्थपाल

काशीराज द्वारा पदच्युत पिता को पुनः मन्त्री बना देता है और राजकुमारी मणिकर्णिका के प्रेम को पा लेता है। प्रमति श्रावस्ती की राजकुमारी नवमालिका को स्वप्न में देखकर स्त्री का रूप धारण करके अन्तःपुर में जाकर राजकुमारी से मिलता है। मित्रगुप्त सुहृददेश की राजकुमारी को प्राप्त करता है। एक ब्रह्मराक्षस उससे चार प्रश्न पूछता है जिससे धूमिनी, गोमिनी, निम्बवती और नितम्बवती की कथाओं का संबंध है। मन्त्रगुप्त और कनकलेखा के प्रेम की कथा का वर्णन है। विश्रुत कथा में आता है कि उसने अपने आश्रयदाता विदर्भ के राजकुमार के खोये हुए राज्य को पुनः प्राप्त करा दिया।

रस की दृष्टि से यदि दशकुमारचरित को देखा जाए तो अद्भुत, चमत्कारपूर्ण, कौतुकमयी और विस्मयजनक घटनाओं की अधिकता के कारण उसमें अद्भुत रस माना जा सकता है। यद्यपि सभी कुमारों के जीवन में नारी प्रेम और उनको प्राप्त करने के अद्भुत साहसिक प्रयत्नों का प्राधान्य है। प्रेम प्रसंग तो उन साहसिक घटनाओं के पीछे छिप जाते हैं। शृंगार के शुद्ध वातावरण की अपेक्षा उसमें कामशास्त्र और रतिलीलाओं का प्रकाशन अधिक प्रतीत होता है। हास्य का पुट सर्वत्र घटनाओं को मनोरंजकता प्रदान करता रहता है।

अवन्तिसुन्दरी कथा

दशकुमार चरित की पूर्वपीठिका में मालव नरेश की पुत्री अवन्तिसुन्दरी का प्रणय-वृत्त संक्षेप में वर्णित है। उसी का सविस्तार निरूपण इस अवन्तिसुन्दरी कथा में किया गया है। यह ग्रन्थ अपूर्ण ही प्राप्त है। विद्वानों के अनुसार हस्तलेख की अपूर्णता के कारण यह अपूर्ण है। कुछ लोगों का विचार है कि यह दण्डी के नाम से किसी अन्य कवि के द्वारा की गई रचना है। दूसरी ओर कुछ विद्वान् मानते हैं कि अवन्तिसुन्दरी कथा ही दण्डी की मुख्य रचना है, इसी का सार दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका के रूप में किसी ने प्रस्तुत किया होगा।

प्राचीन साहित्य में दशकुमारचरित की अपेक्षा इसी गद्यकाव्य को दण्डी की रचना के रूप में अधिक ख्याति मिली थी। अप्पयदीक्षित ने कहा है —

इत्यवन्तिसुन्दरीये मं दण्डिप्रयोगाः।

इसका कथानक कविकल्पित है, जैसा कथाप्रबंध के लिए आवश्यक है। राजकुमारों और अवन्तिसुन्दरी नायिका की कथा के व्याज से इसमें तत्कालीन समाज का याथातथ्य चित्रण उपलब्ध होता है। गद्यशैली की दृष्टि से यह कथाप्रबंध एक महत्वपूर्ण कृति है और संस्कृत गद्यकाव्य की शैली के विकास क्रम में एक निश्चित सोपान के रूप में माना जाता है।

दण्डी का काव्यगत वैशिष्ट्य

संस्कृत साहित्य में प्रचलित है —

“दण्डिनः पदलालित्यम्”

अर्थात् दण्डी के पदों का सौन्दर्य अति उत्तम है। दण्डी ने गद्य रचना के लिए वैदर्भी रीति को ही अपनाया है। वह लम्बे-लम्बे समासों और वाक्यों के प्रलोभन में नहीं पड़ा है। उसने शब्दाडम्बर और अलंकारों के आडम्बर से अपनी भाषा को दूर रखते हुए सरल, प्रभावपूर्ण, परिष्कृत, मुहावरेदार किन्तु सुन्दर और सरस भाषा का प्रयोग किया है। इससे उसका गद्य अत्यन्त व्यवहारिक होते हुए भी प्राञ्जल है। उसमें सुबोधता है। बाण और सुबन्धु के समान समास और अलंकार की बाधाएँ अर्थग्रहण में बाधा नहीं डालती। भावों और विचारों की समुचित अभिव्यक्ति के लिए वह उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग करता है। लौकिक सत्यों को उसने बड़ी ओजपूर्ण भाषा में प्रकट किया है। इसी प्रकार शब्दचित्र प्रस्तुत करने में समास रहित छोटे-छोटे वाक्यों को अपनाया है। छोटे उच्छ्वास में धूमिनी, गोमिनी आदि का वृत्तान्त बड़ी सरल और प्रवाहयुक्त शैली में है। इसीलिए दण्डी का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। यद्यपि उसने भी कहीं-कहीं समासयुक्त पदावली का प्रयोग किया है, परन्तु वह शाब्दी और आर्थी क्रीड़ा के जाल में नहीं फँसा है। स्वाभाविकता और अर्थ की स्पष्टता की ओर उसका विशेष ध्यान रहता है।

दण्डी के प्रकृति चित्रण में यद्यपि बाणभट्ट जैसी कल्पना प्रचूरता और किसी दृश्य के सभी भागों को देखने वाली सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति तो नहीं है, तो भी उनमें रमणीयता है। उपहार वर्मा के द्वारा किया हुआ सूर्योदय वर्णन बहुत सुन्दर और अपूर्व है। इसके अतिरिक्त सूर्यास्त, निर्जनमहावटी, प्रासाद, राजमार्ग, श्मशान और नगर आदि के वर्णन दण्डी के

वर्णनचातुर्य को प्रकट करते हैं। विश्रुतचरित में राजनीति का उपदेश अत्यन्त सरल और स्वाभाविक शैली में होने के कारण उत्तम है। यद्यपि उसमें कादम्बरी के शकुनासोपदेश जैसी विशालता और भव्यता नहीं है। कापालिक सिद्ध का भयानक वर्णन अपनी तरह का प्रभाव उत्पन्न करता है। षष्ठ उच्छ्वास में अकाल का करुणाजनक किन्तु भयावह वर्णन दण्डी की निरीक्षण और पर्यवेक्षण शक्ति का उदाहरण है।

दण्डी अपना शास्त्रीय ज्ञान भी इसमें प्रकट करते हैं। अष्टम उच्छ्वास में राजशास्त्रीय ज्ञान व्यापक रूप से प्रकाशित है। अपने समय के राजाओं की चातुप्रियता और अकर्मण्यता का चित्रण भी इस प्रसंग में इन्होंने पुष्कल रूप से किया है। कुमारों की शिक्षा के प्रसंग में इन्होंने धर्मशास्त्र, शब्दशास्त्र, ज्योतिष, तर्क, मीमांसा आदि शास्त्रों के अतिरिक्त काव्य, नाटक, आख्यानक, आख्यायिका, इतिहास, चित्रकथा, पुराण, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, कामन्दकीय नीति आदि विषयों का उल्लेख किया है। इस व्यापक ज्ञान को सरल शैली का परिधान प्रदान करना उनकी सहृदयता और रस प्रवणता है।

दण्डी की वर्णन क्षमता में भी लालित्य का प्रवाह प्राप्त होता है। त्रिगर्त जनपद में पड़े दुर्भिक्ष का मार्मिक एवं हृदयग्राही वर्णन करते हुए वे कहते हैं —

क्षीणसारं सस्यम्, ओषधयो वन्ध्याः, न फलवन्तो वनस्पतयः, क्लीबा मेघाः, क्षीणस्रोतसः
स्रवन्त्यः, पंकशेषाणि पल्वलानि, विरलीभूतम् कन्दमूलफलम्, अवहीनाः कथाः गलिताः
कल्याणोत्सवक्रियाः बहुलीभूतानि तस्करकुलानि, अन्योन्यमभक्षयन्प्रजाः (दशकुमार उच्छ्वास 6)

दण्डी के वर्णनों में प्रसादगुण, वैदर्भी रीति, सुकुमार मार्ग, सूक्ष्मेक्षिका, संयम, शालीनता और प्रवाहपूर्ण भाषा का समन्वित रूप मिलता है। उनकी गद्यशैली में कहीं भी कृत्रिमता या अलंकारों का असहज भार नहीं है। अर्थालंकारों में वे प्रमुख रूप से उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा तक ही सीमित रहते हैं।

दशकुमार चरित (मध्यभाग) के चतुर्थ उच्छ्वास में काशी की राजकुमारी मणिकर्णिका के वर्णन में अर्थपाल ने उत्प्रेक्षाओं की वर्षा बाणभट्ट के समान की है — 'मुझे देखकर वह उसी तरह काँप गई जैसे मलयपवन से चन्दनलता' 'वह मूर्तिमती पृथ्वीदेवी जैसी लग रही थी, असुरों को जीतने के लिए अवतार लेने वाली मानो दुर्गा हो', 'अनेक दुष्ट राजाओं के दर्शन से

बचने के लिए पाताल में प्रविष्ट मानो राजलक्ष्मी हो'। वास्तव में अर्थालंकारों पर भी उनकी कुछ मौलिक उद्भावनाएँ आकर्षक हैं।

पदलालित्य के निवेश से दण्डी ने साधारण विषयों को भी चमत्कारी बना दिया है। आकर्षक और हृदयावर्जक वस्तु को 'ललित' कहते हैं। जिस पदरचना में पाठक आकृष्ट हों और साधुवाद करने लगें, वह लालित्यपूर्ण होती है। अनुप्रास से रहित लालित्य में कालिदास की कीर्ति अनुपम है, जिसे बिल्हण ने छूने का प्रयास किया है। सानुप्रास लालित्य की दृष्टि में श्रीहर्ष, जयेदव और पण्डितराज जगन्नाथ प्रसिद्ध हैं। दण्डी का पदलालित्य दोनों कोटियों में निविष्ट है। श्रुतिकटु पदों का परिहार करके सरल सुगम शब्दों का विन्यास करने पर अनुप्रास अनिवार्य नहीं होता। बहुधा दण्डी ने ऐसे वाक्य ही प्रयुक्त किए हैं। संस्कृत वाग्धारा की यह भाषा प्रशंसास्पद है। जहाँ दण्डी समासों का प्रयोग करते हैं, वहाँ समासों में पदों की सजावट पर ध्यान देकर पदावली को पाठ्य ही नहीं, गेय भी बना देते हैं। लम्बे वाक्य या समस्त पदावली के स्थलों की पृष्ठभूमि में कवि की उभरने वाली आवेगात्मक भावना अपूर्व है।

3. सुबन्धु

संस्कृत में गद्यकाव्य लिखने वालों में दण्डी के पश्चात् सुबन्धु का नाम आता है। बाणभट्ट ने हर्षचरित की प्रस्तावना में वासवदत्ता को कवियों का दर्प भंग करने वाली रचना बताया है —

‘कवीनामगलद् दर्पो नूनं वासवदत्तया’ (हर्षचरित 1.11)

इससे विद्वानों ने यही निष्कर्ष निकाला है कि सुबन्धु बाण से कुछ पहले ही हुए होंगे। बाणभट्ट का समय तो हर्षवर्धन के साथ सातवीं शताब्दी का मध्य निश्चित होता है। अतः सुबन्धु का समय सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में 610-20 ई. के लगभग रखा जा सकता है।

वासवदत्ता

सुबन्धु की केवल एक ही रचना वासवदत्ता उपलब्ध होती है। गद्यकाव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट इसी रचना के आधार पर सुबन्धु की गणना तीन प्रसिद्ध गद्यकाव्यकारों — दण्डी,

सुबन्धु और बाणभट्ट में होती है। सुबन्धु ने छोटे से कथानक को लेकर अपनी वर्णन कुशलता से एक उत्तम गद्यकाव्य का रूप दिया है।

संक्षिप्त कथा

राजकुमार कन्दर्पकेतु ने स्वप्न में अपनी प्रियतमा को देखा और वह उसको प्राप्त करने के लिए अधीर हो उठा। वह अपने मित्र के साथ अपनी प्रिया की खोज में निकल पड़ा। घूमते-घूमते वे दोनों विन्ध्याटवी में जा पहुँचे। रात में वे दोनों एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे तो एक मैना उसी राजकुमारी का हाल अपने साथी को सुना रही थी कि वासवदत्ता किस प्रकार एक राजकुमार के प्रति आसक्त हो गई है। मैना के अनुसार वे दोनों राजकुमारी के घर की ओर चले। उधर से राजकुमारी भी चल पड़ी। दोनों का मिलन पाटलिपुत्र में हुआ। दोनों ने एक दूसरे को साक्षात् देखा। प्रेम में विभोर हो दोनों जादू के घोड़े पर सवार होकर विन्ध्याचल पर पहुँच गए। थकान के कारण दोनों को नींद आ गई। राजकुमार की जब नींद खुली तो वासवदत्ता को इधर-उधर खोजने लगा। उसे एक प्रतिमा दिखाई दी। उसने ज्योंही उसे छुआ, वह वासवदत्ता के रूप में परिवर्तित हो गई। दोनों आनन्द के साथ अपने घर की ओर चल दिए और दोनों का विवाह हो गया।

सुबन्धु का काव्य वैशिष्ट्य

सुबन्धु ने अपनी कल्पना शक्ति और वर्णन चातुर्य से काव्य को अत्यन्त विस्तृत बना दिया है। कहीं-कहीं तो वर्णनों के सुन्दर कुंजों में कथानक का सूत्र छूट-सा जाता है और प्रयत्नपूर्वक उसे सम्भालना पड़ता है। चमत्कारपूर्ण वर्णनकौशल से उन्होंने कन्दर्पकेतु और वासवदत्ता के सौन्दर्य, गुण विरह-वेदना, मिलनसुख आदि का बड़ा आलंकारिक और विस्तृत वर्णन किया है।

प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करते हुए श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की झड़ी लगा दी है। अनुप्रास और यमक उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं। भाषा पर पूरा अधिकार होने के कारण

ही वे इस प्रकार की अद्भुत चित्र-विचित्र रचना कर सके हैं। उनके लम्बे-लम्बे समासों से युक्त पदों में ध्वनि-माधुर्य और प्रवाह युक्त लयात्मक संगीत की-सी झंकार है।

सबन्धु गौड़ी रीति के कवि हैं। इस रीति में ओजगुण, समासों का प्राचुर्य, क्लिष्ट पदावली, वैदुष्य-विलास आदि होते हैं। वासवदत्ता में ये सभी हैं। स्वयं कवि ने इस रचना में प्रत्यक्षर श्लेष रखने की प्रतिज्ञा की है—

प्रत्यक्षरश्लेषमय प्रबन्ध-विन्यासवैदग्धनिधिर्निबन्धम्। (वासव०, श्लोक. 13)

अत्यन्त लघुकाय कथानक को लम्बे प्रकृति-वर्णन, स्त्री-वर्णन, नगर-वर्णन, संवाद आदि से भरकर कवि ने अपने कलापक्ष को तो अवश्य प्रदर्शित किया है किन्तु कथाप्रवाह और रसोद्भावन में अपरिपक्वता है। श्लेष, परिसंख्या, विरोधाभास आदि अलंकारों के प्रति कवि का आकर्षण अपरिमेय है, बाण ने भी इस विलक्षणता को अपनाया है।

कथा को छोड़कर विषयान्तर में बह जाने की प्रवृत्ति भारवि, माघ आदि कवियों में जिस प्रकार मिलती है, वही सुबन्धु में भी है। इसी पर आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में कहा है कि जो कवि अपनी रचनाओं में केवल अलंकारों के विन्यास में आनन्द लेते हैं तथा प्रबन्धकाव्य में रस का समुचित निवेश नहीं करते हैं वे निन्दनीय हैं, दोषयुक्त हैं।

सुबन्धु की रचना का कलापक्ष उदार और हृदयावर्जक है। स्वयं कवि ने कहा है कि अच्छे कवि की रचना के गुणों का ग्रहण न भी हो सके तो भी उसकी पदावली ही श्रवणमात्र से आनन्द प्रदान करती है जैसे मालतीमाला की सुरभि का ग्रहण न कर सकें तो उसका रूप ही आँखों को आकृष्ट कर लेता है —

अविदितगुणापि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।

अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृशं मालतीमाला॥

(मंगलश्लोक-11)

इसी से पता लगता है कि कवि ने पदशय्या और मधुर-कोमल-कमनीय शब्दों के चयन पर अपना सारा ध्यान केन्द्रित किया है कि कानों में मधु की धारा प्रवाहित कर सके। उनकी रचना में सर्वत्र समासों का घटाटोप नहीं है, किन्तु अलंकारों से कथा-प्रवाह अवश्य व्याहत हुआ है। राजा चिन्तामणि (नायक के पिता) के वर्णन में ही 30-40 पंक्तियाँ लगी हुई हैं जो अर्थालंकारों का स्तूप खड़ा कर देती हैं। श्लेष का सर्वत्र साम्राज्य है जैसे — यस्य च रिपुवर्गः

सदा पार्थोऽपि न महाभारतरणयोग्यः, भीष्मोऽप्यशान्तनवेहितः, सानुचरोऽपि न गोत्रभूषितः। (पृ० 18)। अर्थात् जिसका शत्रुवर्ग सदा पार्थ (अर्जुन) होने पर भी महाभारत के रण के योग्य नहीं था, वस्तुतः शत्रुवर्ग सदा अपार्थ (नष्टप्रयोजन, अप+अर्थ) था, महाभार (सैन्य—संचालन आदि बड़े कार्य) के तरण (संपादन) के योग्य नहीं था। वह भीष्म होकर भी शान्तनु का हितैषी नहीं था (शान्तनवे हितः); वस्तुतः भयंकर (भीष्म) होकर भी अनवरत (अशान्त, कभी न रुकता हुआ) स्तुति की इच्छा करता था (नव—स्तुति, ईहित इच्छा)। वह शत्रुवर्ग सानु (पर्वतशिखर) पर विचरण करके भी पर्वत (गोत्र) की भूमि में रहता नहीं था (भू—उषितः); वस्तुतः अनुचर—सहित रहकर भी शत्रुसमूह गोत्र के नाम से विख्यात नहीं था (क्योंकि कोई वीरोचित कर्म करता ही नहीं था)। इस प्रकार श्लेषानुप्राणित 'विरोधाभास' अलंकार का प्रयोग सन्दर्भ को प्रौढ़ि प्रदान करता है।

विविध शास्त्रों में निष्णात सुबन्धु ने अपने वैदुष्य का प्रयोग अलंकारों के निवेश में किया है। वे सत्काव्य का लक्षण ही मानते हैं— सुश्लेषवक्रघटनापटु सत्काव्यविरचनम्। बाणभट्ट ने सुबन्धु की वासवदत्ता की सही प्रशंसा की है —

कवीनामगलद दर्पो नूनं वासदत्तया ।

शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥ (हर्षचरित 1/11)

4. बाणभट्ट

काव्य तथा नाटक के क्षेत्रों में जो कीर्ति कालिदास को प्राप्त है, वही गद्यकाव्य के क्षेत्र में बाणभट्ट को उपलब्ध है। संस्कृत काव्यों में तथा आभाणकों में बाण की प्रशस्तियाँ भरी हुई हैं सौभाग्यवश बाण का काल तथा व्यक्तित्व दोनों के विषय में पर्याप्त सूचना मिलती है, क्योंकि स्वयं अपने हर्षचरित के आरम्भ के ढाई उच्छ्वासों में एवं कादम्बरी के मंगलपद्यों में अपना परिचय दिया है। बाण के पूर्वज वत्स सरस्वती—पुत्र सारस्वत के चचेरे भाई थे। वत्स से वात्स्यायन वंश चला जिसमें कुबेर नामक विद्वान् व्यक्ति का जन्म हुआ। उनके अच्युत हर और पाशुपत नामक चार पुत्र हुए। पाशुपत के पुत्र अर्थपति हुए जिनके भृगु आदि 11 पुत्र हुए।

इनमें आठवें चित्रभानु थे जो बाण के पिता थे। बाण के पुत्र भूषण (उपनाम—पुलिन्द) हुए, जिन्होंने बाण की अपूर्ण गद्यकृति 'कादम्बरी' को पूर्ण किया।

बाण का वंश विद्या की अविच्छिन्न परम्परा तथा द्विजोचित वैभव से सम्पन्न था। इनकी माता का देहान्त बाण के शैशव काल में ही हो गया था, पिता ने इन्हें पाला, किन्तु बाण 14 वर्ष की आयु के थे जब पिता भी दिवंगत हो गये। मित्रों के साथ बाण देश-देशान्तर में घूमते रहे जिससे इनकी निन्दा होने लगी। राजा हर्ष की राजसभा में इनके हितैषी कृष्ण ने बुलाकर राजा से मिलने की व्यवस्था की। इनके प्रति राजा का उपेक्षाभाव सम्मान में परिणत हो गया तथा पर्याप्त समय इन्होंने हर्ष के सान्निध्य में बिताया। कालान्तर में अपने घर लौटने पर बन्धुजनों के अनुरोध से इन्होंने हर्ष के जीवन का कुछ अंश सुनाया जो 'हर्षचरित' नामक गद्यकाव्य के रूप में है।

बाण का पैतृक निवास प्रीतिकूट था जो आज 'पीरू'— गाँव के रूप में च्यवनाश्रम देवकुण्ड के निकट (औरंगाबाद जिले में, बिहार) है। यह शोण (या हिरण्यवाह) नद के पूर्व कुछ दूरी पर है, यह संकेत बाण ने ही दिया है।

बाणभट्ट संस्कृत भाषा में गद्य—काव्य की रचना करने वाले कवियों में ही नहीं, अपितु संस्कृत भाषा के अन्य सभी कवियों में अद्भुत और उत्कृष्ट कोटि के कवि माने जाते हैं। उन्हें साक्षात् वाणी का अवतार कहा जाता है—'वाणी बाणो बभूव' अन्य कवियों के समान इनके व्यक्तिगत जीवन—स्थान, समय आदि के विषय में कोई समस्या नहीं है। ये सम्राट हर्षवर्धन की राज्यसभा में सम्मानित कवि थे अतः उनका समय हर्षवर्धन के काल (600—648 ई०) के साथ जुड़कर सातवीं शताब्दी के मध्य में निश्चित किया जा सकता है। इन्होंने अपनी गद्य रचना 'हर्षचरित' के प्रारम्भिक ढाई उच्छ्वासों में अपना और अपने कुल का परिचय दिया है।

रचनाएँ

बाणभट्ट की दो गद्य रचनाएँ—हर्षचरित और कादम्बरी हैं। चण्डीशतक भी इन्हीं की रचना मानी जाती है। इसमें एक सौ श्लोकों में चण्डी देवी की स्तुति की गई है।

हर्षचरितम्

हर्षचरित में कवि ने अपने आश्रयदाता सम्राट हर्षवर्धन के चरित का वर्णन किया है। इसमें आठ उच्छ्वास हैं और कवि ने स्वयं इसे 'आख्यायिका' नाम दिया है। दण्डी ने काव्यादर्श में आख्यायिका उस गद्यकाव्य को माना है, जिसमें किसी ऐतिहासिक पुरुष या घटनाओं का वर्णन किया गया हो।

बाण ने हर्षचरित के पहले ढाई उच्छ्वासों में अपने वंश का तथा अपना जीवन परिचय दिया है। इसके पश्चात् उन्होंने सम्राट हर्षवर्धन की राजधानी स्थाण्वीश्वर (वर्तमान थानेसर) का वर्णन करने के पश्चात् हर्षवर्धन के पूर्वजों का वर्णन किया है। चौथे उच्छ्वास में कवि ने हर्ष के पिता राजा प्रभाकरवर्धन के समस्त जीवन का वर्णन करके उनकी तीन सन्तानों—राज्यवर्धन, राज्यश्री और हर्षवर्धन के जन्म का सुन्दर और मनोरंजक वर्णन किया है। पाँचवें, छठे और सातवें उच्छ्वासों में वर्धन कुल पर एक के बाद एक आने वाली विपत्तियों प्रभाकरवर्धन की मृत्यु, राज्यश्री के पति का छल द्वारा मारा जाना, राज्यवर्धन की हत्या, राज्यश्री का विन्ध्याटवी में चले जाना आदि का वर्णन है। आठवें उच्छ्वास में हर्ष राज्यश्री की खोज में है। दिवाकर मित्र की सहायता से राज्यश्री मिल जाती है। हर्ष दिवाकर मित्र के सामने शपथ लेता है कि दिग्विजय के पश्चात् मैं बौद्ध बन जाऊँगा।

इस अधूरी अवस्था में ही हर्षचरित समाप्त हो जाता है। बाण ने हर्ष के जीवन की घटनाओं का पूरा वर्णन क्यों नहीं किया ? यदि वर्णन किया होता तो यह काव्य ऐतिहासिक महत्त्व का हो जाता। इतिहास के तथ्य कवि के वर्णनों में ढक गए हैं।

हर्षचरित बाण की पहली रचना है। यद्यपि इसमें कवि का पाण्डित्य, जीवन का अनुभव तथा भाषा पर अधिकार स्पष्ट दिखाई देता है, तो भी कादम्बरी के समान परिपक्वता नहीं है। इस गद्यकाव्य में कोई भी रस मुख्य नहीं कहा जा सकता। जिस व्यक्ति अथवा घटना का वर्णन कवि करने लगा है उसकी भावना के अनुसार ही रस परिपाक हो जाता है। जहाँ प्रभाकरवर्धन, राज्यवर्धन और हर्ष की वीरतापूर्ण घटनाओं का चित्रण है वहाँ वीररस का परिपाक है। राज्यश्री के विधवा होने पर, राज्यवर्धन की मृत्यु पर जिस शोकमय परिवेश और मनोवस्था का चित्रण है वहाँ करुण रस का प्रवाह है। दिवाकर मित्र के उपदेशों में शान्तरस

का निर्झर है । इस प्रकार कवि रससिद्ध है। वर्णन करने में शब्दचित्र प्रस्तुत करने में भी कवि की कुशलता विकसित होती प्रतीत होती है। विन्ध्याटवी का वर्णन सघन विन्ध्याटवी के चित्रों को पाठक की कल्पना में उतारता जाता है।

कादम्बरी

बाण की दूसरी गद्य रचना 'कादम्बरी' है। यह बाण के कला-कौशल का उच्चतम और अति सुन्दर प्रतीक है। इसको कथा की कोटि में रखा जाता है, क्योंकि इसकी कथा कल्पना पर आश्रित है। नायक अपनी कथा स्वयं नहीं सुनाता, अपितु शुक तथा जाबालि मुनि सुनाते हैं। इस कथा का विभाजन उच्छ्वासों में नहीं है। बृहत्कथा में सुमनस् की कथा आती है। विद्वानों ने यह अनुमान किया है कि बाण ने उसी कथा को अपनी असाधारण प्रतिभा से मौलिकता तथा नवीनता प्रदान की है।

कहा जाता है कि बाणभट्ट अपने जीवन में कादम्बरी को पूरा नहीं लिख पाये थे। मृत्यु शय्या पर पड़े हुए बाण ने अपने दोनों पुत्रों को बुलाया और सामने स्थित एक वृक्ष का वर्णन करने के लिए कहा। एक ने कहा—'शुष्को वृक्षस्तिष्ठत्यग्रे' और दूसरे ने कहा—'नीरसतरुरिह विलसति पुरतः' । बाण को अपने दूसरे पुत्र (पुलिन्दभट्ट) में काव्य प्रतिभा प्रतीत हुई और उसने उसे कादम्बरी पूरा करने का भार सौंप दिया। कादम्बरी के उत्तर भाग के प्रारम्भ में एक श्लोक आता है —

याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्द्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।

दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्ध एव मया न कवित्वदर्पात् ॥

यह तो सत्य प्रतीत होता है कि पिता की मृत्यु के पश्चात् बाण के पुत्र पुलिन्दभट्ट या भूषणभट्ट ने कथा को पूरा किया। यह बात भाषा और शैली के अन्तर से भी प्रतीत होती है, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि बाण ने स्वयं परीक्षोपरान्त अपने एक पुत्र को यह कार्यभार सौंपा।

कादम्बरी का वस्तु-विन्यास

बाण ने पुनर्जन्म और शाप के सिद्धान्त का सहारा लेकर नायक के तीन जन्म दिखाएँ हैं, जबकि नायिका एक बार जन्म लेकर अन्त तक मिलन की प्रतीक्षा कर रही है। इसमें प्रारम्भ से ही उत्सुकता जाग उठती है जिसका प्रशमन अन्त में जाकर ही होता है। राजा शूद्रक, परम विद्वान् तोता और चाण्डाल कन्या के साथ कथा का प्रारम्भ बड़े रहस्यमय वातावरण में होता है, जिससे तीव्र उत्सुकता को लिए हुए पाठक वन, पर्वत, नदी, सरोवर, नगर, प्रासाद, आश्रम आदि के चित्र विचित्र, सुदीर्घ, समास बहुल वर्णनों को पार करता हुआ कथा के अन्त तक पहुँच जाता है। यही तो बाण के वस्तु-विन्यास का कौशल है। इसीलिए 'कादम्बरी' संस्कृत-साहित्य का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास कहा जाता है। उपन्यास के नायक से हमारा परिचय कथा के प्रारम्भ में ही हो जाता है, परन्तु यह स्पष्ट अन्त में ही होता है कि शूद्रक ही नायक है। 'कादम्बरी' नायिका तो आधी कथा समाप्त होने पर मिलती है। उसकी सखी 'महाश्वेता' की प्रेम कहानी अधिक वेदनापूर्ण और आकर्षक है परन्तु वह तो नायिका की प्रेमकथा की भूमिका मात्र है। बाण का यह कौशल है कि उसने प्रेमी-युगल के तीन जन्म की कथा को सुन्दर ढंग से एक कथा में गूँथ दिया है। इसके लिए उसे अनेक बार दिव्यता और आकाशवाणी का सहारा लेना पड़ता है। शाप, त्रिकालदर्शी जाबालि और श्वेतकेतु जैसे मुनि, मानवरूप में बोलते हुए पक्षी तथा भविष्य सूचक स्वप्नों की परम्परा को भी अपनाया गया है, जिससे आधुनिक दृष्टि से अस्वाभाविकता का दोष आ जाता है। तो भी कथा में तन्मय करने की शक्ति है। कथा को एक ही पात्र नहीं सुनाता, अपितु शुक, जाबालि, महाश्वेता, चाण्डाल कन्या बारी-बारी से सुनाते हैं। शुक की कथा में ही जाबालि और महाश्वेता के वृत्तान्त हैं।

रस कादम्बरी का मुख्य रस शृंगार है। बाण को साहित्यशास्त्र की परम्पराओं का पूर्ण परिचय था अतः उसने रस की निष्पत्ति के लिए आवश्यक सभी तत्त्वों को असाधारण दक्षता से जुटाया है। शृंगार के दोनों पक्षों-संभोग और विप्रलम्भ का सफलतापूर्वक परिपाक उसकी रचना में हैं, परन्तु संभोग की अपेक्षा विप्रलम्भ शृंगार की ही प्रधानता है। संभोग शृंगार का तो प्रारम्भिक रूप ही उसने दिखाया है, जबकि विप्रलम्भ की घड़ियाँ लम्बी और वेदना से परिपूर्ण होने के कारण अधिक प्रभावोत्पादक हैं। पुण्डरीक और महाश्वेता का प्रेम शारीरिक मिलन से

पूर्व ही विरह में परिणत हो गया । कादम्बरी और चन्द्रापीड का प्रेम भी प्रारम्भिक अवस्था में ही चन्द्रापीड की कर्तव्यनिष्ठा तथा पिता की आज्ञाकारिता के कारण विरह अवस्था में ही बीता है। प्रेम की वासनामय उद्दामता सम्भवतः बाण को वाञ्छनीय नहीं थी और न ही उसको समाज की परम्पराओं की उपेक्षा सह्य थी। अच्छोद सरोवर के तट पर जब पुण्डरीक और महाश्वेता का प्रेम समाज के संयत बन्धन को तोड़ने की अवस्था में पहुँच रहा था, तभी कवि ने उसमें रुकावट डाल दी और पुनर्मिलन के लिए महाश्वेता को सुदीर्घ तपस्यामय जीवन व्यतीत करना पड़ा और पुण्डरीक को वैशम्पायन और शुक के रूप में जीवन की दो अवस्थाओं में भटकना पड़ा। चन्द्रापीड और कादम्बरी यद्यपि प्रारम्भ से ही संयत थे, परन्तु उनका प्रेम भी विरहाग्नि में तप कर जब तक पवित्र न हो गया, तब तक उसकी परिणति न हुई। इसके लिए बाण ने विभाव—आलम्बन तथा उद्दीपन और अनुभावों का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। महाश्वेता ने अपनी प्रणयकथा चन्द्रापीड को सुनाई, वह इसका परम सुन्दर उदाहरण है।

शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों का भी गौण रूप में समावेश है। कादम्बरी के तोता—मैना के परिहास में हास्य रस का संयत और सूक्ष्म चित्रण है। चन्द्रापीड की विश्वविजय में वीर रस, विन्ध्याटवी, शबर—सेना, शबर—सेनापति, वृद्ध—शबर तथा पक्षियों के मारने में भयानक रस और जाबालि के आश्रम के वर्णन में शान्त रस की छाया मिलती है।

वर्णन—शैली—बाण के गद्यकाव्य वर्णन—प्रधान हैं। भारवि, माघ और श्रीहर्ष के महाकाव्यों में जिस प्रकार विषय—वस्तु की अपेक्षा वर्णनों पर अधिक बल दिया गया है, उसी प्रकार गद्य में भी वर्णनों को महत्त्व दिया गया है। उन वर्णनों में कवि ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, कल्पना की दूरगामिता, साम्य और असाम्य पर आधारित अलंकारों की योजना, नवीन—नवीन उपमानों की कल्पना, काव्य प्रतिभा तथा भाषा पर अपूर्व अधिकार से ऐसे शब्द चित्रों को प्रस्तुत किया है, जो यदि किसी कुशल चित्रकार के मस्तिष्क और हृदय के माध्यम से तूलिका के द्वारा चित्रपट संस्कृत साहित्य का परिचय पर आ जाएँ तो 'कादम्बरी—कथा' चित्रावली बन जाए। इसीलिए सम्भवतः रवीन्द्रनाथ ने इसकी तुलना चित्र वीथी से की थी। एक सहृदय आलोचक ने लिखा, 'समस्त कादम्बरी काव्य एक चित्र—शाला है। इस कुंजवन की गली में नये—नये रंगों के अनेक लता—वितान हैं, प्रलोभनीय अंशों की बहुलता है।' इन शब्द—चित्रों में भाव—पक्ष और कला—पक्ष का इतना सुन्दर सामंजस्य है कि पाठक दर्शक बनकर ठिठक कर खड़ा हो जाता

है और चित्र की एक-एक रेखा में लीन हो जाता है। कथानक के प्रवाह में आए अवरोध का उसे ज्ञान ही नहीं होता।

भाषा—शैली—बाणभट्ट ने दोनों गद्य—काव्यों में पांचाली शैली को अपनाया है। इसमें अर्थ के अनुरूप ही शब्दों का गुम्फन किया जाता है। जल्हण की सूक्ति—मुक्तावली में उक्ति है —

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पांचालीरीतिरिष्यते।

शिलाभट्टारिका वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ।।

वामन, भोज और राजशेखर के अनुसार भी पांचाली रीति में इन्हीं गुणों का समावेश होता है।

बाण ने शब्द और अर्थ, भाषा और भाव का सुन्दर सामंजस्य रखा है। उन्होंने विषय के अनुकूल शब्दावली का प्रयोग किया है। भयानक रूपों का वर्णन करने में उसने कठोर परुषाक्षरों के समास बहुल पदों का प्रयोग किया है। विंध्याटवी और शबर—सेनापति के वर्णन इसके उदाहरण हैं। जहाँ नारी सौन्दर्य, वसन्त ऋतु आदि कोमल विषयों का वर्णन है, वहाँ उसकी भाषा में कोमल पदावली का प्रयोग है। समास बहुत छोटे—छोटे हैं अथवा हैं ही नहीं। पम्पा सरोवर तथा अच्छोद सरोवर के वर्णन के अतिरिक्त महाश्वेता, कादम्बरी, पत्रलेखा, राज्यश्री के वर्णनों में इसी प्रकार की भाषा दृष्टिगोचर होती है।

जहाँ भावों की तीव्रता, विचारों की स्पष्टता, प्रभावोत्पादकता अभिप्रेत होती है, वहाँ बाण छोटे—छोटे वाक्यों और स्वल्पसमास वाली शैली का प्रयोग करते हैं, परन्तु एक—एक शब्द अर्थगाम्भीर्य से युक्त होता है। महाश्वेता द्वारा अपने प्रणय की कथा का वर्णन, चन्द्रापीड के गुरुकुल से प्रत्यावर्तन पर स्त्रियों का भावालाप, किन्नरयुगल का अनुसरण करते हुए अपने साथियों से बिछुड़कर अच्छोद सरोवर के तट पर वृक्ष के नीचे अकेले बैठे चन्द्रापीड का स्वचिन्तन, कपिंजल द्वारा पुण्डरीक को समझाना, शुकनास का उपदेश इत्यादि ऐसे प्रसंग हैं।

हर्षचरित के प्रारम्भ में बाण ने गद्य—शैली का आदर्श प्रस्तुत किया है जिसके अनुसार मौलिक कल्पना, सुरुचिपूर्ण स्वाभावोक्ति, सरल श्लेष, स्फुट रूप से प्रतीयमान रस तथा दृढ़बन्ध पदावली, इन सबका एकत्र सन्निवेश दुर्लभ है। साथ ही दूसरे के भावों का वास्तविक चित्रण और अभिनव अर्थ की कल्पना भी उत्कृष्ट गद्य—शैली के प्रधान लक्षण हैं। ये सब गुण बाण की शैली में देखे जा सकते हैं। इन सबका उपयोग कवि ने विवेकपूर्वक किया है। जहाँ जो सजता

है, जिससे प्रभावोत्पादकता और सरसता बढ़ती है वहाँ ही उसका प्रयोग किया गया है।
शुकनास ने लक्ष्मी का परिचय देते हुए —

न परिचयं रक्षति । नाभिजनमीक्षते । न रूपमालोकयते । न कुलक्रममनुवर्तते । न शीलं
पश्यति । न वैदग्ध्यं गणयति । न श्रुतमाकर्णयति । न धर्ममनुरुध्यते । न त्यागमाद्रियते ।

इसमें छोटे-छोटे वाक्यों में लक्ष्मी के गुणों का प्रभावोत्पादक वर्णन किया गया है।

कपिंजल पुण्डरीक की मृत्यु पर विह्वल होकर कहता है —

हा हतोऽस्मि । हा दग्धोऽस्मि । हा वंचितोऽस्मि । हा किमिदमापतितम् किं वृत्तम् ।
उत्सन्नोऽस्मि ।

महाश्वेता विलाप करती है

प्रसीद । सकृदप्यालप । दर्शय भवतवत्सलताम् । ईषदपि विलोक्य पश्य मे मनोरथम् ।
आर्ताऽस्मि । भक्ताऽस्मि । अनुरक्ताऽस्मि । अनाथाऽस्मि । बालाऽस्मि । किमिति न करोति
दयाम् ।

प्राचीन परम्परा के अनुसार बाण की प्रशंसा में 'बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्' उक्ति प्रसिद्ध है। यह बाण के अगाध पाण्डित्य और सर्वतोमुखी प्रतिभा को दृष्टि में रखकर ही कही गई होगी। भाषा, भाव, कल्पना और अलंकारों के क्षेत्र में संसार की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिसका स्पर्श बाण की लेखनी ने न किया हो । वस्तुतः बाण की वंश परम्परा में ही शास्त्रों का अध्ययन, काव्यों के रसों का आस्वादन, कलाओं का परिज्ञान आदि सभी विधाओं का अनुशीलन-परिशीलन होता था और वह बाण को भी प्राप्त हुआ था। बाण अपने जीवन के प्रारम्भ में देश-देशान्तरों में घूमता रहा था। विभिन्न प्रकार के मनुष्यों के सम्पर्क में आने के कारण उनकी मानसिक स्थिति का ज्ञान उसे था। अनेक देशों की प्रकृति का आनन्द उसके सौन्दर्य को देखकर प्राप्त किया था। इस प्रकार उसका पाण्डित्य, अनुभव तथा कल्पना का प्राचुर्य उसकी रचना में सर्वत्र झलकता है।

भाषा पर उसका पूर्ण अधिकार दृष्टिगोचर होता है। जब वह किसी वस्तु का वर्णन करने लगता है तो विशेषणों की परम्परा लाकर खड़ी कर देता है, परन्तु एक शब्द का प्रयोग दोबारा नहीं किया जा सकता। प्रत्येक वस्तु के साथ उसने उपयुक्त विशेषणों को ही सजाया है। समूह शब्द के पर्यायवाची अनेक शब्दों में से मेघ, पुष्प, वृक्ष, अनाज, मनुष्य, पशु, पक्षी

आदि सभी के साथ उसी शब्द का प्रयोग मिलेगा जो उपयुक्त होगा। भाषा पर इनके अधिकार को देखकर गोवर्धनाचार्य ने 'वाणी बाणो बभूव'—अर्थात् वाणी ही बाण बनकर आ गई—ऐसा कह डाला।

उसकी अलंकार योजना में तथा प्रस्तुत विधान में जिन उपमानों की योजना की गई है वह प्रकृति, संसार के यथार्थ ज्ञान और शास्त्रीय ज्ञान की द्योतक है। ज्योतिष, दर्शन, संगीत, चित्रकला, मानवप्रकृति आदि के अनेक प्रसंग हर्षचरित और कादम्बरी में बड़ी सुन्दरता के साथ आए हैं। शुकनासोपदेश नैतिकता, धर्म, दर्शन, पुराण, समाजशास्त्र, राजधर्म आदि सभी के ज्ञान का आगार है।

श्लेष में शब्दों की सजावट में, रसोद्भावन में, अलंकारों के प्रयोग में, चमत्कारी अर्थ के विन्यास में या कथावर्णन में विविध कवि विख्यात हो सकते हैं, किन्तु इन समस्त विशिष्टताओं के समन्वित और समुचित विन्यास में बाण ही निपुण हैं। वे तो कवि—रूप गजों के कपोल चीरने वाले तथा कविता—रूपी विन्ध्याटवी में कौशलयुक्त संचरण करने वाले मृगराज हैं।

भाषा पर ऐसा अधिकार जो छोटे और बड़े सभी वाक्यों को समान वाक्यों को समान रूप से संभाल ले, भावों के अनुसार शब्दों की योजना तथा उनमें लयात्मकता का निवेश — ये ऐसे गुण हैं जो बाण को कविचक्रवर्ती के पद पर आसीन करते हैं (बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती)। भाषा का आश्चर्यकर आकर्षण एवम् अप्रस्तुतयोजना की सजीवता बाण की साहित्यिक विभूति है; कल्पना के साथ अनुभूतियों का सामंजस्य उनकी कला का आधार है।

जगत् को व्याप्त करने में बाण के अगाध वैदुष्य का प्रभूत योगदान है। हर्ष के समक्ष बाण कहते हैं — सम्यक् पठितः साङ्गो वेदः, श्रुतानि च यथाशक्ति शास्त्राणि (पृ० १३५)। यह पाण्डित्य उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त हुआ है। उनकी रचनाओं में वेद, व्याकरण, ज्योतिष, महाभारत, चार्वाक, जैन, बौद्ध, न्याय—वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त, पुराण, धर्मशास्त्र, आयुर्वेद, संगीत, सामुद्रिकशास्त्र, साहित्य आदि शास्त्रों के सहस्रों सन्दर्भ निर्दिष्ट हैं। इसी प्रकार उन्होंने राजनीति, इतिहास, भूगोल, स्वप्नविज्ञान, शकुनशास्त्र, पशुविज्ञान जैसे विषयों का भी पाण्डित्य प्रकट किया है। बाण के वैदुष्य का एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा कि संस्कृत शब्दावली पर उनका कितना बड़ा अधिकार था। समूह के अर्थ में उन्होंने संचय, निचय, प्रकर, कदम्बक, जाल, निवह, राशि, कुल, यूथ, ग्राम, वृन्द, संहति, पेटक, पटल, सार्थ, निकर, पुंज,

गण, मण्डल, व्रात, दल, कलाप आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया है और प्रत्येक शब्द अपने समुचित स्थान पर सूक्ष्म अर्थव्यंजना करता है। इनके ग्रन्थों को पढ़ने पर वस्तुतः माघ के लिए प्रचलित 'नवशब्दो न विद्यते' की साक्षात् अनुभूति होती है। सभी शास्त्र बाण के सामने खड़े प्रतीत होते हैं।

कल्पनाशक्ति की उर्वरता में बाण अनुपम हैं। किसी दृश्य वस्तु के वर्णन में जब वे उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग करने लगते हैं तो उसकी एक-एक विशिष्टता पाठकों के समक्ष प्रकट होने लगती है। वस्तु अपने सर्वांगपूर्ण रूप में मानस-पटल पर आ जाती है। ऐसे प्रसंगों में बाण अलंकारों की झड़ी लगा देते हैं। जो भी अलंकार उनकी कल्पना में आया उसका दस-बीस प्रयोग करके ही कथा को आगे बढ़ाते हैं।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी बाण की कला श्लाघनीय है। उनकी रचनाओं में हर्ष, राज्यवर्धन, प्रभाकरवर्धन, पुष्पभूति, शूद्रक, तारापीड और चन्द्रापीड जैसे राजा एवं राजकुमार हैं, तो यशोमती और कादम्बरी जैसी रानी-राजकुमारी भी हैं। भैरवाचार्य तान्त्रिक है तो एक धूर्त साधक जरद्विड धार्मिक भी है; शुकनास जैसा अनुभवी मन्त्री है तो उसके पुत्र वैशम्पायन जैसा आदर्श मित्र भी है। महाश्वेता, पत्रलेखा जैसी रमणियाँ हैं तो शबरसेनापति के समान क्रूर पात्र भी है। दिवाकरमित्र बौद्धकुलपति है। मातङ्गकन्या के चित्रण में बाण ने अद्भुत स्त्री चरित्र आविर्भूत किया है। बाण की आत्मकथा में दिव्य स्त्रीपात्र सरस्वती और सावित्री तथा च्यवन ऋषि का पुत्र दधीच, कृष्ण का दूत मेखलक इत्यादि विविध पात्र आये हैं। इन चरित्रों में बाण की सूक्ष्मेक्षिका प्रकट हुई है।

'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' इस कथन के अनुसार भी बाण कसौटी पर खरा ही उतरता है। पद्य रचना में छन्द के बन्धन में बँधा कवि शब्द प्रयोग में सर्वथा स्वतन्त्र नहीं होता, परन्तु गद्य में परतन्त्रता नहीं होती। शब्दों का औचित्य और उपयुक्तता देखते हुए प्रयोग गद्य की बड़ी विशेषता होती है। इसमें इतनी सुगठितता वांछनीय है कि एक भी शब्द को इधर से उधर न तो हटाया जा सके और न ही उसके स्थान पर उसका पर्यायवाची दूसरा शब्द रखा जा सके। बाण के वर्णनों में यह विशेषता प्रायः देखने को मिलती है। यदि कहीं पर्यायवाची शब्द भी रख दिया जाए तो वह सौन्दर्य तथा अर्थ सभी दृष्टियों से उचित प्रतीत नहीं होता। बाण वास्तव में अपार पाण्डित्य, विशाल अनुभव, अद्भुत कल्पना शक्ति, भाषा पर अधिकार तथा

अनन्त शब्द भण्डार के कारण सफल गद्य लेखक, वाणी के अवतार और सर्व क्षेत्रों में सफल कवि हैं।

5. अन्य गद्यकार

बाण ने गद्यकाव्य को जिस ऊँचाई पर पहुँचाया था, वह परवर्ती कवियों के लिए अनुकरणीय हो गया, दण्डी की प्रसादमयी वैदर्भी उन्हें अच्छी नहीं लगी। फिर भी वे बाण के सामने प्रभाहीन ही रहे। इस पर बाण की प्रशस्ति भी दी गयी —

नूनं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमागताः।

बाणध्वनावनध्यायो भवतीति श्रुतिर्यतः ॥

एक परवर्ती कवि वामनभट्ट बाण ने अपने 'वेमभूपालचरित' की प्रस्तावना (श्लोक-6) में कहा कि एक अपयश की बात चल रही है कि बाण से भिन्न कवि काने हैं, इस अपयश के प्रक्षालन के लिए मैं यह कृति दे रहा हूँ —

बाणादन्ये कवयः काणाः खलु सरसगद्यसरणीषु ।

इति जगति रूढमयशो वामनबाणोऽपमार्ति वत्सकुलः ॥

बाण की गद्य-सरणि के अनुवर्तन में जो शून्यता छायी थी, उसे बहुत दिनों बाद जैन गद्यकारों ने तोड़ा और वे शताब्दियों तक गद्यकृतियाँ देते रहे। कई शताब्दियों के पश्चात ही दूसरे लोग गद्यकाव्य के लेखन में आगे आये। यहाँ कुछ लेखकों और उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है —

धनपाल

धनपाल (1000 ई०) की तिलकमंजरी— धनपाल राजा भोज के चाचा सभासद जैनकवि थे। अपनी गद्यरचना 'तिलकमंजरी' की प्रस्तावना (श्लोक 51-3) में इन्होंने आत्मपरिचय दिया। प्रभाचन्द्र के प्रभावकचरित तथा मेरुतुंग की 'प्रबन्धचिन्तामणि' में भी इनका जीवनवृत्त दिया गया है। उज्जयिनी के समीप सांकाश्य ग्राम के निवासी वैदिक विद्वान सर्वदेव के ये पुत्र थे, युवावस्था में जैन साधु हो गये थे। मुज्ज ने इन्हें 'सरस्वती' की उपाधि दी थी। इनकी अनेक

रचनाओं में 'तिलकमंजरी' सर्वाधिक विख्यात है। इसकी रचना कवि ने भोज के जैन आगमों के विषय में उत्पन्न कुतूहल के शमनार्थ की थी। यह कथा नामक गद्य-काव्य है। मंगलाचरण के 53 पद्यों में बाण की कृतियों के समान सत्प्रशंसा, असन्निन्दा कवि परिचय आदि विषय है। मूलग्रन्थ में विद्याधरी तिलकमंजरी और समरकेतु की प्रणयकथा कादम्बरी की शैली में वर्णित है। फिर भी दीर्घसमास और श्लेष-प्रदर्शन में कवि की रुचि नहीं है। इसीलिए विजयगणि (जैनलेखक) ने इस कृति को दण्डी, सुबन्धु और बाण की कृतियों से श्रेष्ठतर कहा है। बाण का अनुकरण करने पर भी धनपाल की शैली में सुगमता है। अलंकारों के श्लेष-मूलक प्रयोग में सरलता है जैसे अयोध्या-वर्णन में धनपाल कहते हैं— उच्चापशब्दः शत्रुसंहारे न वस्तुविस्तारे, वृद्धत्यागशीलो विवेकेन न प्रज्ञोत्सेकेन, गुरुणां वितीर्णाज्ञा शासनो भक्त्या न प्रभुशक्त्या । यहाँ परिसंख्यालंकार के प्रत्येक प्रयोग पर अन्त्यानुप्रास आकर्षक है। भाषा के प्रवाह के लिए यह सन्दर्भ दर्शनीय है —

‘यथा न धर्मः सीदति, यथा नार्थः क्षयं व्रजति, यथा न राजलक्ष्मीरुन्मनायते, यथा न कीर्तिर्मन्दायते, यथा न प्रतापो निर्वाति, यथा न गुणाः श्यामायन्ते, यथा न श्रुतमुपहस्यते. यथा न परिजनो विरज्यते, यथा न मित्रवर्गो म्लायति, यथा न शत्रवस्तरलायन्ते, तथा सर्वमन्वतिष्ठत्।

वादीभसिंह (11वीं शताब्दी)

धनपाल के कुछ दिनों के बाद महाकवि वादीभसिंह हुए थे जिन्होंने 'गद्यचिन्तामणि' नामक गद्यकाव्य लिखा। ये तमिल-राज्य के निवासी थे। इनके नाम से स्याद्वादसिद्धि, नवपदार्थनिश्चय आदि पाँच कृतियाँ निर्दिष्ट हैं। गद्यचिन्तामणि ग्यारह लम्बकों में विभक्त है जिसमें महाराज जीवन्धर का वृत्तान्त वर्णित है। इसका स्रोत गुणभद्रकृत उत्तरपुराण में वर्णित जीवन्धर चरित है । वादीभसिंह ने इसी कथा को पद्यात्मक बनाकर क्षत्रचिन्तामणि की भी रचना की थी। 'जीवन्धरचम्पू' में हरिचन्द्र ने इन दोनों काव्यों का उल्लेख किया है। गद्यचिन्तामणि आख्यायिका है, जिसमें अलंकरण का यथेष्ट प्रयास है। प्रत्यग्रकन्दलीदलन दुर्ललित-कोकिल- कलालापच्छलेन' जैस ललित समस्तपदों के प्रयोग इसमें बहुधा हुए हैं।

प्रभाचन्द्र (12वीं शताब्दी) तथा जिनभद्र (13वीं शताब्दी)

प्रभाचन्द्र ने 'गद्यकथाकोष' के रूप में 81 कथाओं की प्रस्तुति की है। उदयप्रभसूरि के शिष्य जिनभद्र ने ऐतिहासिक तथा पौराणिक कथाओं को काव्यरूप में लाकर सरल शैली में 'प्रबन्धावलि' नामक गद्यकाव्य लिखा। इसमें मुख्यतः गुजरात, राजस्थान, मालवा तथा वाराणसी के प्रसिद्ध महापुरुषों की कथाएँ हैं।

मेरुतुङ्गाचार्य (14वीं शताब्दी)

'प्रबन्धचिन्तामणि' नामक गद्यकृति के लेखक मेरुतुङ्ग चन्द्रप्रभ मुनि के शिष्य थे। प्रबन्धचिन्तामणि में कुल ग्यारह प्रबन्ध हैं जिनमें ऐतिहासिक (विद्वानों कवियों और आचार्यों) के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं का वर्णन है। समासबहुल दीर्घकाय वाक्यों में इसकी रचना हुई है। इसका रचनाकाल 1361 विक्रमाब्द (1304 ई.) है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण रचना है।

राजशेखरसूरि (14वीं शताब्दी)

इनकी कई कृतियाँ प्रसिद्ध हैं जिनमें एक गद्यकाव्य 'प्रबन्धकोश' भी है। इसकी रचना 1405 विक्रमाब्द (1348 ई०) में पूरी हुई थी। इसका दूसरा नाम 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध' भी है, क्योंकि इसमें 24 महापुरुषों के जीवनवृत्त हैं। इनमें दस जैन आचार्य, चार संस्कृत कवि, सात राजा तथा तीन जैन गृहस्थ हैं। उपर्युक्त चरितमूलक गद्यकृतियों के मध्य अपने विस्तार और विश्लेषण के कारण 'प्रबन्धकोश' अग्रगण्य है। सिन्धी जैनग्रन्थमाला (सं० ६) में यह शान्तिनिकेतन से 1935 ई० में प्रकाशित है जिसका सम्पादन मुनि जिनविजय ने किया है। इतिहास की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि दन्तकथाओं का भी इसमें समावेश है।

वामनभट्टबाण (1450 ई०)

बाणभट्ट के समान ये भी वत्सगोत्र के थे। तेलंगाना (त्रिलिंग) के शासक वेमभूपाल की राजसभा में इन्होंने आदर पाया था, अतः उनके जीवनवृत्त को 'वेमभूपालचरित' नामक

आख्यायिका में गुम्फित किया। यह हर्षचरित से प्रेरित गद्यकाव्य है। वेमभूपाल स्वयं भी कवि थे, जिन्होंने अमरुशतक पर 'शृंगारमंजरी'— टीका लिखी थी। वामनभट्टबाण ने बाण की ख्याति और प्रौढ़ि का दावा किया है। इन्होंने अन्य भी कई ग्रन्थ लिखे, जैसे—नलाभ्युदयकाव्य, रघुनाथचरित महाकाव्य (30 सर्ग), पार्वतीपरिणय नामक नाटक तथा दो कोशग्रन्थ—शब्दचन्द्रिका, शब्दरत्नाकर। वेमभूपालचरित श्रीवाणीविलास प्रेस, श्रीरंगम् से प्रकाशित है।

विश्वेश्वर पाण्डेय (18वीं शताब्दी, पूर्वार्ध)

अल्मोड़ा (उत्तर प्रदेश) जिले के पाटिया ग्राम के निवासी लक्ष्मीधर पाण्डेय के ये पुत्र थे। कहा जाता है कि 40 वर्ष की आयु में ही इनकी मृत्यु हो गयी थी। इन्होंने 'मन्दारमंजरी' नामक एक महनीय गद्यकाव्य लिखा था। कादम्बरी के समान इसमें भी पूर्व और उत्तरभाग हैं। पूर्वभाग ही विश्वेश्वर पाण्डेय की रचना है। उत्तरभाग उनके किसी शिष्य की रचना है। ग्रन्थारम्भ में आर्याछन्द में 21 पद्य हैं जिनमें पूर्वकवियों की प्रशंसा है। मूलग्रन्थ में पुष्पपुर (पटना) के राजा राजशेखर एवं रानी मलयवती के पुत्र चित्रभानु तथा विद्याधर चन्द्रकेतु एवं चन्द्रलेखा की पुत्री मन्दारमंजरी के प्रेम तथा विवाह की कथा है। नायिका के नाम पर इसका शीर्षक है। ग्रन्थ में कवि ने अपना चतुरस्र पाण्डित्य और प्रौढ़ि का प्रकर्ष दिखाया है। बाण की श्रेणी में आने का लेखक ने अत्यधिक प्रयास किया है। बाण के कई वर्णनों से इस गद्यकाव्य के वर्णनों की तुलना की जा सकती है। नगर, नायक, देवी, स्वप्न, कुमारशिक्षा, रथ, तपोवन, कामदशा, नायिका आदि के वर्णन अत्यधिक मनोरम हैं। अलंकृत वर्णनों से कथा—प्रवाह और रसोद्भावन बहुधा बाधित हुए हैं। बाण के लक्ष्मी—वर्णन का प्रभाव इस वर्णन पर स्पष्ट है—'तुषारवृष्टिर्बुद्धिकमलिनीनाम्, कुलविद्या कौटिल्यस्य, वसन्तवेला कामस्य, दुर्वासोमनोभूमिः क्रोधस्य, सौभाग्यसिद्धिर्लोभस्य, लङ्काऽहङ्कारराक्षसानाम्, विभावरी विवेकविवस्वतः'। लक्ष्मी को यहाँ भी रूपकों की माला पहनाकर व्यंग्य—विषय बनाया गया है।

विश्वेश्वर पाण्डेय के अन्य ग्रन्थ हैं—वैयाकरणसिद्धान्तसुधानिधि (अष्टाध्यायी की विस्तृत व्याख्या, 3 अध्यायमात्र प्राप्त), तर्ककुतूहल, दीधितिप्रवेश (दोनों नव्यन्याय के टीकाग्रन्थ), शृंगारमंजरी (सट्टक—प्राकृत), अलंकारकौस्तुभ, रसचन्द्रिका, अलंकारप्रदीप, अलंकारमुक्तावली,

कवीन्द्रकण्ठाभरण; रोमावलीशतक, आर्यासप्तशती (दोनों काव्य) । इन ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। इनसे लेखक के प्रौढ पाण्डित्य का अनुमान होता है।

6. अम्बिकादत्त व्यास (1858–1900 ई०)

संस्कृत भाषा के आधुनिक साहित्यकारों में अम्बिकादत्तव्यास अग्रगण्य हैं । इनमें प्राचीनता और नवीनता दोनों का समन्वय मिलता है। अपने अल्प जीवन-काल तथा प्रायः कष्टमय जीवन यात्रा के होने पर भी समय और प्रतिभा का सदुपयोग करके इन्होंने हिन्दी-संस्कृत में छोटी-बड़ी 78 पुस्तकें लिखीं जिनमें कुछ अप्रकाशित हैं। इन्हें सर्वाधिक ख्याति महाराष्ट्र केसरी शिवाजी वृत्त पर आश्रित संस्कृत उपन्यास 'शिवराजविजय' की रचना से प्राप्त हुई। इसकी रचना इन्होंने 1898 ई० में की थी किन्तु इसका मुद्रण 1900 ई० में हुआ। इनकी एक संस्कृत कृति 'सामवत' नाटक है जो 1888 ई० में खड्गविलास प्रेस, पटना से प्रकाशित हुआ था। आधुनिक लेखक होने के कारण तथा सरकारी सेवा में रहने के कारण इनके जीवन से सम्बद्ध बहुत-सी बातें ज्ञात हैं। स्वयं व्यास जी ने 'बिहारी-विहार' की भूमिका में अपने पूर्वजों तथा अपने विषय में भी पर्याप्त सूचना दी है। इनके पूर्वज जयपुर के निवासी थे जो सपरिवार काशी आकर बस गये थे। शैक्षणिक वातावरण से पूर्ण परिवार में व्यास जी की प्रतिभा बालावस्था में प्रकट होने लगी। काशी राजकीय संस्कृत कालेज से आचार्य परीक्षा में उत्तीर्ण होकर इन्होंने बिहार के विभिन्न राजकीय विद्यालयों में शिक्षण कार्य किया। अन्तिम समय में एक-दो वर्षों के लिए वे पटना कालेज में भी अध्यापक थे। 15 नवम्बर 1900 ई० को इनका देहान्त हुआ।

शिवराजविजय का कथासार

शिवराजविजय की कथावस्तु तीन विरामों में संविभक्त है। प्रत्येक विराम में चार निश्वास हैं। अत्यन्त संक्षेप में इसका कथानक इस प्रकार है—

दक्षिण में यवनों के आधिपत्य तथा अत्याचारों से खिन्न वीर शिवाजी ने स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष प्रारम्भ किया। उस काल में दो-दो कोस पर आश्रम निर्मित थे, जो यवनों

(मुसलमानों) की गतिविधि का परिचय प्राप्त करते थे। शिवाजी की निरन्तर विजय से समुद्विग्न होकर बीजापुर के शासक ने उनसे संग्राम करने के लिये अफजलखान को प्रेषित किया। उस समय शिवाजी प्रताप दुर्ग में थे। अफजलखान ने भी वहीं भीमा नदी के तट पर अपना शिविर डाल दिया। बीजापुर के शासक सन्धि के बहाने वीर शिवाजी को जीवित पकड़ना चाहते थे; किन्तु उनकी इस गुप्त योजना का शिवाजी ने पता लगा लिया। एक यवन गुप्तचर बीजापुर से पत्र लेकर जा रहा था। रास्ते में उसने एक विप्रकन्या का अपहरण किया; किन्तु वह कन्या एक आश्रम के अध्यक्ष ब्रह्मचारीगुरु के शिष्यों अर्थात् गौरसिंह और श्यामसिंह द्वारा बचा ली गई और यवन गुप्तचर गौरसिंह द्वारा मारा गया। बीजापुर का गुप्त सन्देशपत्र उसके वस्त्रों में से अन्वेषण कर गौरसिंह ने प्राप्त किया।

उस पत्र द्वारा बीजापुर के गुप्त दुरभिसन्धि को जानकर शिवाजी ने स्वयं अफजल खान को छलने की योजना बनाई। बीजापुर के दरबार से सन्धिप्रस्ताव लेकर भेजे गये पण्डित गोपीनाथ द्वारा प्रताप दुर्ग की तलहटी में अफजल खान से मिलने का शिवाजी का प्रबन्ध किया गया। गौरसिंह भी गायक के वेष में अफजल खान के शिविर में जाकर निखिल वृत्तान्त का पता लगा लाया। शिवाजी ने अपनी सेना चारों ओर जंगलों में तथा अफजल खान के शिविर के आस-पास छिपा दी। प्रातःकाल अफजल खान शिवाजी से मिलने आया। शिवाजी अपने वस्त्रों के अन्दर कवच तथा हाथों में बघनखा पहनकर गये। परस्पर आलिङ्गन करने पर शिवाजी ने अफजल खान के कन्धों और गर्दन को फाड़कर भूमि पर उसे पटक दिया तथा उसकी सेना ने यवनों (मुसलमानों) की सेना को मारकर भगा दिया।

गौरसिंह द्वारा जिस विप्रकन्या की रक्षा की गई थी, उसके संरक्षक एक वृद्ध ब्राह्मण थे। उनके आने पर यह रहस्योद्घाटन हुआ कि वह कन्या गौरसिंह और श्यामसिंह की बहन सौवर्णी है तथा वृद्ध उनके पुरोहित देवशर्मा हैं। तदनन्तर ब्रह्मचारिगुरु के अनुरोध पर गौरसिंह ने निज-वृत्तान्त इस प्रकार सुनाया— वे उदयपुर के एक जागीरदार खड्गसिंह के पुत्र हैं। माता-पिता के परलोकगमन के बाद तीनों बहिन-भाई पुरोहित की संरक्षकता में रहने लगे। एक बार शिकार खेलने जाकर दोनों भाई लुटेरों द्वारा पकड़ लिये गये; किन्तु किसी युक्ति से वे घोड़ों पर चढ़कर भाग निकले और एक हनुमान् मन्दिर के अध्यक्ष की सहायता से महाराष्ट्र पहुँचे। वहाँ भीमा नदी के किनारे उनकी शिवाजी से भेंट हुई और वे इस आश्रम में रहने लगे।

शाइस्ता खाँ पूना पर अधिकार करके वहीं शिवाजी के महलों में रहने लगा था। शिवाजी का उससे युद्ध अनिवार्य हो गया। शिवाजी ने सिंहदुर्ग में अपना एक संदेश रघुवीर सिंह द्वारा तोरण दुर्ग के अध्यक्ष के पास प्रेषित किया। आँधी-पानी की उपेक्षा करता हुआ वह तोरण दुर्ग पहुँचकर दुर्गाध्यक्ष की आज्ञा से हनुमान् मन्दिर में ठहरा। इसी मन्दिर में देवशर्मा सौवर्णी को साथ लेकर रहने लगे थे। मन्दिर की वाटिका में गाना गाती हुई सौवर्णी को देखकर रघुवीर सिंह के हृदय में उसके प्रति अनुराग की भावना जागृत हुई। शिवाजी के आदेशानुसार रघुवीर सिंह शाइस्ता खाँ के साथ होने वाले युद्ध के भविष्य को पूछने के लिये देवशर्मा के पास गया। देवशर्मा ने सौवर्णी द्वारा उसे एक मोदक खिलाकर गले में एक माला पहनवाई और प्रातःकाल आकर रात्रि में देखे गये स्वप्न का वृत्तान्त सुनाने के लिये कहा। प्रातःकाल दुर्गाध्यक्ष से संदेश का उत्तर लेकर वह देवशर्मा के पास गया और 'यवनों के साथ युद्ध में विजय तथा आर्यों के साथ युद्ध में पराजय' यह भविष्य जानकर वाटिका में गया। वाटिका में उसकी सौवर्णी से पुनः भेंट हुई। तदनन्तर वह हनुमान जी का प्रसाद लेकर सिंहदुर्ग की ओर चल पड़ा।

एक बार शिवाजी पण्डित के वेष में माल्यश्रीक के साथ शाइस्ता खाँ के साथ पूना जाकर गुप्त रूप से वहाँ का निरीक्षण कर आये और सन्देह करने पर पीछा करने वाला चाँद खाँ शिवाजी के द्वारा मारा गया। शिवाजी ने यशवन्त सिंह को पूना से दूर रहने के लिये अनुरोध करके कुछ चुने हुये साथियों के साथ बारात के बहाने पूना में प्रवेश किया और शाइस्ता खाँ के निवास पर आक्रमण कर दिया। चाँद खाँ और शाइस्ता खाँ के पुत्र रघुवीर सिंह द्वारा मारे गये। शाइस्ता खाँ अपनी घायल उँगली के साथ खिड़की से कूदकर बाहर भाग गया। दूसरी ओर इसके पूर्व ही रघुवीर सिंह ने औरंगजेब की पुत्री रोजनआरा को गिरफ्तार कर लिया था।

एक समय ब्रह्मचारिगुरु ने गौरसिंह से अपना और अपने पुत्र वीरेन्द्र सिंह का पूर्ववृत्तान्त बतलाया। उधर रघुवीर सिंह की प्रेयसी सौवर्णी ने क्रूरसिंह द्वारा किये जाने वाले अपने अपमान की बात बतलाई। तभी संयोगवश क्रूरसिंह की नियुक्ति अन्यत्र हो गई और उसका कष्ट दूर हो गया।

इधर रोजनआरा अपना प्रेम शिवाजी से प्रकट कर रही थी; किन्तु उन्होंने कह दिया कि वे उसे पिता द्वारा दिये जाने पर ही स्वीकार कर सकते हैं। तभी जयसिंह ने सैन्य आक्रमण

कर दिया। शिवाजी ने उसके मन में हिन्दुत्व की भावना जाग्रत करने का प्रयास किया; परन्तु असफल रहने पर कुछ कारणों से उसने मुगलों की कुछ शर्तें मानकर सन्धि करने को विवश हुये। इसी सन्धि के अनुसार रोशनआरा और मुअज्जम को वापस कर दिया। तदनन्तर बीजापुर के एक किले पर आक्रमण करके रघुवीर सिंह की सहायता से शिवाजी ने विजय प्राप्त की और रहमत खाँ को जीवित पकड़ लिया; परन्तु रहमत खाँ और क्रूरसिंह द्वारा रघुवीर सिंह को राजद्रोही बतलाये जाने पर शिवाजी ने उसे निष्कासित कर दिया। बाद में ज्ञात हुआ कि राजद्रोही वास्तव में क्रूरसिंह ही था।

अपमानित रघुवीर सिंह राधास्वामी का वेष धारण कर शिवाजी का उपकार करता रहा और सौवर्णी के अपहरण करने की इच्छा वाले क्रूरसिंह का वध कर दिया। जयसिंह की सन्धि के अनुसार शिवाजी 1666 में औरंगजेब के राजदरबार दिल्ली में उपस्थित हुये। मार्ग में राधास्वामी (रघुवीर सिंह) के कई बार रोकने का प्रयास करने पर भी शिवाजी नहीं माने।

दरबार में उपस्थित होने के अनन्तर औरंगजेब ने शिवाजी को नजरबन्द करवा दिया और मकान के चारों ओर पहरा बैठा दिया; परन्तु स्वयं की योजना तथा रघुवीर सिंह के सहयोग से शिवाजी अपने साथियों के साथ भाग निकलने में सफल हो गये। तदनन्तर यह जानकर कि राधास्वामी ही रघुवीर सिंह हैं, शिवाजी ने क्षमायाचना की। इसके बाद रघुवीर सिंह भी शिवाजी के साथ वापस लौट जाता है। उसे मण्डलेश्वर पर प्रदान किया गया तथा सौवर्णी के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ। शिवाजी ने विवाह में सम्मिलित होकर आशीर्वाद प्रदान किया। उधर दूतों ने सूचना दी कि सन्धि में मुगलों को दिये गये सभी किले जीत लिये गये हैं।

बाद में शिवाजी सतारा नगरी को राजधानी बनाकर रहने लगे और धीरे-धीरे कुछ ही दिनों में सम्पूर्ण महाराष्ट्र पर शिवाजी का अधिकार हो गया तथा औरंगजेब द्वारा प्रेषित सेनापति मोहम्मद खाँ भगा दिया गया।

अम्बिकादत्त व्यास का काव्य वैशिष्ट्य

‘शिवराज विजय’ को स्वयं व्यास जी ने ऐतिहासिक उपन्यास कहा है क्योंकि ‘उपन्यास’ (novel) की पाश्चात्य विधा में यह ढला हुआ है। यह विधा व्यास जी को बंगला उपन्यासों से

प्राप्त हुई थी। 'गद्यकाव्यमीमांसा' नामक ग्रन्थ में इन्होंने लिखा है —

उपन्यासपदेनापि तदेव परिकथ्यते ।

यथा कादम्बरी यद्वा शिवराजजयो मम ।।

वैसे संस्कृत की प्राचीन व्यवस्था के अनुसार इसे 'आख्यायिका' कह सकते हैं। इसमें तीन विराम हैं, प्रत्येक विराम चार-चार निःश्वासों में विभक्त है। इसमें छत्रपति शिवाजी के चरित को कथानक के रूप में अपनाया गया है और बारह निःश्वासों में इस कथा को समाप्त किया है। कवि ने रोचकता बढ़ाने के लिए अपनी कल्पना से ब्रह्मचारिगुरु तथा उनके शिष्यों गौर सिंह और श्याम सिंह की घटनाओं को जोड़ा है। इससे यह संस्कृत भाषा में लिखित एक सुन्दर उपन्यास के रूप में प्रसिद्ध हुआ है। इसमें घटनाओं का संयोजन अत्यन्त गतिशील, आकर्षक एवं प्रभावशाली है। वर्णनों के होते हुए भी कथा का प्रवाह सतत् रूप से बना रहता है।

इसके मुख्य पात्र छत्रपति शिवाजी और मुगल सम्राट औरंगजेब हैं। उन दोनों के संघर्ष की घटनाएं ही इसमें वर्णित हैं। साथ में यशवन्त सिंह, अफजल खाँ, शाइस्ताखाँ आदि ऐतिहासिक पात्रों के अतिरिक्त गौर सिंह और श्याम सिंह भी अत्यन्त आकर्षक पात्र हैं। शिवाजी के जीवन की घटनाओं के साथ इन दोनों के कार्य भी गूँथे हुए हैं।

रस की दृष्टि से इस उपन्यास में वीर रस का प्राधान्य है परन्तु यथावसर करुण, अद्भुत, रौद्र और वीभत्स का परिपाक है।

भाषा—शैली—व्यास जी की शैली प्रसाद गुण युक्त है, उसमें सतत् प्रवाह और प्रौढ़ता है। दण्डी और बाण के समान उसमें कथा का प्रवाह और कल्पना की विशदता पाठकों को आकृष्ट किए रहती है। भाषा पर पूर्ण अधिकार होने के कारण ही शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का अत्यन्त स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। अनुप्रास अलंकार से ध्वनि का प्रभाव बढ़ता है तो उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों से भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का प्रदर्शन होता है। इसीलिए व्यास जी को 'अभिनव बाण' का विरुद दिया गया है।

इस प्रकार 'शिवराज विजय' अम्बिकादत्त व्यास की अपनी संस्कृति और सभ्यता के प्रति भक्ति तथा प्रेम को प्रदर्शित करता है। उसमें शिवाजी को भारतीय संस्कृति और राष्ट्र का संरक्षक दिखाया गया है। इतिहास प्रसिद्ध जीवन की घटनाओं को भी नया रूप दिया है।

व्यास की गद्यशैली पर बाण का प्रभाव है जिसमें विषय के अनुरूप गद्यशैली सघन या सामंजस्य करने वाली यह शैली 'पांचाली' कही गयी है। उदाहरण है— 'पारस्परिकविरोध—विशिथिलीकृत—स्नेहबन्धनेषु राजसु भामिनी भ्रूभंगभूरिभाव—प्रभावपराभूतवैभवेषु भटेषु ..., महामदो यवनः ससेनः प्राविशद् भारते वर्षे।' इसी प्रकार शिवाजी की प्रशस्ति कवि ने लिखी हैं — वीरतासीमन्तिनी सीमन्त सुन्दरसान्द्रसिन्दूर— दानदेदीप्यमानदोर्दण्डः। ऐसे स्थल शिवराजविजय में वे बहुत नहीं हैं। सरलता से समझ में आ जाते हैं। इस शैली का उद्देश्य अपने भावों को प्रभावपूर्ण बनाना है, व्यर्थ का आडम्बर दिखाना नहीं।

सामान्यतः व्यासजी की शैली सरलता की ओर ही प्रवृत्त है, यत्र—तत्र अनुप्रासों का सौन्दर्य आकर्षक है जैसे भारतवर्ष की तात्कालिक दशा का चित्रण किया गया है— 'क्वाधुना मन्दिरे जयजयध्वनिः? क्व सम्प्रति तीर्थे तीर्थे घण्टानादः? क्वाद्यापि मठे मठे वेदघोषः? अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते। धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते। पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते। भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भयर्ज्यन्ते।' यह सरलता क्रमशः आगे बढ़कर सजीव चित्र खींचती है— 'क्वचिदार्तनादाः, क्वचिद्रुधिरधाराः, क्वचिदग्निदाहः, क्वचिद् गृहनिपातः इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः।'

इस ग्रन्थ को पढ़ने से प्रतीत होता है कि व्यास जी महाकवि बाण से अधिक प्रभावित हैं। जैसे कादम्बरी में वैशम्पायन, कादम्बरी—चन्द्रापीड़ और महाश्वेता—पुण्डरीक की तीन कथाएँ एक साथ चलती हैं, परस्पर स्वतन्त्र होने पर भी कवि ने उन्हें आगे रचना कौशल से ऐसे मिला दिया है कि वह सम्पूर्ण कथा एक ही प्रतीत होती है। इसी प्रकार व्यास जी ने भी शिवाजी और रघुवीर सिंह की दो पृथक् कथाओं को इस प्रकार मिला दिया है कि उनकी कल्पना से न तो ऐतिहासिक घटनाक्रम में कोई विकृति आई है और न केवल घटनामात्र के वर्णन की नीरसता से काव्यत्व को कोई हानि पहुँची है।

'शिवराजविजय' में व्यासजी की चेतना प्राचीन—नवीन दोनों के संगम की है। देशभक्ति, इतिहास, स्वाधीनता तथा धर्मरक्षा की भावनाएँ इसमें समन्वित हैं। यवनों के अत्याचार और शिवाजी के न्यायपूर्ण कार्यों का सूर्योदय दोनों का यथार्थ निरूपण करने में कवि को सफलता मिली है। मुख्य रस तो वीर है, किन्तु अन्य रसों की भी उचित उद्भावना हुई है।

3.4 अपनी प्रगति जाँचिए

1. जातकमाला किसकी रचना है?
2. दण्डी की प्रसिद्ध गद्य रचना का नाम बताइए।
3. अवन्तीसुन्दरी कथा के लेखक का नाम क्या है?
4. जातकमाला का दूसरा नाम क्या है?
5. दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका में कितने उच्छ्वास हैं?
6. किस गद्यकार का पदलालित्य प्रसिद्ध है?
7. वासवदत्ता का रचनाकार कौन है?
8. कादम्बरी में कितने जन्मों की कथा वर्णित है?
9. हर्षचरितम् किस राजा के जीवन पर आधारित है?
10. शिवराजविजय का नायक कौन है?

3.5 सारांश

जिस गद्य का प्रयोग यजुर्वेद, ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों में हुआ था, उसका स्वतन्त्र ग्रन्थ आर्यशूर ने जातकमाला के रूप में प्रस्तुत किया। तदनन्तर दण्डी के पदलालित्य से युक्त सरल व भावपूर्ण गद्य ने सबको मन्त्रमुग्ध किया। सुबन्धु की रचना वासवदत्ता ने भी गद्यसाहित्य में अमिट छाप छोड़ी। सर्वश्रेष्ठ गद्यकार बाणभट्ट ने तो गद्यकाव्य को उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया। इनकी प्रथम रचना हर्षचरित प्रारम्भ में बाणभट्ट का ही विस्तृत परिचय देती है। तदनन्तर हर्षवर्धन के राजपरिवार के ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत करती है। तीन जन्मों की कथा पर आधारित कादम्बरी तो आज भी अद्वितीय है। कादम्बरी अत्यन्त रोचक, मनोरंजक, आदर्शमय तथा अल्प समासों के लिए अनुकरणीय ग्रन्थरत्न है। इन्हीं का अनुकरण करते हुए अम्बिकादत्त व्यास ने शिवराजविजय नामक ऐतिहासिक संस्कृत उपन्यास का प्रणयन किया। अंग्रेजों की पराधीनता के दौरान लिखे इस ग्रन्थ ने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

3.6 मुख्य शब्दावली

1. गद्य (गद् + यत्) – बोले जाने या उच्चारण किये जाने योग्य, छन्दविरहित रचना
2. जातक (जात + कन्) जन्मा हुआ या उत्पन्न
3. जातकमाला (जातकानां माला) महात्मा बुद्ध (बोधिसत्त्व) के अनेक जन्मों की कथा
4. पदलालित्यम् (पदानां लालित्यम्) पदों का आकर्षण या सौन्दर्य
5. लालित्यम् (ललित + ष्यञ्) प्रियता, लावण्य, सौन्दर्य, माधुर्य
6. कादम्बरी – बाणभट्ट द्वारा रचित गद्य रचना, सरस्वती की उपाधि, विद्या देवी, मादा कोयल
7. बोधिसत्त्वावदानमाला – अवदान का अर्थ है सुकर्म। बोधिसत्त्व के अवदानों की अर्थात् सुकर्मा की माला।

3.7 अपनी प्रगति जाँचिए के उत्तर

1. आर्यशूर की
2. दशकुमारचरित
3. दण्डी
4. बोधिसत्त्वावदानमाला
5. पाँच उच्छ्वास
6. दण्डी का
7. सुबन्धु
8. तीन जन्मों की
9. राजा हर्षवर्धन के जीवन पर
10. छत्रपति शिवाजी

3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. संस्कृत साहित्य में गद्यरचना के प्रारम्भ पर एक टिप्पणी लिखिए।
2. आर्यशूर रचित जातकमाला के विषय में विस्तार से बताइए।
3. दशकुमार चरित की कथावस्तु का वर्णन कीजिए।
4. 'दण्डिनः पदलालित्यम्' पर एक निबन्धात्मक टिप्पणी लिखिए।
5. सुबन्धु रचित वासवदत्ता का सार संक्षेप कीजिए।
6. बाणभट्ट की प्रथम रचना हर्षचरित पर एक टिप्पणी लिखिए।
7. बाणभट्ट कृत कादम्बरी की श्रेष्ठता प्रतिपादित कीजिए।
8. 'वाणी बाणो बभूव' पर एक निबन्धात्मक टिप्पणी लिखिए।
9. अम्बिकादत्त व्यास के गद्यकाव्य वैशिष्ट्य पर टिप्पणी लिखिए।
10. शिवराजविजय की कथावस्तु का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

3.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. दशकुमारचरितम् — दण्डी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
2. हर्षचरितम् — बाणभट्ट, व्याख्याकार जगन्नाथ पाठक, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
3. कादम्बरी — बाणभट्ट, व्याख्याकार आचार्य शेषराज शर्मा 'रेग्मी', चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
4. शिवराजविजय — अम्बिकादत्तव्यास, व्याख्याकार डॉ. रमाशंकर मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास — डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्बा भारती अकेडमी, वाराणसी।
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास — वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

अध्याय-4

कथा साहित्य (विष्णु शर्मा से सोमदेव तक)

- 4.1 अध्याय के उद्देश्य
- 4.2 परिचय
- 4.3 विष्णु शर्मा से सोमदेव तक का कथा साहित्य
- 4.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्न
- 4.5 सारांश
- 4.6 मुख्य शब्दावली
- 4.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर
- 4.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 4.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

4.1 अध्याय के उद्देश्य

- कथा साहित्य के दोनों भागों से (नीति कथा, लोककथा) से परिचित हो सकेंगे।
- विष्णुशर्माकृत पंचतन्त्र का उद्देश्य एवं सभी तत्त्वों की अवधारणा प्रस्तुत कर सकेंगे।
- पंचतन्त्र की भाषा शैली एवं प्रसिद्धि से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- नारायण पण्डित रचित हितोपदेश का तुलनात्मक अध्ययन कर पायेंगे।
- गुणाढ्यकृत बृहत्कथा का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- बुद्धस्वामी रचित बृहत्कथाश्लोकसंग्रह की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।
- क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथामंजरी की अवधारणा प्रस्तुत कर सकेंगे।
- सोमदेव रचित कथासरित्सागर के विषय में जान पाएंगे।
- वेतालपंचविशतिका का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर पाएंगे।

- सिंहासन द्वात्रिंशिका के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- शुकसप्तति का सार—संक्षेप प्रस्तुत कर सकेंगे।

4.2 परिचय

संस्कृत साहित्य में कथा ग्रन्थों का विशेष महत्त्व रहा है। संस्कृत साहित्य में कथाओं का अस्तित्व प्राचीन काल से मिलता है। वैदिक साहित्य में, रामायण, महाभारत और पुराणों में, बौद्ध और जैन साहित्य में पग-पग पर मनुष्यों, देवताओं, पशुओं तथा पक्षियों की कथाओं के दर्शन होते हैं। कथा साहित्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है — उपदेशात्मक कथा (नीति कथा) और लोक कथा। नीति कथा ग्रन्थों में विष्णु शर्मा रचित पंचतन्त्र सर्वप्रमुख स्थान रखता है। पंचतन्त्र का मुख्य उद्देश्य बालकों को नैतिक, धार्मिक एवं व्यवहारिक शिक्षा प्रदान करना है। इसके लिए रचनाकार ने कथारूप में पशु-पक्षियों को माध्यम बनाया है। इन कथाओं में दैनिक व्यवहार और करणीय-अकरणीय उपदेश बड़ी रोचक विधि से दिया गया है। इसमें मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरीक्षितकारक नामक पाँच तन्त्र हैं। इसमें मुख्यतः गद्य का ही प्रयोग किया गया है, परन्तु नीति के सामान्य नियमों और लोकप्रचलित मान्यताओं को प्रकट करने के लिए पद्यों का प्रयोग किया गया है। पंचतन्त्र की कथाएँ इतनी रोचक हैं कि इनका भारत से अन्य देशों में लगभग 50 भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और 250 से ज्यादा संस्करण निकल चुके हैं।

पंचतन्त्र के अतिरिक्त नीति कथाओं में सबसे अधिक प्रचलित और लोकप्रिय ग्रन्थ हितोपदेश है। इसकी रचना बंगाल के राजा धवलचन्द्र के आश्रय में रहने वाले नारायण पण्डित ने पंचतन्त्र की शैली पर की। हितोपदेश का गद्य पंचतन्त्र की अपेक्षा अधिक सरल तथा रोचक है, इसमें पद्यों का संग्रह भी अधिक है। इसकी भाषा शैली मौलिक, प्रांजल तथा परिष्कृत है। इसमें मित्रलाभ, सुहृद भेद, विग्रह और सन्धि नामक चार प्रकरण हैं।

लोककथाओं के मुख्य पात्र मनुष्य होते हैं। नीतिकथाओं के समान इनका उद्देश्य उपदेशात्मक नहीं होता। लोककथाओं में सबसे प्राचीन संग्रह गुणादय कवि की बृहत्कथा है।

यह संस्कृत भाषा में न होकर पैशाची प्राकृत में रचित है। इसका प्रभाव संस्कृत नाटकों, काव्यों तथा गद्यकाव्यों पर बहुत ज्यादा पड़ा है। नेपाल के रहने वाले बुद्धस्वामी ने बृहत्कथा का संस्कृत रूपान्तर बृहत्कथाश्लोकसंग्रह श्लोकबद्ध शैली में प्रस्तुत किया। अनुमान किया जाता है कि इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में 25,000 श्लोक और 100 सर्ग थे, परन्तु आजकल इसमें 28 सर्ग ही प्राप्त हैं और 4539 श्लोक हैं। कश्मीरी कवि क्षेमचन्द्र ने बृहत्कथामंजरी की रचना 18 लम्बकों में की तथा इसमें 7500 श्लोक हैं। यह संग्रह गुणाढ्य की मूल बृहत्कथा का प्रामाणिक संक्षिप्त रूप हो सकता है। इसके नवम लम्बक शशांकवती में 25 वेताल कथाएँ हैं जो पृथक् रूप से 'वेतालपंचविंशति' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

बृहत्कथा के संस्कृत रूपान्तरों में सबसे प्रसिद्ध सोमदेव का कथासरित्सागर है। सोमदेव ने समस्त कथाओं को 18 लम्बकों में विभक्त किया है। प्रत्येक लम्बक का पुनः 124 तरंगों में विभाजन है। इसमें 24,000 श्लोक हैं, जिससे इसका कलेवर बृहत्कथा मंजरी से तिगुना हो गया है। इनके साथ-साथ सिंहासन द्वात्रिंशिका और शुकसप्तति में भी रोचक कथाओं का संग्रह है।

4.3. कथा साहित्य (विष्णु शर्मा से सोमदेव तक)

संस्कृत साहित्य में कथाओं का विशेष महत्त्व रहा है। मनुष्य ने जब से भाषा का आविष्कार करके अपने भावों को दूसरों के प्रति अभिव्यक्त करना प्रारम्भ किया तभी से कुछ आपबीती, कुछ आप देखी घटनाओं को अपने दूसरे साथियों को रोचक रूप में सुनाने की प्रवृत्ति रही होगी। कभी-कभी अपनी कल्पना से भी उसने घटनाओं का प्रणयन किया होगा, तभी से कथा का प्रारम्भ सीधे-सीधे मनोरंजक रूप में हो गया होगा। संस्कृत साहित्य में कथाओं का अस्तित्व प्राचीन काल से मिलता है। वैदिक साहित्य में, रामायण, महाभारत और पुराणों में, बौद्ध और जैन साहित्य में पग-पग पर मनुष्यों, देवताओं, पशुओं तथा पक्षियों की कथाओं के दर्शन होते हैं।

वैदिकयुगकालीन भारतीय समाज के जीवन में विभिन्न प्रकार की कथाएँ लोगों में प्रचलित थीं। ऋग्वेद में देवताओं की कुतिया सरमा एवं वणिकों का संवाद प्राप्त होता है, जिनमें सरमा नामक कुतिया वणिकों को उपदेश देती है कि धन का दान करें। ऋग्वैदिक

काल से ही हमें पशु-पक्षियों के साथ अन्तरंगता का बीज दृष्टिगत होता है तथा यही संस्कृत कथा साहित्य का मूल है। इन कथाओं का विस्तार हमें ब्राह्मण ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है। उपनिषदों में छान्दोग्य उपनिषद् में बैल, हंस तथा मद्गु नामक एक जलचर पक्षी द्वारा जाबालपुत्र सत्यकाम को ब्रह्मविद्या का उपदेश प्रदान किया गया है। यही पंचतन्त्र की पशु-पक्षी कथाओं का मूल बीज है।

पशु-पक्षी कथाओं का अत्यन्त विकसित स्वरूप हमें महाभारत में प्राप्त होता है। महाभारत में श्वान कथा, हस्ति कछुआ कथा, मनु-मत्स्य कथा तथा अन्य नीति कथाएँ विद्यमान हैं, जिन्हें पशु कथाओं के प्रारम्भिक काल का स्रोत मान सकते हैं। महाभारत में ही चालाक एवं धूर्त बिल्ली की कथा आती है, जिसकी धार्मिकता के आवरण से प्रवंचित मूषकों ने स्वयं को उसके सामने समर्पित कर दिया था। बौद्धों की जातक कथाओं में भी बोधिसत्त्व के मृग, वानर, मत्स्य इत्यादि जन्मों की कथाएँ हैं।

साहित्य की एक स्वतन्त्र विधा के रूप में कथा साहित्य का प्रारम्भ सम्भवतः कुछ बाद में हुआ, परन्तु अभी तक यह निर्णय नहीं हो सका है कि कथाओं का स्वतन्त्र अस्तित्व कब से प्रारम्भ हुआ। कुछ भी हो, उपलब्ध कथा साहित्य को दो भागों में बांटा जा सकता है —

1. उपदेशात्मक अथवा नीति कथा
2. लोक कथा

1. उपदेशात्मक अथवा नीति कथा ग्रन्थ

कथाओं के रोचक और सरल माध्यम से सामान्य बुद्धि के व्यक्तियों को अथवा बालकों को धर्म और नीति की बातों को समझा देने की प्रथा भारत में अति प्राचीन है। इनमें प्रायः मनुष्य की बजाय पशु और पक्षी मुख्य पात्र होते हैं, जिससे श्रोता अथवा पाठक के मन में कौतूहल बना रहता है। इन कथा ग्रन्थों में विष्णु शर्मा द्वारा रचित पंचतन्त्र सर्वप्रमुख स्थान रखता है।

पंचतंत्र

पंचतंत्र के रचनाकार सभी शास्त्रों में निष्णात पण्डित विष्णु शर्मा हैं। अनेक विद्वान् चाणक्य एवं विष्णु शर्मा को एक ही व्यक्ति मानते हुए पंचतंत्र को चाणक्य की ही रचना स्वीकार करते हैं। वास्तव में नीति संबंधी जो गंभीर बातें इस ग्रन्थ में दी गई हैं, उनसे मालूम पड़ता है कि चाणक्य के समान कूटनीतिज्ञ एवं नीतिशास्त्र का उद्भट विद्वान् ही इस प्रकार के ग्रन्थ की रचना कर सकता है।

पाश्चात्य विद्वानों में कीथ महोदय पंचतन्त्र का समय 200 ई.पू. या बाद में स्वीकार करते हैं। प्रो. हर्टेल महाशय भी इसका समय लगभग ई.पू. के बाद को ही स्वीकार करते हैं। अगर पंचतंत्र के रचनाकार के रूप में चाणक्य को स्वीकार कर लिया जाए तो इनका समय 345 से 300 ई.पू. अर्थात् मगध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल का समय निर्धारित होगा। जैसा कि इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में विष्णु शर्मा को 80 वर्ष का वृद्ध व्यक्ति माना गया है, अतः इस ग्रन्थ की रचना चाणक्य ने अन्तिम अवस्था में की होगी। इससे प्रमाणित होता है कि गुणादय के समय तक पंचतन्त्र की प्रसिद्धि हो चुकी है। इसलिए इसका समय 300 ई.पू. मानना उचित प्रतीत होता है।

पंचतन्त्र का उद्देश्य

पंचतंत्र का मुख्य उद्देश्य बालकों को नैतिक, धार्मिक एवं व्यवहारिक शिक्षा प्रदान करना है। इसके लिए रचनाकार ने कथा रूप में पशुपक्षियों को माध्यम बनाया है। इन कथाओं में दैनिक वाग्व्यवहार, करणीय—अकरणीय उपदेश, कर्तव्य पालन, मित्र रक्षा, वचन पालन इत्यादि गुणों का वर्णन है तथा छल—कपट, अहंकार, अन्तःपुर के छलपूर्ण व्यवहार एवं स्त्रियों की चरित्रहीनता आदि दोषों का भी वर्णन है।

इस ग्रन्थ की रचना गद्यात्मक तथा पद्यात्मक की गई है। इसमें नैतिक एवं उपदेशात्मक शिक्षा का वर्णन पद्यों में किया गया है तथा कथा भाग का वर्णन गद्य में किया गया है। कहीं—कहीं पद्य में भी कथा का समावेश हुआ है। जिस प्रकार यह ग्रन्थ सुन्दर—सुन्दर कथाओं एवं विस्मयकारी उपाख्यानों में बालकों के मन को आकर्षित करता है, वैसे ही धुरन्धर विद्वानों

तथा प्रकाण्ड राजनीतिज्ञों को भी अपनी उलझी हुई समस्याओं को सुलझाने में एवं राजनीति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों के विवेचन करने में अनुपम सहायता देकर तुल्य रूप से उपकृत करता है।

पंचतन्त्र का संक्षिप्त कथासार

पंचतन्त्र पाँच तन्त्रों में निबद्ध ग्रन्थ है। ये तन्त्र इस प्रकार हैं — 1. मित्रभेद, 2. मित्र सम्प्राप्ति, 3. काकोलूकीय, 4. लब्धप्रणाश और 5. अपरीक्षितकारक।

इन पाँच तन्त्रों का संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है —

कथामुख — मित्रभेद की प्रधान कथा से पूर्व — शास्त्रज्ञानशून्य, विवेकहीन एवं दुर्यसनों से युक्त अपने मूर्ख पुत्रों से दुःखी राजा अमरशक्ति की कथा है। वह उन्हें पं. विष्णु शर्मा को उनकी इस प्रतिज्ञा पर सौंप देते हैं कि वह उन्हें छः मास में राजनीति एवं नीतिशास्त्र में पारंगत बना देंगे।

प्रथम तन्त्र मित्रभेद

इस तन्त्र में एक मुख्य कथा तथा इस कथा के अन्तर्गत 23 उपकथाएँ हैं। मुख्य कथा के अन्तर्गत — पिंगलक नामक वन का राजा सिंह आपत्तिकाल में अपने मालिक द्वारा परित्यक्त संजीवक नामक बैल को संरक्षण प्रदान करता है और अपने विश्वासपात्र मन्त्रियों करकट एवं दमनक नामक सियारों की इच्छा के विरुद्ध उस बैल को अपना प्रिय मित्र बना लेता है। बाद में दोनों सियार मन्त्रियों द्वारा छल-प्रपंच से भरे अनेक उपाख्यानो से सिंह का उस बैल पर अविश्वास करा दिया जाता है अर्थात् दोनों मित्रों में भेद उपस्थित कर दिया जाता है। तत्पश्चात् सिंह द्वारा उस बैल की हत्या करवा दी जाती है। सिंह जब अपने रक्तरंजित दोनों पंजों को देखता है तो उसे पश्चात्ताप होता है, किन्तु दमनक शृंगाल अनेक युक्तियों द्वारा सिंह को सांत्वना देता है और उसके प्रधानमन्त्री पद पर बना रहता है। मित्रों के मध्य भेद उपस्थित कर देना ही इस तन्त्र का उद्देश्य है। साथ ही इस तन्त्र में पशु-पक्षियों की अनेक मनोहारी, नीतिप्रद एवं हृदयाह्लादक कथाएँ विद्यमान हैं।

द्वितीय तन्त्र मित्र सम्प्राप्ति

इस तन्त्र में एक मुख्य कथा सात उपकथाएँ हैं। मुख्य कथा का सार इस प्रकार है —

चित्रग्रीव नामक कबूतरों का राजा शिकारी के जाल में फँसे दल के अन्य कबूतरों को उस जाल के साथ उड़ने को कहता है तथा अपने प्रिय मित्र हिरण्यक नामक चूहे के घर जाकर उससे कबूतरों के बन्धन कटवाता है, लेकिन जब हिरण्यक पहले चित्रग्रीव का बन्धन काटने को तैयार हुआ तो चित्रग्रीव ने उससे कहा — हे मित्र! पहले मेरे अनुचरों का बन्धन काटो, तत्पश्चात् मेरा बन्धन काटना।

चूहे के द्वारा कबूतरों के बन्धनमुक्त हो जाने पर लघुपतनक नामक कौआ, चूहे एवं उसके पुराने मित्र मन्थरक नामक कछुवे के साथ मित्रता होती है। हिरण्यक चूहा उसे अपना पहला घर छोड़ने का कारण बतलाता है। जो इस प्रकार है— एक ताम्रचूड़ नामक संन्यासी द्वारा मांगकर लाई हुई भिक्षा वह खा जाया करता था। संन्यासी का एक मित्र उससे कहता है कि चूहे के इस बल का निश्चित रूप से कोई कारण होगा। तब संन्यासी चूहे के बल का कारण ढूँढना प्रारम्भ करता है। फलस्वरूप चूहे के घर में बल का कारण संचित स्वर्ण—भण्डार के रूप में प्राप्त होता है। संन्यासी द्वारा स्वर्णभण्डार को हटा दिये जाने पर चूहा दुर्बल हो जाता है तथा अपने सेवकों का भरण—पोषण करने में अक्षम हो जाने के कारण सेवकों द्वारा परित्यक्त हो जाता है।

आगे चलकर चित्रांग नामक मृग के रूप में चूहे का एक चौथा मित्र बन जाता है। एक दिन विचरण करते हुए वह मृग एक जाल में फँस जाता है। उसके बाद मुक्त होने की लम्बी प्रतीक्षा करता हुआ वह अपने मित्रों (कबूतर, चूहा, कौआ और कछुवा) द्वारा येन केन प्रकारेण बन्धनमुक्त हो जाता है। लेकिन उसी समय शिकारी के आ जाने पर कछुआ डर जाता है तथा बहाने से मृग मृतक के रूप में पड़ जाता है। बाद में मृग चालाकी से छल द्वारा कछुए को भी छुड़ा लेता है।

इस तन्त्र में कबूतर, चूहा, कछुआ और हिरण ने परस्पर एक दूसरे को मित्र बनाकर स्वयं पर आयी हुई विपत्तियों से एक—दूसरे की सहायता कर छुटकारा पाया। अतः इस तन्त्र

का मित्र सम्प्राप्ति नाम उचित ही है। अन्त में मित्र का माहात्म्य बतलाकर तन्त्र समाप्त होता है।

तृतीय तन्त्र काकोलूकीय

इस तन्त्र में एक मुख्य कथा तथा 17 उपकथाएँ हैं। इसमें विग्रह (युद्ध) तथा सन्धि का वर्णन है। इसमें मुख्य कथा के अन्तर्गत कौवों के राजा मेघवर्ण एवं उल्लूओं के राजा अरिमर्दन की कथा है। एक वटवृक्ष पर कौवों का राजा मेघवर्ण अपने दल के साथ निवास करता था। पास में पहाड़ी की गुफा में उल्लूओं का राजा अरिमर्दन अपने दल के साथ निवास करता था। प्रतिदिन रात्रि के समय दिवान्ध उल्लूकराज वटवृक्ष के चारों ओर चक्कर लगाकर किसी न किसी कौवे को चोंच मारकर मार डालता था।

उल्लूओं के आक्रमण से त्रस्त एवं परेशान मेघवर्ण अपने मन्त्रियों से विचार-विमर्श करता है और पूछता है कि ये उल्लू हमसे अकारण वैर क्यों पाले हुए हैं? तथा इसके प्रतिकार स्वरूप हमें साम-दाम आदि उपायों में से कौन सा उपाय करना चाहिए? तब स्थिरजीवी नामक कौवा मन्त्री बतलाता है कि किस प्रकार पूर्व काल में पक्षियों का राजा चुनने के अवसर पर जब सर्वसम्मति से उल्लू को राजा बनने का प्रस्ताव रखा गया तो एक कौआ उल्लू को भयावह बतलाकर उसके राजा चुने जाने के विरुद्ध आपत्ति करता है तथा पक्षियों को अपने पक्ष में कर उल्लू का राज्याभिषेक रुकवा देता है। तब उल्लू कौओं से बदला लेने की प्रतिज्ञा करता है और तभी से हमारे साथ उल्लूओं का वंश परम्परागत वैर हो जाता है।

उसके बाद कौवा मन्त्री उल्लूओं के सम्मुख एक शरणागत के रूप में उपस्थित होने की युक्ति बतलाता है। जब राजा मेघवर्ण की इस कार्य के लिए सहमति मिल गई तब स्थिरजीवी कौआ मन्त्री मेघवर्ण के साथ बनावटी लड़ाई लड़कर स्वयं को रक्तरंजित करवाकर और अपने राजा एवं दल के अन्य कौओं के उस आश्रयस्थल को छोड़कर उसके बताए हुए अन्य युक्ति एवं बुद्धिपूर्वक उन उल्लूओं का विश्वास प्राप्त कर वहाँ रहने लगा। तत्पश्चात् गुफा में अपना घोंसला बनाने के बहाने से वहाँ घास-फूस-तिनकों का ढेर लगाकर और अवसर पाकर उसमें आग लगाकर उल्लू-शत्रुओं का घर समेत नाश कर दिया। कौवा राजा भी अपने मन्त्री को

अनेक पुरस्कार देकर निश्चिन्त होकर रहने लगा। अनेक नीतिप्रद श्लोकों के पश्चात् यह तन्त्र समाप्त हो जाता है।

चतुर्थ तन्त्र लब्धप्रणाश

इसमें एक मुख्य कथा तथा 11 उपकथाएं हैं। लब्ध प्रणाश में मुख्य कथा के रूप में करालमुख नामक मगर एवं रक्तमुख नामक वानर की कथा है। बन्दर प्रतिदिन मगर को जम्बूफल देता था। वह मगर भी उन्हें खाकर बन्दर के साथ देर तक वार्तालाप का आनन्द उठाकर बचे हुए जम्बूफलों को घर जाकर अपनी स्त्री को देता था। दोनों की इतनी प्रगाढ़ मैत्री देखकर मगर की पत्नी ने एक दिन उससे कहा कि हे नाथ! जो सदैव इस प्रकार अमृत के तुल्य फल खाता है, उसका हृदय भी अमृत के समान होगा। अतः यदि तुम मुझे अपनी पत्नी समझते हो तो उस वानर का हृदय लाकर मुझे दो, जिससे मैं उसे खाकर जरा-मरण से रहित होकर तुम्हारे साथ भोगों का उपभोग कर सकूँ।

मगर ने उससे कहा कि हे प्रिये! मैंने उसे अपना भाई मान लिया है और दूसरी बात यह है कि वह मुझे फल देकर मेरा उपकार ही करता है। अतः मैं उसे मार नहीं सकता। लेकिन उसकी पत्नी ने एक बात भी नहीं सुनी और स्त्रीहठ करके आत्महत्या की धमकी भी दे दी। विवश एवं दुखी होकर मगर ने वानर के पास आकर अनेक नीतिवचनों से अपने घर आने के लिए उसको फुसलाया। वानर भी उसके साथ चलने के लिए तैयार हो गया और उसकी पीठ पर बैठ गया, किन्तु बीच समुद्र में ही वानर को मगर की योजना ज्ञात हो गई। तब वानर ने मगर से कहा कि मैं तो सदैव अपने हृदय को जम्बू वृक्ष के कोटर में सुरक्षित रखता हूँ। मगर ने भी आनन्दित होकर वानर को वापस जम्बूवृक्ष के पास पहुँचा दिया।

वहाँ पहुँचकर वानर एक लम्बी छलांग लगाकर जम्बूवृक्ष पर चढ़ गया और सोचने लगा कि चलो भाग्यवश प्राण तो बच गए। मगर भी उससे पुनः हृदय की मांग करता है लेकिन वानर ने हँसकर उसकी भर्त्सना करते हुए कहा – मूर्ख, विश्वासघातिन्! तुझे धिक्कार है। क्या किसी के दो हृदय हुआ करते हैं? इस पेड़ के नीचे से चले जाओ। यहाँ फिर कभी मत आना। मगर उससे पुनः मित्रता करना चाहता है, लेकिन वानर ने भी उसे अनेक उपाख्यानों एवं

नीतिवचनों को सुनाकर फटकारा और धिक्कारा। अन्त में पुरुषार्थजन्य लक्ष्मी का माहात्म्य बतलाकर तन्त्र समाप्त हो जाता है।

पंचम तन्त्र—अपरीक्षितकारक

इस पाँचवें एवं अन्तिम तन्त्र के अन्तर्गत एक मुख्य कथा तथा 14 उपकथाएं हैं। इसमें मुख्य रूप से भली-भाँति विचारपूर्वक सुपरीक्षित कार्य करने की नीति पर बल दिया गया है। बिना सम्यक् प्रकार से विचार किये एवं बिना भली-भाँति देखे या सुने गए किसी कार्य को करने वाले मनुष्य को उस कार्य में सफलता तो प्राप्त नहीं होती, अपितु जीवन में अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मुख्य कथा का सार इस प्रकार है —

अपनी दरिद्रता से दुःखी एवं चिन्तातुर मणिभद्र नामक एक वणिक् को रात्रि में स्वप्न में उसके पास आने वाले जैन संन्यासी को मारने का आदेश होता है। जो इस आश्चर्यजनक रूप में उसके पूर्वजों द्वारा संचित धन ही है तथा मारे जाने पर वह स्वर्णराशि के रूप में हो जाएगा। दूसरे दिन मणिभद्र की स्त्री ने अपने पैरों में महावर आदि लगाने के लिए किसी नाई को बुलाया। उसी समय स्वप्न में दिखायी पड़ने वाला जैन संन्यासी वहाँ तत्काल प्रकट हो गया। मणिभद्र ने भी हर्षित मन से समीप में ही रखे हुए डंडे से उसके सिर पर प्रहार कर दिया। वह जैन संन्यासी भी उसी समय स्वर्णराशि होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह नाई भी घर जाकर मूर्खतापूर्वक जैन संन्यासियों को मारने की युक्ति की पुनरावृत्ति करता है। परिणामस्वरूप उसके द्वारा मार डाले गए जैन साधु स्वर्णराशि तो नहीं बन सके, उसके विपरीत वह क्रुद्ध न्यायाधीश द्वारा मृत्युदण्ड प्राप्त करता है। उसके बाद इस तन्त्र में अनेक नीतिप्रद एवं व्यावहारिक उपाख्यान दिये गए हैं। अन्त में अन्तिम श्लोक द्वारा मानव मात्र के लिए शिक्षा दी गई है —

मन्त्रे तीर्थ द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ ।

यादृशी भावनायास्य, सिद्धिर्भवति तादृशी ।।

अर्थात् मन्त्र की साधना में, तीर्थयात्रा एवं तीर्थस्थान में, ब्राह्मणों में, देवताओं के संबंध में, ज्योतिषियों में, औषधियों में तथा गुरु में जिस मनुष्य की जैसी भावना होती है, उसके अनुसार ही उसको फल भी मिलता है।

पंचतन्त्र की भाषा शैली

पंचतन्त्र में आई हुई कथाएँ अधिकतर क्षेमेन्द्र की बृहत्कथा मंजरी और सोमदेव के कथा सरित्सागर में तथा महाभारत में उपलब्ध होती हैं। अतः इन कथाओं की मौलिकता और रोचकता इनको प्रस्तुत करने तथा वर्णन करने में ही है। इनमें मुख्यतः गद्य का ही प्रयोग किया गया है, परन्तु नीति के सामान्य नियमों और लोकप्रचलित मान्यताओं को प्रकट करने के लिए पद्यों का प्रयोग किया गया है। इसका गद्य सरल, मुहावरेदार तथा विषय के अनुरूप है। इसके वाक्य छोटे छोटे हैं, किन्तु सारगर्भित हैं। समासों का प्रयोग सामान्यतया नहीं है। दण्डी के गद्य में पदलालित्य तथा प्रवाह है, परन्तु पंचतन्त्र अनेक व्यक्तियों के माध्यम से हमें प्राप्त हुआ है। अतः उसके असली गद्य का स्वरूप क्या था, नहीं कहा जा सकता। जो भी उपलब्ध है उसमें प्रवाह, प्रभावोत्पादकता, रोचकता और सरलता होते हुए भी दण्डी का सा पदलालित्य नहीं है। इसका पद्य भाग मौलिक नहीं है। रामायण, महाभारत और अन्य नीति ग्रन्थों से कथा प्रसंग में उपयुक्त लगने वाले श्लोकों का संग्रह अत्यन्त निपुणता से किया गया है। कथाओं का स्वरूप केवल वर्णनात्मक न होकर संवादात्मक अधिक है। पशु-पक्षियों के परस्पर वार्तालाप उनके जीवन की घटनाओं के माध्यम से व्यवहार कुशलता, सदाचार एवं राजनीति की गम्भीर समस्याओं को सुलझाते चले जाते हैं।

पंचतन्त्र का अनुवाद

पंचतन्त्र की कथाएँ इतनी रोचक हैं कि इनका भारत से अन्य देशों में लगभग 50 भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और 250 से ज्यादा संस्करण निकल चुके हैं। भारत की भी प्रत्येक प्रादेशिक भाषा में इसका अनुवाद मिल जाता है। अरब देश के यात्री अल्बेरूनी (1030 ई.) में अपने यात्रा विवरण में पंचतन्त्र के एक हिन्दी अनुवाद का जिक्र किया है। इसका 11वीं

शताब्दी में हिब्रु भाषा में, 13वीं शताब्दी में लैटिन भाषा में और 16वीं शताब्दी में आंग्ल भाषा में अनुवाद हुआ। इस प्रकार इसका अनुवाद यूरोप की तथा एशिया की सभी मुख्य भाषाओं में हुआ जो इसकी लोकप्रियता को प्रकट करता है। अरब देश के 'अरेबियन नाइट्स' और यूनान की 'ईसप की कहानियाँ' का आधार स्पष्टतः पंचतन्त्र की कहानियाँ ही हैं।

भारत में पंचतन्त्र का प्राचीनतम रूप 'तन्त्राख्यायिका' को माना गया है। इसकी एक प्रति कश्मीर में शारदा लिपि में उपलब्ध हुई है। हर्टल और एजर्टन ने इसको ही मूल पंचतन्त्र का आधार माना है। इसमें 499 ई.पू. में पूर्णभद्र नामक जैन पंडित ने पंचाख्यान के रूप में इसका संशोधन एवं परिवर्धन किया तथा लिखा है —

प्रत्यक्षरं प्रतिपदं प्रतिवाक्यं प्रतिकथं प्रतिश्लोकम्।

श्री पूर्णभद्रसूरिर्विशोधयामास शास्त्रमिदम्।।

इसके अतिरिक्त पंचतन्त्र का दक्षिणी संस्करण भी पाँच विविध रूपों में मिला है। इसमें मूल अंश अधिक माना जाता है। इसी प्रकार नेपाल से प्राप्त संस्करण भी हैं। वर्तमान समाज में अधिकतर उत्तरी भारत में पूर्णभद्र वाला संस्करण चलता है।

पंचतन्त्र की वाचनाएं या पुनरावर्तन

पंचतन्त्र की आठ उपलब्ध वाचनाएँ (recensions) इस प्रकार हैं —

(क) **तन्त्राख्यायिका**— यह पंचतन्त्र के बहुत निकट है। डॉ० हर्टल ने इसका संस्करण 1910 में प्रकाशित किया था जिसमें इसे पंचतन्त्र की प्राचीनतम उपलब्ध वाचना कहा गया है। राजनीति की शिक्षा के लिए इसकी रचना हुई थी, अतः इसमें राजशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों से गद्य-पद्य के लम्बे उद्धरण मिलते हैं। इसका निर्माण 300 ई० के आसपास माना गया है। इस वाचना की दो प्रतियाँ कश्मीर से शारदालिपि में प्राप्त हुई थीं। यह अन्यवाचनाओं का आधार थी, ऐसा हर्टल ने माना है। फिर भी मूल पंचतन्त्र का इसे भी परिबृंहित संस्करण ही कहना चाहिए।

(ख) सरलपंचतन्त्र— इसका सम्पादन तथा निर्माण किसी जैन विद्वान् ने किया था (1100 ई०)। यही पंचतन्त्र इस समय मूल ग्रन्थ के रूप में सर्वाधिक प्रचलित है। ब्यूलर तथा कीलहार्न ने इसका परिष्कृत सम्पादन करके प्रकाशित किया था।

(ग) पूर्णभद्र का पंचतन्त्र— इसे 'पंचाख्यानक' भी कहते हैं। पूर्णभद्र नामक जैन साधु ने 1199 ई० में इस ग्रन्थ की रचना की थी। पूर्णभद्र ने इस ग्रन्थ के सम्पादन में बहुत परिश्रम किया था। इसे शुद्धतम संस्करण बनाने का उन्होंने यथासंभव प्रयत्न किया था। पूर्व वाचना से अधिक परिष्कृत होने के कारण इसे अलंकृत वाचना कहा गया है। लेखक ने कुछ अतिरिक्त कथाएँ भी इसमें जोड़ी हैं। इस वाचनिका का एक नया संस्करण, कहानियों को चुनकर, जैन साधु मेघविजय ने (1660 ई०) बनाया जिसे 'पंचाख्यानोदार' कहते हैं।

(घ) दक्षिणभारतीय पंचतन्त्र— इसमें दक्षिणात्य पाठ है। कथाएँ तमिल स्रोतों से भी ली गई हैं। यह पाँच संस्करणों में उपलब्ध है जिनमें मूलग्रन्थ से कथाओं की बहुत अधिक वृद्धि की गई है। यह पंचतन्त्र के सभी पाठों से बड़ा है। एजर्टन के अनुसार इस वाचनिका में मूल ग्रन्थ का तीन-चौथाई गद्यभाग और दो-तिहाई पद्यभाग सुरक्षित है।

(ङ) नेपाली पंचतन्त्र— इसके तीन संस्करण हस्तलेखों में मिले हैं— केवल पद्यात्मक, गद्य-पद्यात्मक (ये दोनों संस्करण संस्कृत में ही हैं) तथा नेपाली भाषा में कहानियों के साथ संस्कृत पद्य का संस्करण। यह वाचनिका प्रायः 14वीं शताब्दी में प्रचलित हुई। इसकी पाण्डुलिपि 1484 ई० की मिली है।

(च) हितोपदेश— पंचतन्त्र का यह बहुत लोकप्रिय संक्षिप्त संस्करण है, जिसे बंगाल में धवलचन्द्र के आश्रित कवि नारायण ने लिखा था। यह केवल चार भागों में विभक्त है। पंचतन्त्र के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रन्थ से भी इसकी रचना में लेखक ने सहायता ली थी, क्योंकि इसकी 17 कथाएँ किसी अन्य संस्करणों में नहीं मिलती। इसका विशेष विवरण आगे दिया जाएगा।

(छ) उत्तरपश्चिमी पंचतन्त्र— पंचतन्त्र की इस वाचनिका की आवृत्ति गुणाढ्य ने 'बृहत्कथा' में की थी। यह अब क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथामंजरी' (1037 ई०) तथा सोमदेव के 'कथासरित्सागर' (1070 ई०) में समाविष्ट है। बृहत्कथा में सन्निविष्ट होने पर पंचतन्त्र के मूल उद्देश्य (नीतिकथा

की प्रस्तुति) को छोड़कर विशुद्ध मनोरंजन का लक्ष्य रखा गया। नरवाहनदत्त को शिक्षा देने के लिए गोमुख इन कथाओं को सुनाता है और कहीं कहीं नैतिक उपदेश भी देता है जैसे— पशुओं में भी शारीरिक बल से बुद्धिबल की प्रमुखता दिखाना।

(ज) पहलवी संस्करण— अभी तक ज्ञात साधनों से यही पता लगता है कि विदेशी भाषाओं में पंचतन्त्र का पहला रूपान्तर पहलवी भाषा में ही हुआ था। खुसरो अनोशेरवाँ (531-79 ई०) के शासनकाल में हकीम बुर्जोई ने इसका पहलवी-रूपान्तर किया था। यह अनुवाद अब नष्ट हो चुका है, किन्तु इसी के अनुवाद सीरियाई और अरबी भाषाओं में हुए थे। अरबी अनुवाद ही यूरोपीय भाषाओं में रूपान्तरित हुआ था एवं पंचतन्त्र की कथाएँ दूसरे देशों में पहुँची।

पंचतन्त्र का महत्त्व

पंचतन्त्र के इन विविध संस्करणों तथा इसके प्राचीनतम रूपान्तर से विदित होता है कि इसमें पहले 12 खण्ड रहे होंगे, किन्तु जब पाँच खण्डों में इसे सीमित किया गया तब इसे 'पंचतन्त्र' कहा जाने लगा। वर्तमान पंचतन्त्र में पाँच खण्ड या तन्त्र हैं — मित्रभेद (22 कथाएँ) मित्र संप्राप्ति (6 कथाएँ), काकोलूकीय (16 कथाएँ), लब्धप्रणाश (11 कथाएँ) तथा अपरीक्षितकारक (14 कथाएँ) मुख्यकथाओं (6) को जोड़ने से इसमें कुल 75 कथाएँ होती हैं। इसी प्रकार पद्यों की संख्या प्रायः 1100 है। प्रत्येक तन्त्र में मुख्य कथा को अवान्तर कथाओं से सजाया गया। ग्रन्थारम्भ में विष्णुशर्मा के द्वारा महिलारोप्य नगर के राजा अमरशक्ति के तीन पुत्रों को शास्त्रों में कुशल बनाने के लिए उपक्रम किये जाने की कथा है। (पंचतन्त्राणि रचयित्वा पाठितास्ते राजपुत्राः।) कथामुख के अन्त में इस ग्रन्थ का फल बताया गया है —

अधीते य इदं नित्यं नीतिशास्त्रं शृणोति च।

न पराभवमाप्नोति शक्रादपि कदाचन ॥ (श्लो. 7,103)

पंचतन्त्र का मुख्य भाग गद्यात्मक है, कथाएँ गद्य में ही कही गई हैं किन्तु कहीं-कहीं निष्कर्ष रूप पद्य भी हैं। पद्यों में अधिकांशतः सूक्तियाँ हैं जो पढ़ने वालों को, कण्ठाग्र कर लेने पर नीतिशास्त्र में प्रवीणता प्रदान करती हैं। वस्तुतः कथाएँ तो व्याजमात्र हैं, मुख्यरूप से इन पद्यों के द्वारा व्यवहार-कौशल देना ही लेखक का उद्देश्य है। पंचतन्त्र का गद्य सरल, प्रवाहपूर्ण

तथा विषय को स्पष्ट करने में पूर्ण समर्थ है । संक्षिप्त, सारगर्भ वाक्यविन्यास में समासों को यथासम्भव दूर रखा गया है। भाषा की सुगमता अत्यन्त आकर्षक है। सुगम तथा रोचक कथाओं की प्रस्तुति में राजनीति और दैनिक व्यवहार की शिक्षा बड़ी कुशलता से दी गयी है। काव्यों के वर्णन यहाँ नहीं हैं, प्रत्येक वाक्य कथा को आगे बढ़ाता है। राजनीति से सम्बद्ध जो पद्य हैं, वे विभिन्न राजशास्त्रीय ग्रन्थों के विषयों को सरलता से निरूपित करते हैं, कुछ पद्यों को परवर्ती कवियों की रचनाओं में भी देख सकते हैं जैसे –

चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया ।

स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिंचति ॥ (पंच० 3/27)

शिशुपालवध (2/54) का यह पद्य प्रासंगिक जानकर पंचतन्त्र में डाल दिया गया है। इसी प्रकार इस काव्य के अन्य पद्य (2/55, 2/111) भी काकोलूकीय में (3/28, 3/70) आये हैं। इस तन्त्र में मित्र बने हुए शत्रु पर विश्वास न करने की बात कही गयी है –

नविश्वसेत्पूर्वविरोधितस्य शत्रोश्च मित्रत्वमुपागतस्य (3.1) । इसी प्रसंग में राजशास्त्र के षड्गणों (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव) का, मन्त्रणा का तथा अन्य उपयुक्त विषयों का विवरण कथा के द्वारा ही दिया गया है। स्वार्थसिद्धि के लिए शत्रु से मिलकर उसे अन्ततः नष्ट कर देने की शिक्षा 'काकोलूकीय' में दी गयी है । काक उलूक से मैत्री करके अन्ततः उसके निवास स्थान में आग लगा देता है। अपरीक्षितकारक में बिना विचारे काम करने का दुष्परिणाम दिखाया गया है। इसमें अनेक मूर्खों की कथाएँ हैं । 'मित्रभेद' में दो मित्रों के बीच फूट डालने की और 'मित्रसंप्राप्ति' में अनेक उपयोगी मित्र बनाने एवं नीति पर बल देने के लिए अनुकूल कथाएँ हैं। 'लब्ध-प्रणाश' नामक तन्त्र में शिक्षा है कि बुद्धिमान् बुद्धिबल से जीत जाता है तथा मूर्ख अपने हाथ में आयी वस्तु भी खो देता है। इसी प्रसंग में बन्दर और मकर की मित्रता की कथा है।

आरम्भिक जीवन में भाषा-शैली की शिक्षा के साथ व्यवहार कुशलता की शिक्षा पाने के लिए पंचतन्त्र-जैसा ग्रन्थ विश्वसाहित्य में नहीं है। पशु-पक्षियों की कथाओं से उपदेश भी मिलता है और किसी पर व्यक्तिगत आक्षेप भी नहीं होता। देश-काल की सीमा से ऊपर इसका सार्वकालिक और सार्वदेशिक महत्त्व है। यहाँ जीवन के हेय और उपादेय दोनों पक्षों पर

प्रकाश डाला गया है। यही कारण है कि इस ग्रन्थ के 250 संस्करण विश्व की 50 भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इस प्रकार 'पंचतन्त्र-साहित्य' एक स्वतन्त्र विषय बन गया है। भारत में भी पंचतन्त्र अत्यधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है, इसकी सूक्तियाँ बहुधा नीतिपद्यों के रूप में उद्धृत की जाती हैं। जैसे – न स्वल्पस्य कृते भूरि नाशयेन्मतिमान्नरः (1/19), अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति (1/20) पुत्रीति जाता महतीह चिन्ता (1/205), बुद्धिर्यस्य बलं तस्य (1/217), यस्मिन्कुले यः पुरुषः प्रधानः स सर्वयनैः परिरक्षणीयः (1/293), त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले (1/319), यो न वेत्ति गुणान्यस्य न तं सेवेत पण्डितः (1/354), त्यजेदेकं कुलस्यार्थं (1/359), उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः (1/365), मातृवत् परदाराणि परद्रव्याणि लोष्टवत् (1/406), उपायं चिन्तयेत्प्राज्ञस्तथापायं च चिन्तयेत् (1/410) इत्यादि । ये सब सूक्तियाँ प्रथम तन्त्र की हैं। अन्य तन्त्रों के भी शताधिक सुभाषित वाक्य हैं।

नारायण पण्डित रचित हितोपदेश

पंचतन्त्र के अतिरिक्त नीति कथाओं में सबसे अधिक प्रचलित और लोकप्रिय ग्रन्थ हितोपदेश है। इसकी रचना बंगाल के राजा धवलचन्द्र के आश्रय में रहने वाले नारायण पण्डित ने पंचतन्त्र की शैली पर की। इसमें रुद्रभट्ट का एक पद्य उद्धृत है जिसके आधार पर कीथ ने यह अनुमान लगाया है कि इसकी रचना 11वीं शताब्दी के बाद की नहीं हो सकती। नेपाल से इसकी एक पाण्डुलिपि 1373 ई. की मिली है, जिसके अनुसार इसकी रचना 14वीं शताब्दी से पूर्व होनी चाहिए। 1199 ई. में एक जैन कवि ने इसका उपयोग किया बताया जाता है। अतः इसका समय 1000 ई. के लगभग माना जा सकता है।

हितोपदेशकार ने स्वयं स्वीकार किया है –

“पंचतन्त्रात्तथाऽन्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते।”

तदनुसार नारायण पण्डित ने कथा संघटन पद्धति और शैली के अतिरिक्त कुल 43 कथाओं में से 25 कथाएं पंचतन्त्र के अनुकरण पर लिखी हैं। हितोपदेश के चार भाग या परिच्छेद हैं – मित्रलाभ, सुहृद् भेद, विग्रह और सन्धि। इनमें से मित्र लाभ और सुहृद् भेद तो पंचतन्त्र के मित्रसम्प्राप्ति और मित्रभेद के आधार पर ही हैं, यद्यपि इनमें अनेक नई उपकथाएँ

भी जोड़ दी गई हैं। हितोपदेश के विग्रह और सन्धि नामक परिच्छेदों में एक नई कहानी दी गई है तथा उसमें ही पंचतन्त्र की अनेक उपकथाओं का समावेश कर दिया गया है।

हितोपदेश का गद्य पंचतन्त्र की अपेक्षा अधिक सरल तथा रोचक है। इसमें पद्यों का संग्रह भी अधिक है। श्लोक भी उपदेशात्मक ही हैं। इसमें लगभग 679 श्लोक महाभारत, स्मृतियों, पुराणों और कामन्दकीय नीतिसार से संगृहीत हैं। सरल होने के कारण संस्कृत का अध्ययन करने के इच्छुक अपरिपक्व बुद्धि के छात्रों के लिए परमोपयोगी है। इसकी भाषा तथा शैली पंचतन्त्र की अपेक्षा मौलिक, प्रांजल तथा परिष्कृत है।

हितोपदेश की विशेषता

हितोपदेश और पंचतन्त्र — ये दोनों ही ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनसे छोटे-छोटे बालकों को संस्कृत भाषा का ज्ञान बड़ी ही सरलता से कराया जा सकता है, क्योंकि इन दोनों ग्रन्थों में छोटी-छोटी रोचक कथाएँ जो व्यवहारिक ज्ञान, लोक व्यवहार, आर्य सभ्यता, रीति साधारण नीति और राजनीति आदि के हितकारी उपदेशों से परिपूर्ण हैं। यह सारा ज्ञान इनमें रोचक, सरल तथा सुबोध भाषा में दिया गया है। अतः बालक इनको बड़े चाव से पढ़ते हैं और इस प्रकार कथाओं के बहाने उत्तम उपदेश बालकों के हृदयपटल पर अनायास ही अंकित हो जाते हैं, साथ ही साथ संस्कृत भाषा का सुदृढ़ संस्कार और परिचय भी उन्हें सरलता से प्राप्त हो जाता है। इसलिए इस ग्रन्थ का 'हितोपदेश' अर्थात् हितकारी उपदेश देने वाला — यह नाम ग्रन्थकार ने सार्थक ही रखा है।

इस हितोपदेश ग्रन्थ में पुरातन नीतिशास्त्रों से तथा पुराण और इतिहास आदि ग्रन्थों से नीति और व्यवहार शास्त्र के महत्त्वपूर्ण सुभाषित श्लोकों का कथाओं के प्रसंग में ही बीच-बीच में सुन्दर रूप में सन्निवेश किया गया है, जिसे पाठकों को संस्कृत के सुमधुर सुभाषितों का रसास्वादन भी अनायास ही हो जाता है। इसके साथ-साथ राजनीति और व्यवहार की सूक्ष्मतम निगूढ़ ग्रन्थियों के विश्लेषण करने का प्रौढ़ ज्ञान भी उन्हें प्राप्त हो जाता है।

इस ग्रन्थ में सम्पूर्ण नीतिशास्त्र का सारांश भी दिया गया है। इसलिए यह हितोपदेश बालक युवा एवं वृद्ध सभी के लिए समान रूप से हितकारी तथा उपदेशप्रद है। इसकी संस्कृत

भी इतनी सरल और सुबोध है कि संस्कृत भाषा का थोड़ा सा ज्ञान रखने वाले व्यक्ति भी इसे अनायास ही समझ सकते हैं। अतः सर्वसाधारण के लिए यह ग्रन्थ बहुत ही लाभप्रद है। परीक्षार्थी छात्रों तथा छोटे-छोटे बालकों को भी संस्कृत भाषा का अनुवाद सीखने में तथा संस्कृत भाषा में प्रवीणता प्राप्त करने में भी यह ग्रन्थ पूर्ण सहायक है।

हितोपदेश का विवेच्य विषय

हितोपदेश नीतियुक्त कथाओं का एक संग्रह ग्रन्थ है, जिसका संकलन नारायण पण्डित ने किया। इसमें कामन्दकीय नीतिशास्त्र महाभारत और पंचतन्त्र आदि ग्रन्थों से कथाएँ संग्रहीत की गई हैं, जिन्हें मित्र लाभ, सुहृद भेद, विग्रह और सन्धि नामक चार प्रकरणों में पर्यवसित किया गया है।

इस ग्रन्थ का प्रारम्भ मंगलाचरण में भगवान् शंकर की वंदना से किया गया है। तत्पश्चात् इस ग्रन्थ और शास्त्रविद्या की प्रशंसा की गई है। वस्तुतः इस ग्रन्थ की रचना पाटलिपुत्र के राजा सुदर्शन के पुत्रों को गुणवान् एवं सदाचारी बनाने के लिए की गई। पण्डित विष्णु शर्मा नामक एक विद्वान् ने इस ग्रन्थ की कथाओं का सम्यक् अध्ययन कराकर उन मूर्ख राजकुमारों को नीतिज्ञ एवं संस्कारी बनाया।

इस ग्रन्थ की कथाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है —

प्रथम भाग : मित्र लाभ

इस ग्रन्थ के 'मित्रलाभ' भाग में कुल 216 श्लोक हैं, जिनमें यह बताया गया है कि किसी भी प्रकार का साधन या धन न होने पर भी बुद्धिमत्तापूर्ण मित्रता से एकमत होकर असाध्य कार्य को भी सुगमतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है। इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए पण्डित विष्णु शर्मा ने राजकुमारों को कौआ, कछुआ, हिरण और चूहे से संबंधित मित्रता की अनेक कहानियाँ सुनाई, जो इस प्रकार हैं —

1. चित्रग्रीव और हिरण्यक की कथा

2. वृद्ध व्याघ्र और लोभी पथिक की कथा
3. हिरण, कौआ और सियार की कथा
4. गीध और बिलाव की कथा
5. संन्यासी और चूहे की कथा
6. व्याध और शृंगाल की कथा
7. हाथी और शृंगाल की कथा
8. चार मित्रों की कथा

द्वितीय भाग : सुहृदभेद

इस ग्रन्थ का यह भाग राजनीति विशेषकर कूटनीति की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि राजनीति में शत्रु का शत्रु मित्र और मित्र का शत्रु शत्रु माना जाता है। इसी प्रकार शत्रु का मित्र भी शत्रु ही होता है। अतः अपनी प्रभुसत्ता को बनाए रखने के लिए शत्रु के सुहृदों (मित्रों) में भेदनीति से फूट डालना किसी भी बुद्धिमान् राजा के लिए अत्यन्त आवश्यक होता है। इस भाग में शत्रु के मित्रों में फूट उत्पन्न करके अपने कार्य की सिद्धि के उपाय बताए गए हैं जो 178 श्लोकों में संगृहीत हैं। इस भाग में मुख्य रूप से निम्न कथाएँ सम्मिलित हैं —

1. संजीवक और पिंगलक की कथा (मूल कथा)
2. बन्दर तथा कील उखाड़ने की कथा
3. कुत्ते और गधे की कथा
4. सिंह और विडाल की कथा
5. कुटनी और घण्टे की कथा
6. ग्वालिन और नायन के त्रिया चरित्र की कथा
7. कुलटा ग्वालिन की कथा
8. काक दम्पति और काले सांप की कथा

9. सिंह और खरगोश की कथा
10. समुद्र और टिटिहरी दम्पति की कथा

तृतीय भाग – विग्रह

विग्रह शब्द का तात्पर्य है – शत्रुपक्ष या विरोधियों में फूट डालना। विग्रह राजनीति और राज्य की प्रभुसत्ता को बनाए रखने के लिए महत्त्वपूर्ण नीति है। अपने साम्राज्य विस्तार और सुरक्षा दोनों दृष्टियों से यह नीति बड़े महत्त्व की है। इस ग्रन्थ के इस भाग में कुल 149 श्लोक हैं, जिनके आख्यानो के माध्यम से विग्रह का महत्त्व समझाया गया है। इस भाग के अन्तर्गत आई मूल कथा तथा अन्य अन्तर्कथा निम्न हैं –

1. हिरण्यगर्भ और चित्रग्रीव की कथा (मूल कथा)
2. बन्दरों और पक्षियों की कथा
3. व्याघ्रचर्मधारी गधे की कथा
4. खरगोश और हाथियों के राजा की कथा
5. राजहंस, कौए और यात्री की कथा
6. कौए और बत्तख की कथा
7. रथकार और कुलटा पत्नी की कथा
9. नीलवर्ण शृंगाल की कथा
10. लालची नाई की कथा

चतुर्थ भाग : सन्धि

राज्यों आदि में होने वाला यह निश्चय कि अब हम आपस में नहीं लड़ेंगे और मित्रतापूर्वक रहेंगे अथवा अमूक क्षेत्र में अमूक प्रकार से व्यवहार करेंगे, सन्धि कहलाता है। सन्धि की नीति अपने राज्य को सुरक्षित तो रखती ही है, साथ ही सुख-शान्तिपूर्वक विकास

करने का अवसर भी देती है। प्रस्तुत भाग में सन्धि के विभिन्न प्रकारों, उनकी आवश्यकताओं और योग्य मन्त्रियों के परामर्श के लाभ आदि का वर्णन है। इस भाग की श्लोक संख्या 133 है। छोटी छोटी कहानियों और दृष्टांतों के माध्यम से यह न केवल पाठकों का मनोरंजन करता है, अपितु राजनीति और लोकव्यवहार की जानकारी भी देता है। इसके अन्तर्गत आई कथाएँ निम्न हैं –

1. हिरण्यगर्भ और चित्रवर्ण में सन्धि की कथा (मूल कथा)
2. हंसों और कछुए की कथा
3. तीन मछलियों की कथा
4. समुद्रदत्त और रत्नप्रभा की कथा
5. बगुले, साँप और नेवले की कथा
6. मुनि और चूहे की कथा
7. बगुले और केकड़े की कथा
8. ब्राह्मण और कुम्हार की कथा
9. सुन्द और उपसुन्द की कथा
10. ब्राह्मण और तीन धूर्तों की कथा
11. सिंह और उसके तीन सेवकों की कथा
12. मन्दविष और मण्डूकराज की कथा
13. ब्राह्मण और नेवले की कथा

(ख) लोककथाएँ

लोककथाओं का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन ही है। इनके पात्र मनुष्य ही होते हैं। नीतिकथाओं के समान इनका उद्देश्य उपदेशात्मक नहीं है। यह संस्कृत साहित्य का दुर्भाग्य है कि लोककथाएँ मुख्यतः पैशाचीग्रन्थ गुणादयरचित बृहत्कथा (बड्डकहा) पर आश्रित है। मौलिक

रूप से लोककथाएं संस्कृत में नहीं लिखी गयीं, जो लिखी गयीं वे बहुत बाद की हैं। स्पष्टतः लोककथाओं का विकास तब हुआ जब संस्कृत जन सामान्य की भाषा नहीं रही थी। यह भी सम्भव है कि ब्राह्मणों के शुद्धिवादी युग में निम्न वर्गों में कही-सुनी जाने वाली इन कथाओं की उपेक्षा हुई और संस्कृत के स्थान पर प्राकृत में ही उन्हें शरण मिली। बाद में संस्कृत जगत् को अपनी भूल का बोध हुआ तो संस्कृत कवियों ने प्राकृत भाषा की कथाओं का संस्कृत रूपान्तरण आरम्भ किया।

1. गुणाद्य कृत बृहत्कथा

लोककथाओं में सबसे प्राचीन संग्रह गुणाद्य की बृहत्कथा है। यह संस्कृत भाषा में नहीं लिखा गया था, अपितु उज्जयिनी के आसपास विन्ध्यपर्वत माला के निवासियों की लोकभाषा पैशाची प्राकृत में इसकी रचना हुई थी। तो भी संस्कृत साहित्य में इसके महत्त्व को तथा संस्कृत नाटकों, काव्यों और गद्य काव्यों में इसकी कथाओं का उपयोग होते हुए देखकर इसके विषय में जान लेना आवश्यक है।

गुणाद्य का मूल ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हो पाया है, परन्तु इसके आधार पर क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी, बुद्ध स्वामी की बृहत्कथाश्लोकसंग्रह और सोमदेव के कथासरित्सागर की रचना हुई है। उन्हीं से तथा अन्य प्राप्त उल्लेखों से कुछ अनुमान लगाए जाते हैं।

इस पर आधारित संस्कृत ग्रन्थ कथासरित्सागर के आरम्भ में इसकी रचना की परिस्थितियों का विस्तृत वर्णन है कि सातवाहन नरेश की राजसभा में संस्कृत भाषा सिखाने की एक बाजी में हार जाने के कारण गुणाद्य को संस्कृत बोलना छोड़ देना पड़ा एवं दुखी हृदय होकर वे विन्ध्याटवी में पशु-पक्षियों को पैशाची भाषा में कथाएं सुनाने लगे। उन्हीं कथाओं में से कुछ कथाएँ बच गयीं और एक लाख पद्यों की बृहत्कथा कहलायी।

समय—बुल्लहर ने इसका रचना काल प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई. में माना है। कीथ महोदय ने इसका समय चौथी शताब्दी ई.पू. से पहले सिद्ध किया है। क्षेमेन्द्र और सोमदेव के अनुसार गुणाद्य का जन्म गोदावरी के तट पर प्रतिष्ठान नगर में हुआ था। राजा सातवाहन (17–21 ई.) की राजसभा में वह विद्वान् रहता था। कातन्त्र व्याकरण के रचयिता सर्वशर्मा इसी

के समकालीन थे। बुद्धस्वामी के श्लोक संग्रह के अनुसार गुणाढ्य का जन्म मथुरा में हुआ था और वह उज्जैन के राजा मदन का सभापण्डित था। इनमें से क्षेमेन्द्र और सोमदेव का कथन अधिक ठीक प्रतीत होता है। इससे इसका समय प्रथम शताब्दी ई.पू. में माना जा सकता है।

बृहत्कथा का वैशिष्ट्य

कश्मीर में प्रचलित जनश्रुति के अनुसार यह पद्यबद्ध रचना थी और इसमें एक लाख पद्य थे, किन्तु दण्डी के काव्यादर्श के अनुसार यह प्राकृत गद्य कृति थी। इन्होंने इसकी प्राकृत के लिए भूतभाषा का प्रयोग किया है।

भूतभाषामयी प्राहुरद्भुतार्था बृहत्कथाम्। काव्यादर्श 1.38

सुबन्धु, बाण, दण्डी, त्रिविक्रमभट्ट, सोमदेव, गोवर्धनाचार्य आदि ने जिस सम्मान से इसका उल्लेख किया है, उससे यही अनुमान किया जा सकता है कि रामायण और महाभारत के समान बृहत्कथा भी भारतीय साहित्य का एक अपूर्व आकर ग्रन्थ रहा है —

श्रीरामायण भारतबृहत्कथानां कवीन् नमस्कुर्मः।

त्रिस्रोता इव सरसा सरस्वती स्फुरतिर्यैर्भिन्ना।। आर्याशप्तशती

बृहत्कथा से कथानक लेकर अनेक कवियों ने अपनी सुन्दर रचनाएँ प्रस्तुत कीं। नौवीं शताब्दी के कम्बोडिया (चम्पाद्वीप) के शिलालेख में गुणाढ्य का प्राकृत भाषा प्रिय और पारद के समान स्थिर कल्याणवाले कवि के रूप में उल्लेख हुआ है —

पारदस्थिरकल्याणो गुणाढ्यः प्राकृतप्रियः।

अनीतिर्यो विशालाक्षः शूरो न्यक्कृतभीमकः।

गोवर्धनाचार्य ने इसे व्यास का साक्षात् अवतार ही माना है—

अतिदीर्घजीविदोषाद् व्यासेन यशोऽपहारितं हन्त।

कैर्नोच्यते गुणाढ्यः स एव जन्मान्तरापन्नः।। आर्यासप्तशती

उसकी कथाएँ अति रोचक थीं। वन के पशु-पक्षी जिन्हें सुनकर खाना-पीना छोड़ बैठे थे। बाणभट्ट ने हर्षचरित में उसे हर लीला के समान बताया है —

समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरी प्रसाधना।

हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा।

इसी प्रकार उदयनसुन्दरी कथा में कवि सोड्डल ने बृहत्कथा की सरलता और लोकप्रियता की प्रशंसा की है —

कविगुणाढ्य स च येन सृष्टा

बृहत्कथा प्रीतिकरी जनानाम्।

सा संविधाने सुसन्धिबन्धैः

निपीड्यमानेव रसं प्रसूते।।

कवियों ने रामायण और महाभारत के समान बृहत्कथा को उपजीव्य बनाकर अनेक संस्कृत रचनाएं की थीं। बृहत्कथा में एक मुख्य कथा कौशाम्बीनरेश उदयन के पुत्र नरवाहनदत्त की थी, जिसने विद्याधर राजकुमारी मदनमंजुषा से विवाह किया। नायिका के उपहरण के बाद नायक ने पराक्रम दिखाया। इसके अतिरिक्त अन्य अवान्तर कथाएँ भी थीं। ये सूचनाएँ संस्कृत संस्करणों से प्राप्त होती हैं। बाद में शिव पार्वती की कथा को जोड़कर इसे पौराणिक रूप दिया गया।

2. बुद्धस्वामी रचित बृहत्कथाश्लोक संग्रह

आठवीं या नौवीं शताब्दी में नेपाल के रहने वाले बुद्ध स्वामी ने बृहत्कथा का संस्कृत रूपांतर श्लोकबद्ध शैली में प्रस्तुत किया। अनुमान किया जाता है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ में 25000 श्लोक और 100 सर्ग थे, परन्तु आजकल बृहत्कथाश्लोकसंग्रह में 28 सर्ग प्राप्त हैं और उनमें 4539 श्लोक हैं। इसे नेपाल से 1893 ई. में हरप्रसाद शास्त्री ने प्राप्त किया था। 1908 ई. में पेरिस से डॉ. लाकोत ने फ्रेंच अनुवाद के साथ इसे प्रकाशित किया था। सभी भारतीय संस्करण इसी पर आश्रित हैं। डॉ. लाकोत ने कल्पना की है कि इसमें नायक नरवाहन दत्त

अपनी 28 पत्नियों की प्राप्ति का वृत्तान्त अवश्य सुनाता, किन्तु ग्रन्थ के अन्त में वह छठी पत्नी के वृत्तान्त तक ही पहुंचता है। जिस क्रम और विस्तार से इन पंक्तियों में वृत्तान्त हैं वह क्रम आगे चलता और अन्त में साम्राज्य की स्थापना की कथा होती, तो इसमें 100 सर्ग और 25000 श्लोक होते। इसमें मुख्य कथा का चतुर्दश सर्ग से आरम्भ होता है जो नरवाहन दत्त की कथा है। इसकी पूर्वपीठिका आरम्भिक सर्गों में है। इसमें न तो गुणाढ्य के परिचय से सम्बद्ध कथापीठ है और न लेखक का आत्म निवेदन है। मूलकथा को काव्यरूप देने का कवि ने प्रयास किया है। इसमें काव्य की छटा सर्वत्र दिखाई पड़ती है। भाषा का प्रवाह, अलंकारों का संयत प्रयोग एवं सरल शैली कथा के वैशिष्ट्य हैं। प्रतीत होता है कि आर्यशूर की जातकमाला से बुद्धस्वामी ने प्रेरणा लेकर इसकी रचना की थी। दोनों ने संस्कृत में पालि, प्राकृत के काव्यात्मक रूपान्तरण का श्लाघ्य प्रयास किया था। इसमें तात्कालिक वाणिज्य, राजनीति, नगर जीवन, यात्रा आदि की विस्तृत सामग्री है।

समय — डॉ. लाकोत ने बुद्ध स्वामी का समय छठी शताब्दी से आठवीं शताब्दी ई. के बीच माना है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल की मान्यता है कि गुप्त नरेशों के गौरवमय स्वर्णयुग की छटा मिलने से इसे 5वीं शताब्दी ई. में मानना उचित है। बृहत्कथा की प्राकृत वाचना वसुदेवहिण्डी (500 ई.) पर इसका प्रभाव दिखाकर यह मत समर्थित होता है। आर्यशूर और बुद्धस्वामी का संबंध दिखाकर इस कथा का काल 300—400 ई. माना जा सकता है।

3. क्षेमेन्द्र कृत बृहत्कथामंजरी

क्षेमेन्द्र कश्मीर नरेश राजा अनन्त (1029—1064 ई.) की राजसभा में कवि थे। संस्कृत वाङ्मय को अपनी 40 कृतियों से भरने वाले कश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथा की कश्मीरी वाचना को अपनी इस महती कृति से प्रकट किया है। इनकी भारतमंजरी का रचना काल 1037 ई. है और बृहत्कथा मंजरी भी प्रायः इसी के आसपास लिखी गई थी। क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथा मंजरी की रचना 18 लम्बकों में की है। इसमें 7500 श्लोक हैं। यह संग्रह गुणाढ्य की मूल बृहत्कथा का प्रामाणिक संक्षिप्त रूप हो सकता है, क्योंकि क्षेमेन्द्र ने रामायण और महाभारत के जो संक्षिप्त रूप लिखे वे मूल ग्रन्थों के अति निकट हैं। अतः यह कहा जा

सकता है कि बृहत्कथा में भी 18 भाग रहे हों। क्षेमेन्द्र ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में गुणादय विषयक उस घटना का वर्णन किया है जिसमें उसने कातन्त्र के शर्त हार जाने पर संस्कृत में लिखना छोड़ दिया था और वन में जाकर पशु-पक्षियों को कथाएँ सुनाना प्रारम्भ कर दिया था, जिन कथाओं का संग्रह यह बृहत्कथा है।

क्षेमेन्द्र का कथन है कि भगवान् शंकर के मुख से निर्गत लोकानुग्रहकारिणी कथा दुर्भाग्यवश पैशाचवाणी में चली गई, जिससे विघ्न होने लगे। इसीलिए उस सुखद कथा को संस्कृत रूप में दिया है —

सेयं हरमुखोद्गीर्णा कथानुग्रहकारिणी।

पैशाचवाचि पतिता संजाता विघ्नदामिनी।

अतः सुखनिषेव्यासौ कृता संस्कृतया गिरा।। बृहत्कथामंजरी उपसंहार

29—30

यह ग्रन्थ 18 लम्बकों या खण्डों में विभक्त प्रायः सहस्र पद्यों का ग्रन्थ है। 'लम्बक' शब्द मूलतः 'लम्भक' होगा, जिनमें बृहत्कथा का विभाजन था। प्रत्येक लम्भक में एक कन्या प्राप्ति की कथा थी। क्षेमेन्द्र ने लम्बकों को यत्र तत्र गुच्छों में विभक्त किया है। इन लम्बकों के नाम हैं — कथापीठ, कथामुख, लावानक, नरवाहनजन्म, चतुर्दारिका, सूर्यप्रभ, मदन मंचुका, वेला, शशांकवती, विषमशील, मदिरावती, पद्मावती, पंच, रत्नप्रभा, अलंकारवती, शक्तियशा, महाभिषेक तथा सुरतमंजरी। अन्त में उपसंहार के 41 श्लोकों में अनुक्रमणिका लम्बक सूची तथा ग्रन्थ रचना का उद्देश्य भी दिया गया है।

नवम लम्बक शशांकवती में 25 वेताल कथाएँ हैं जो पृथक् रूप से 'वेतालपंचविंशति' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। क्षेमेन्द्र के इस ग्रन्थ में उदयन की प्रसिद्ध और रोचक कथा भी है। कथाओं को अत्यधिक संक्षिप्त करने के कारण कहीं-कहीं अस्पष्टता तथा रिक्तता के दोष आये हैं, जिनसे उनकी रोचकता प्रभावित हुई है, किन्तु दूसरी ओर काव्य प्रभाव डालने के लिए प्रकृति वर्णन और रसोद्भावन की कल्पना भी कवि ने की है। नायक नरवाहनदत्त अनेक प्रतिस्पर्धियों को परास्त करके गन्धर्वों का चक्रवर्ती बनता है। पट्टमहिषी मदनमंचुका से विवाह

के पूर्व भी उसके चार परिणय हो चुके रहते हैं जहाँ-तहाँ कवि ने देवस्तुतियाँ दी हैं, जिनमें एक है — नारायण स्तुति, जो 13 पंक्तियों के सरल-विलष्ट गद्य में है। कहीं-कहीं क्षेमेन्द्र अपने स्वभावसिद्ध उपदेशक रूप को सूक्तियों में प्रकट करते हैं, जैसे —

विपत्सु च कुलीनानां वियोगेषु च धीमताम्।

पराजये च शूराणां वृत्तिरेका तपोवनम्॥

क्षेमेन्द्र ने सभी कथाओं के साथ उपदेश वाक्य प्रायः जोड़े हैं। हास्य-व्यंग्य और दार्शनिक रहस्यों का अनावरण तो कवि की सार्वत्रिक विशिष्टता ही है।

4. सोमदेव कृत कथासरित्सागर

बृहत्कथा के संस्कृत रूपान्तरों में सबसे लोकप्रिय सोमदेव का कथासरित्सागर है। यह भी कश्मीरी कवि है और क्षेमेन्द्र का समकालीन है। केवल इतना ही अन्तर है कि क्षेमेन्द्र 11वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था और सोमदेव 11वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में। बृहत्कथा का यह अर्वाचीनतम और विशालतम संस्कृत संस्करण है। इसकी रचना कश्मीरी पण्डित सोमदेव ने कश्मीर नरेश अनन्त की पत्नी सूर्यवती के मनोविनोदार्थ 1064 और 1081 ई. के बीच की थी। इसी से इसे प्रायः 1070 ई. में रचित माना जाता है।

सोमदेव ने समस्त कथाओं को 18 लम्बकों में विभक्त किया है। प्रत्येक लम्बक का पुनः 125 तरंगों में विभाजन है। इसमें 24 हजार श्लोक हैं, जिससे इसका कलेवर बृहत्कथामंजरी से तिगुणा हो जाता है। इसमें कथाओं का वर्णन क्षेमेन्द्र की अपेक्षा अधिक विस्तृत और रोचक है। उन्होंने कथाओं को व्यवस्थित भी अच्छे ढंग से किया है। कथासरित्सागर के प्रारम्भ में ही उसने लिखा है कि कथाओं के सौन्दर्य को बनाए रखते हुए मैंने औचित्य का ध्यान रखते हुए अपनी योग्यता के अनुसार उत्तम व्यवस्था करने का प्रयत्न किया है। इसमें लम्बकों का क्रम बृहत्कथामंजरी में गृहीत क्रम से कुछ भिन्न है। जैसे पद्मावती और विषमशील नामक लम्बक इसमें अन्त में है तथा सुरतमंजरी को 16वां लम्बक रखा गया है। इस ग्रन्थ के विस्तार के कारण कथाओं की समुचित रोचकता सुरक्षित है। इसमें बृहत्कथा मंजरी वाली अस्पष्टता नहीं है।

कथा सरित्सागर में काव्यत्व का भी अपेक्षाकृत अधिक निवेश है। सोमदेव ने विनम्रतापूर्वक मूलग्रन्थ के भाव को इसमें यथावत् रखने की बात कही है, केवल भाषा-भेद के कारण कहीं अधिक विस्तार या संक्षेप हो गया है —

यथामूलं तथैवैतन्न मनागप्यतिक्रमः ।

ग्रन्थविस्तरसंक्षेपमात्रं भाषा च भिद्यते ॥

फिर भी औचित्य और अन्वय की रक्षा तथा कथारस विघात की निवृत्ति के लिए काव्यांश तो कवि ने स्वयं समाविष्ट किया है —

औचित्यान्यरक्षा च यथाशक्ति विधीयते ।

कथारसाविघातेन काव्यांशस्य च योजना ॥ (1.11)

सोमदेव के द्वारा जोड़े गए संदर्भों में सांस्कृतिक सामग्री का बाहुल्य है। भारतीय समाज के ऊँचे-नीचे दोनों पक्षों का इसमें चित्रण है। स्वाभाविकता और रोचकता का ऐसा सम्मिश्रण दण्डी में ही मिल सकता है।

कथासरित्सागर में भी 'वेतालपंचविंशति' अन्तर्भूत है जो द्वादश लम्बक के आठवें से 32वें तरंग तक फैली हुई है। क्षेमेन्द्र ने इन 25 कथाओं को केवल 1206 श्लोकों में समेटा है, वहीं सोमदेव ने इनके लिए 2195 श्लोक लगाये हैं।

पंचतन्त्र की भी बहुत सी कथाएँ कथासरित्सागर में आयी हैं। यह जिस प्रकार भारतीय कथाओं का सागर है, वैसे ही भारतीय जीवन दर्शन की अनेक सूक्तियों का भी सागर है। एक सूक्ति निम्न प्रकार है —

विद्येव कन्यका मोहादपात्रेप्रतिपादिता ।

यशसे न न धर्माय जायेतानुशयाय तु ॥ (5.26)

अर्थात् अज्ञानवश कुपात्र को दी गई विद्या के समान कुपात्र को दी गई कन्या न यश देती है और न धर्म ही, बल्कि वे दोनों पश्चात्ताप के लिए होती हैं। सोमदेव ने स्त्रियों के चित्रण में बहुत रुचि ली है। उनके युग में स्त्रियों के प्रति सम्मान-भाव की कमी थी।

इसीलिए उनके चारित्रिक पतन और मर्यादाहीनता की कथाएँ दी गई हैं। रसिकों के मनोरंजन के लिए रचित इस ग्रन्थ ने विश्व साहित्य में अमर स्थान प्राप्त किया है।

कुछ अन्य लोककथाएँ

वेतालपंचविंशतिका

इसमें पच्चीस लोकप्रिय कथाओं का संग्रह है। बृहत्कथामंजरी और कथासरित्सागर में इसमें प्राप्त सभी कथाएँ आती हैं। 1200 ई. के लगभग शिवदास ने इन कथाओं को गद्यमयी भाषा में प्रस्तुत किया। इसके अनन्तर जम्भलदत्त ने इसे पद्यात्मक रूप दिया। ये सभी कथाएँ अत्यन्त लोकप्रिय हुई, क्योंकि इनमें बुद्धि के चमत्कार को अत्यन्त रोचकता के साथ उभारा गया है। इसीलिए इन कथाओं का सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद मिलता है।

इन कथाओं में राजा विक्रमादित्य या विक्रमसेन की बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन किया गया है। एक सिद्ध पुरुष ने राजा विक्रम को एक फल दिया, जिसके बीच में रत्न भरे हुए थे और यह कहा कि अमुक वृक्ष पर एक शव लटक रहा है, उसे ले जाओ। इससे सिद्धि प्राप्त होगी, परन्तु तुम्हें बोलना नहीं होगा। राजा उस शव को उठाकर चला तो उसके आश्रय दाता वेताल ने एक कथा सुनानी प्रारम्भ कर दी। उसने कथा के अन्त में एक ऐसा प्रश्न उपस्थित किया, जिसका उत्तर राजा को देना पड़ा।

राजा के बोलते ही शव उसी वृक्ष पर पहुँच गया। इस प्रकार 25 बार राजा शव को लेकर चला। हर बार वेताल ने कथा सुनाई और प्रश्न उपस्थित किया और राजा को उत्तर देना पड़ा। वेताल की सुनाई हुई 25 कथाओं का संग्रह होने से ही इसका नाम वेतालपंचविंशतिका का है। सभी कथाएँ बड़ी रोचक हैं और बुद्धि को सोचने के लिए प्रेरित करने वाली हैं। इनकी भाषा सरल और स्वाभाविक है। इस ग्रन्थ की कथाओं के अनुवाद संसार की विभिन्न भाषाओं में हैं तथा पंचतन्त्र के समान यह ग्रन्थ विश्व साहित्य बन गया है।

सिंहासन द्वात्रिंशका

इस ग्रन्थ को द्वात्रिंशत्पुत्तलिका और विक्रमचरित नाम भी दिए गए हैं। हिन्दी में इसका सिंहासनबत्तीसी के नाम से अनुवाद मिलता है। राजा भोज का इसमें स्पष्ट उल्लेख है। अतः इसका समय 11वीं शताब्दी के अन्त में ही होना चाहिए।

इस ग्रन्थ में भी विक्रमादित्य के गुणों का प्रदर्शन है। राजा भोज ने भूमि में गड़े हुए महाराज विक्रमादित्य के सिंहासन को निकलवाया। ज्यों ही वह उस पर बैठने के लिए आगे बढ़ा तो उस सिंहासन में लगी 32 पुतलियों में से एक बोल उठी कि यदि तुम विक्रमादित्य के समान हो तो ही तुम इस सिंहासन पर बैठने के अधिकारी बन सकते हो। राजा के पूछने पर पुतली ने महाराज विक्रमादित्य की उदारता के विषय में एक घटना सुनाई। इसी प्रकार बारी-बारी से 32 पुतलियों ने महाराज विक्रमादित्य के चरित को ऊँचा दिखाया। इससे राजा भोज अपने आपको उस सिंहासन के अयोग्य समझने लगा।

इस कथा संग्रह के दो संस्करण मिलते हैं – दक्षिण भारतीय और उत्तर भारतीय। दक्षिण भारतीय संस्करण का नाम विक्रमचरित है। उत्तर भारतीय संस्करण के जैन, बंगाली और लघु पाठ मिलते हैं। दक्षिण भारतीय संस्करण के भी पद्यबद्ध और गद्यात्मक दो रूप हैं। इनमें से कौन सा मूल संस्करण है, अभी तक निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इसके रचयिता का नाम भी अज्ञात ही है।

शुकसप्तति

इस ग्रन्थ में 70 कथाओं का रोचक संग्रह है। इस ग्रन्थ के लेखक का नाम भी अभी ज्ञात नहीं है। सभी कथाएँ स्वतन्त्र होने पर भी एक तोते के द्वारा अपनी स्वामिनी को सुनायी गई होने के कारण परस्पर संबद्ध हैं। मदनसेन नामक व्यापारी अपनी नवविवाहिता पत्नी से अत्यन्त प्रेम करता था। अचानक उसे काम से परदेस जाना पड़ा। वह अपने विश्वासपात्र तोते को उसकी रक्षा के लिए छोड़ गया।

व्यापारी के शीघ्र न लौटने पर उसकी युवा पत्नी अपने सती धर्म से विचलित होने लगी तो उसे रोकने के लिए हर रात तोते ने उसे एक कहानी सुनानी प्रारम्भ की। हर एक कहानी

रोचक थी। अतः नववधू हर रात रुक जाती थी। इस प्रकार 70 दिन तक तोता कहानी सुनाता रहा। तब तक व्यापारी लौट आया। यही तोते द्वारा सुनाई हुई 70 कहानियों का संग्रह शुकसप्तति के नाम से विख्यात है।

ये कथाएँ किसने बनाई – इसका अभी पता नहीं लग पाया है। यह अवश्य है कि इनकी रचना 14वीं शताब्दी से पहले ही हो चुकी थी। सभी कथाएँ रोचक और शिक्षाप्रद हैं। सती नारियों के उच्च चरित्र और कुलटाओं के दुष्चरित्र का दिग्दर्शन इनमें करवाया गया है। चरित्र की रक्षा के लिए सरल और सुन्दर भाषा में उपदेश दिया गया है। सरल गद्य-शैली का यह अच्छा उदाहरण है। इसके दो पाठ उपलब्ध हैं – एक तो किसी जैन लेखक का है और दूसरा चिन्तामणि भट्ट का है।

4.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्न

1. कथा साहित्य को कितने भागों में बाँटा गया है?
2. पंचतन्त्र के रचयिता का नाम बताइए।
3. पंचतन्त्र के पाँचवें तन्त्र का नाम क्या है?
4. नारायण पण्डित द्वारा लिखा गया कथा ग्रन्थ कौन-सा है?
5. बृहत्कथा की रचना किसने की?
6. बृहत्कथा किस भाषा में लिखी गई?
7. बृहत्कथा श्लोकसंग्रह की रचना किसने की?
8. बृहत्कथामंजरी किसकी रचना है?
9. कथासरित्सागर के रचनाकार का नाम बताइए।
- 1.0. सिंहासन द्वात्रिंशिका में किन दो राजाओं का वर्णन है?

4.5 सारांश

कथा साहित्य का संस्कृत साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। ये कथाएँ हमारा मनोरंजन कराने के साथ-साथ करणीय-अकरणीय का ज्ञान भी देती हैं। पंचतन्त्र और हितोपदेश की कहानियाँ आज भी बड़े चाव से पढ़ी व सुनी जाती हैं। इनमें वर्णित पशु-पक्षियों की नीति कथाएँ वर्तमान समय में भी परम उपयोगी हैं। पंचतन्त्र तो सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित और लोकप्रिय है। पंचतन्त्र पाँच तन्त्रों में विभाजित हैं, जबकि हितोपदेश चार प्रकरणों में निबद्ध है। लोककथाओं में गुणादय कवि द्वारा पैशाची प्राकृत में रचित बृहत्कथा सर्वप्रमुख है। इसका प्रभाव संस्कृत के अनेक कथाग्रन्थों के साथ-साथ नाटकों, काव्यों और गद्यकाव्यों पर स्पष्टतः देखा जा सकता है। इसी को आधार मानकर बुद्धस्वामी ने बृहत्कथाश्लोकसंग्रह ग्रन्थ भी लिखा। क्षेमेन्द्र ने भी बृहत्कथा पर आधारित बृहत्कथामंजरी ग्रन्थ का प्रणयन किया और इसी का विस्तृत रूपान्तर सोमदेव ने कथासरित्सागर के 18 लम्बकों और 24000 श्लोकों में किया। राजा भोज और विक्रमादित्य से संबंधित सिंहासन द्वात्रिंशिका का भी कथा साहित्य में विशेष महत्व है तथा 70 कथाओं में निबद्ध ग्रन्थ शुकसप्तति में भी रोचक कथाएं संग्रहित हैं। इन दोनों ग्रन्थों के रचयिता का नाम ज्ञात नहीं है।

4.6 मुख्य शब्दावली

1. कथा – (कथ् + अङ् + टाप्) – कल्पित या मनघटन्त कहानी
2. पंचतन्त्र – पाँच तन्त्रों में निबद्ध विष्णुशर्मा की अनोखी रचना
3. हितोपदेश – पंचतन्त्र की तरह लिखी नारायणपंडित की रचना
4. बृहत्कथा – गुणादय द्वारा रचित पैशाची प्राकृत में निबद्ध रचना
5. बृहत्कथाश्लोकसंग्रह – बुद्धस्वामी की रचना (बृहत्कथा पर आधारित)
6. बृहत्कथामंजरी – क्षेमेन्द्र की रचना (बृहत्कथा पर आधारित)
7. कथासरित्सागर – सोमदेव की रचना (बृहत्कथा पर आधारित)

4.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. दो भागों में
2. विष्णु शर्मा
3. अपरीक्षित कारक
4. हितोपदेश
5. गुणाढ्य
6. पैशाची प्राकृत
7. बुद्धस्वामी ने
8. क्षेमेन्द्र की
9. सोमदेव
10. राजा विक्रमादित्य तथा राजा भोज का

4.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. कथासाहित्य के प्रारम्भ पर एक टिप्पणी लिखिए।
2. पंचतन्त्र के रचयिता का परिचय देते हुए रचना का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
3. पंचतन्त्र के मित्रभेद नामक तन्त्र का संक्षिप्त कथासार लिखिए।
4. पंचतन्त्र की भाषा शैली और प्रसिद्धि का कारण स्पष्ट कीजिए।
5. हितोपदेश की विशेषताएँ और सार संक्षेप प्रस्तुत कीजिए।
6. गुणाढ्य कृत बृहत्कथा पर एक टिप्पणी लिखिए।
7. बृहत्कथाश्लोकसंग्रह का परिचय दीजिए।
8. बृहत्कथा मंजरी का सामान्य परिचय दीजिए।

9. सोमदेवकृत कथासरित्सागर पर एक टिप्पणी लिखिए।
10. सिंहासनद्वात्रिंशिका की ऐतिहासिकता स्पष्ट कीजिए।

4.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. पंचतन्त्रम् – विष्णु शर्मा, सम्पादक प्रो. बालशास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
2. हितोपदेश – नारायणपंडित, सम्पादक प्रो. बालशास्त्री, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, – वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, – डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्बा भारती अकेडमी, वाराणसी।

अध्याय—5

नाट्य साहित्य (भास से शूद्रक)

- 5.1 अध्याय के उद्देश्य
- 5.2 परिचय
- 5.3 भास से शूद्रक तक का नाट्य साहित्य
- 5.4 अपनी प्रगति जांचिए, प्रश्न
- 5.5 सारांश
- 5.6 मुख्य शब्दावली
- 5.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर
- 5.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 5.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

5.1 अध्याय के उद्देश्य

- नाटक की उत्पत्ति के विषय में जान पाएंगे।
- नाटक के दस भेदों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- 'भासनाटकचक्रम्' से संबंधित जानकारी हासिल कर पाएंगे।
- भास के नाटक वैशिष्ट्य का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।
- कालिदास के नाटक मालविकाग्निमित्र से परिचित हो पाएंगे।
- विक्रमोर्वशीयम् नाटक की अवधारणा प्रस्तुत कर सकेंगे।
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् की अद्वितीयता से परिचित हो सकेंगे।
- महाकवि कालिदास के नाट्य कौशल की तुलना कर सकेंगे।
- शूद्रक के नाट्य वैशिष्ट्य से परिचित हो पाएंगे।

- मृच्छकटिकम् का सार संक्षेप जान पाएंगे।

5.2 परिचय

काव्य की अनेक विधाओं में नाटक को सबसे रम्य माना जाता है। इसमें रंगमंच पर आकर नट या अभिनेता मूल पात्र की अवस्थाओं का अनुकरण करते हैं। इसे दृश्य काव्य या रूपक भी कहा जाता है। इसके दस भेद बताए जाते हैं – नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, ईहामृग, वीथी, व्यायोग, डिम, समवकार और उत्सृष्टांक (अंक)। इनमें नाटक और प्रकरण अधिक प्रचलित और लोकप्रिय रहे हैं। इनके अतिरिक्त जिन नाट्य रचनाओं में गीत, नृत्य और वाद्य की प्रधानता रहती है, उन्हें उपरूपक कहा गया। उपरूपकों की संख्या 18 है। उनमें से नाटिका और प्रकरणिका ही प्रमुख हैं।

नाटककारों में सर्वप्रथम नाम भास का आता है। इनके नाम से तेरह नाटक प्राप्त होते हैं। अभिषेक नाटक व प्रतिमा नाटक रामायण पर आधारित हैं। सात नाटक महाभारत से गृहीत कथावस्तु वाले हैं। अविमारक एवं दरिद्रचारुदत्त नाटक लोककथाओं पर आधारित हैं। प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्तम् उदयन कथा पर आधारित नाटक हैं। कवि भास के नाटकों में स्वप्नवासवदत्तम् श्रेष्ठ हैं। नाट्यविधान, भावों की अभिव्यक्ति, भाषा की व्यञ्जकता, सरलता किन्तु सशक्तता – ये सभी गुण भास को कालिदास के समकक्ष लाकर खड़ा कर देते हैं।

महाकवि कालिदास के तीन नाटक प्राप्त होते हैं – मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम्। तीनों ही रचनाएँ शृंगार रस प्रधान हैं। मालविकाग्निमित्र ऐतिहासिक नाटक है, जिसमें शुंगवंशी राजा अग्निमित्र तथा विदर्भराजकुमारी मालविका के विवाह की कथा है। विक्रमोर्वशीयम् में राजा पुरुरवस् तथा अप्सरा उर्वशी के प्रेम का कथानक है। विश्व साहित्य में विख्यात 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक में कालिदास ने अपने नाट्य कौशल का प्रकर्ष दिखाया है। महाभारत के एक सामान्य कथानक को परिवर्तित करके कवि ने नाटकीय रूप प्रदान कर उसे विश्ववन्द्य बनाया है। इसमें राजा दुष्यन्त नायक है और शकुन्तला नायिका

है। कालिदास के तीनों नाटक सुखान्त हैं। कालिदास के नाटक काव्य और नाट्यकला दोनों ही दृष्टि से अनुपम हैं। कहा भी गया है — काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।

अश्वघोषकृत शारिपुत्रप्रकरण नामक नाटक अपूर्ण अवस्था में प्राप्त होता है। इसमें शारिपुत्र और मौद्गलायन के द्वारा बौद्ध धर्म को स्वीकार करने की घटना का वर्णन किया गया है। नाटककार शूद्रक का नाम भी नाट्य जगत् में अमर है। इसकी रचना मृच्छकटिकम् प्रकरण (रूपक का एक भेद) श्रेणी में मूर्धन्य है। यह प्रकरण चारुदत्त और वसन्तसेना की कल्पित प्रेम कथा पर आधारित है। चारुदत्त उज्जयिनी का एक सम्मानित दरिद्र ब्राह्मण है और वसन्तसेना गणिका है। इस प्रकरण में दस अंक हैं। यह निश्चय ही संस्कृत नाटक साहित्य का एक अति महान् रूपक है। इसका कथानक सामाजिक जीवन के अधिक निकट है। वह राजमहल की चारदीवारी में बन्द होकर नहीं रह जाता। समाज के उपेक्षित वर्गों के प्रति भी सहानुभूति रखकर शूद्रक ने क्रान्तिकारी कदम उठाया है। 'गुणाः पूजास्थानम्' की उपपत्ति में मृच्छकटिकम् का विपुलांश समर्पित है।

5.3 नाट्य साहित्य (भास से शूद्रक)

काव्य की अनेक विधाओं में नाटक को सबसे रम्य माना गया है। इसमें रंगमंच पर आकर नट या अभिनेता मूल पात्र की अवस्थाओं का अनुकरण करते हैं। दर्शक उसे देखकर आनन्द का अनुभव करते हैं, इसीलिए इसे दृश्य काव्य कहा जाता है। इसमें नट नायक के रूप का अपने ऊपर आरोप कर लेता है, इसलिए इसे रूपक भी कहा जाता है —

“रूपारोपात्तु रूपकम्”

‘अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्’

‘काव्येषु नाटकं रम्यम्’

नाट्यशास्त्र के विद्वानों ने रूपकों के वस्तु (कथानक) नेता (पात्र) और रस के आधार पर दस भेद किए हैं। उनमें से नाटक सबसे पहला और सबसे अच्छा माना जाता है, इसलिए रूपक साहित्य के लिए नाटक या नाट्य शब्द प्रचलित हो गए हैं।

संस्कृत में नाट्य साहित्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वेद, रामायण, महाभारत, पुराण, बौद्ध तथा जैन साहित्य, कौटिलीय अर्थशास्त्र, वात्स्यायन के कामसूत्र, पाणिनि की अष्टाध्यायी, पतंजलि का महाभाष्य, भरतमुनि का नाट्यशास्त्र, अभिनयदर्पण, दशरूपक आदि अनेक ग्रन्थों में प्राप्त उल्लेखों तथा संकेतों से यह प्रतीत होता है कि वैदिक काल से ही किसी न किसी रूप में नाटकों का प्रारम्भ हो गया था। वही परम्परा अत्यन्त विकसित होती हुई आज तक चली जा रही है।

नाटक की उत्पत्ति

मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अपने आप देखी और सुनी बातों को इस रूप में दूसरों के सामने प्रस्तुत करना चाहता है कि उन्हें भी वैसी ही अनुभूति हो जैसी उसको हुई थी। यह अनुकरण और हाव-भाव प्रदर्शन की प्रवृत्ति ही नाटक को जन्म देती है। पाश्चात्य विद्वानों ने वीर पूजा, मृतक पूजा, पुत्तलिका नृत्य, धार्मिक विधि-विधान, यूनानी प्रभाव आदि से भारतीय नाटक की उत्पत्ति की कल्पना की है।

भारतीय साहित्य में भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में नाटक की उत्पत्ति के विषय में पौराणिक विवरण दिया है। तदनुसार देव और मानव मिलकर ब्रह्मा जी के पास गए और कहने लगे कि वेद अत्यन्त कठिन हैं। हर एक की समझ में नहीं आते और सब इन्हें पढ़-सुन नहीं सकते। कृपया आप सबके समझने योग्य एक पंचम वेद बना दीजिए।

ब्रह्मा ने ऋग्वेद से संवाद (पाठ्य), सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस ग्रहण करके पाँचवाँ वेद नाट्यवेद बना दिया। उसमें शिव ने ताण्डव और पार्वती ने लास्य का योगदान दिया, जिससे वह पूर्ण हो गया। भरत के पुत्रों और शिष्यों ने मिलकर स्वर्ग

की अप्सराओं और गन्धर्वों के सहयोग से इन्द्रध्वज, अमृतमन्थन और त्रिपुरदाह के दृश्यों को प्रस्तुत किया। वही भारत में अभिनीत सबसे पहले नाटक माने जाते हैं। इस प्रकार भारतीय नाटक शुद्ध रूप से भारतीय जनसमुदाय में मनोरंजन, अनुकरण, आत्माभिव्यक्ति की सहज प्रवृत्ति के आधार पर उत्पन्न हुए हैं। किसी बाह्य या विदेशी प्रभाव की कल्पना करना असंगत ही है।

नाटक या रूपक के भेद

नाट्यशास्त्र का सबसे पहला और प्रसिद्ध ग्रन्थ भरत मुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र मिलता है। इसका रचनाकाल विद्वानों ने 100 ई. पू. से 200 ई. तक रखा है। इसमें नाटक के भेद, उसमें प्रयुक्त होने वाली कथावस्तु, नाटक का नायक तथा अन्य पात्र, रस, गीत, नृत्य, रंगमंच, प्रेक्षागृह, नेपथ्य आदि सभी का वर्णन किया गया है और इनके नियम भी बनाए गए हैं। विशेष रूप से कथानक, पात्र और रस के आधार पर दस भेद किए गए हैं – नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, ईहामृग, वीथी, व्यायोग, डिम, समवकार, उत्सृष्टांक। इनमें से नाटक और प्रकरण अधिक प्रचलित और लोकप्रिय रहे हैं। इसके अतिरिक्त जिन नाट्य रचनाओं में गीत, नृत्य और वाद्य की प्रधानता रहती थी, उन्हें उपरूपक कहा गया है। उपरूपकों की संख्या 18 है। उनमें से नाटिका और प्रकरणिका ही प्रमुख हैं। नाट्यशास्त्र में इन सभी के लक्षण और विशेषताएँ बताई गई हैं।

नाट्य परम्परा

संस्कृत में नाटक साहित्य अत्यन्त विस्तृत और अनेक प्रकार का है। इसमें ऐसे नाटक भी लिखे गए, जो संसार के नाटक साहित्य में अनुपम हैं। मुख्य नाटककार भास, कालिदास, अश्वघोष, शूद्रक, विशाखदत्त, हर्ष, भवभूति, भट्टनारायण, दिङ्नाग, मुरारि, राजशेखर हैं। इनके अतिरिक्त भी अन्य नाटककारों ने अपनी उत्तम कृतियों से संस्कृत नाट्य परम्परा को समृद्ध किया और आज तक करते आ रहे हैं।

1. भास और उसके नाटक

सन् 1912 ई. से पहले कवि भास का नाम यत्र तत्र ग्रन्थों में मिलता तो था, परन्तु उनकी कोई भी रचना प्राप्त नहीं होती थी। सन् 1912 में त्रिवेन्द्रम में हस्तलिखित पुस्तकों का अन्वेषण करते हुए टी. गणपति शास्त्री को 13 रूपक प्राप्त हुए। उन सभी में भाषा, शैली, पात्र आदि की समानता देखते हुए यह निर्णय किया कि ये किसी एक की ही रचनाएँ हैं। उनमें से एक स्वप्न नाटक अथवा स्वप्नवासवदत्तम् नाटक भी था। बाद के ग्रन्थों में प्राप्त उद्धरणों तथा उल्लेखों से यह तो निश्चित हो जाता था कि स्वप्नवासवदत्तम् कवि भास की रचना है। इसी समानता के आधार पर यह निश्चय किया गया कि ये सभी 13 रूपक कवि भास के हैं। उनका सम्पादन और प्रकाशन 'भासनाटकचक्रम्' के नाम से त्रिवेन्द्रम में ही हुआ।

भास की चर्चा अनेक प्राचीन कवियों और लेखकों ने की थी, जिनमें कालिदास (मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना) बाण (हर्षचरित की प्रस्तावना), दण्डी (अवन्ती सुन्दरी कथा श्लोक 11), वाक्पतिराज (गुडवहो, गाथा 800) राजशेखर (सूक्तिमुक्तावली में उद्धृत पद्य) सगरनन्दी (नाटकलक्षणरत्नकोश), भोजदेव (शृंगार प्रकाश) अभिनवगुप्त (लोचन टीका) इत्यादि प्रमुख हैं।

भास का समय

इस विषय में भी बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वान् कालिदास को गुप्तकाल में चौथी शताब्दी में मानकर भास को उससे पूर्व पहली या दूसरी शताब्दी में रखते हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भास के 'नवं शरावं' इत्यादि श्लोक के मिलने से गणपति शास्त्री ने भास को ईसा पूर्व चौथी अथवा पाँचवीं शताब्दी में रखा है। कालिदास ने अपने नाटक मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना में 'भाससौमिल्लकविपुत्र' नामक कवियों को प्रथितयशस् कहा है। यदि कालिदास का समय ई. पू. प्रथम शताब्दी माना जाए तो भास का समय इससे पूर्व तो होगा ही। दक्षिण भारत से उत्तर

भारत तक भास का यश फैलते-फैलते उसके साधनों के अनुसार 2-3 शताब्दी का समय तो लगा ही होगा। इससे भास को ई.पू. चतुर्थ शताब्दी में माना जाए तो अनुचित न होगा।

भास की रचनाएँ

कवि भास ने विविध प्राचीन कथानकों को लेकर रचनाएँ की हैं। भास नाटकक्रम में संग्रहीत तेरह नाटक उनकी रचनाएँ हैं। कथानक के आधार पर उन्हें चार भागों में बाँटा जा सकता है —

- (क) रामायण से गृहीत कथानक वाले — अभिषेक नाटक, प्रतिमानाटक
- (ख) महाभारत से गृहीत कथावस्तु वाले — मध्यमव्यायोग, ऊरुभंग, पंचरात्र, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार, बालचरित।
- (ग) लोककथा और लोकजीवन से गृहीत नाटक — अविमारक, दरिद्रचारुदत्तम्।
- (घ) उदयन कथा पर आधारित नाटक — प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्तम्।

भास के सभी 13 नाटकों का संक्षिप्त परिचय

1. अभिषेक नाटक

इसमें मुख्यतः तीन राज्याभिषेकों की घटना है — बालिवध के पश्चात् सुग्रीव का अभिषेक, रावण वध के पश्चात् लंका में विभीषण का अभिषेक और लंका से लौटने पर राम का राज्याभिषेक। यह कथा छः अंकों में समाप्त होती है। प्रसिद्ध राम कथा के कुछ अंशों को कवि ने मौलिक रूप देने का प्रयत्न किया है। भास ने बालि और रावण के चरित्र को उच्च दिखाते हुए राम द्वारा उनके वध का औचित्य भी दिखाया है।

2. प्रतिमानाटक

दशरथ की मृत्यु के पश्चात् जब भरत ननिहाल से लौटते हुए अयोध्या में प्रवेश करने से पहले प्रतिमागृह में गए तो वहाँ अपने पिता दशरथ की प्रतिमा देखकर चकित हो गए। इस

घटना को महत्त्व देते हुए कवि ने राम के द्वारा सीता की अग्नि परीक्षा तक की घटनाओं को अयोध्या के प्रांगण में समेट दिया है।

3. मध्यमव्यायोग

यह एकांकी नाटक है। भीम की एक पत्नी हिडिम्बा नाम की राक्षसी थी। उसका पुत्र घटोत्कच था। घटोत्कच अपनी माता के लिए ब्राह्मण केशवदास के एक पुत्र को ले जाना चाहता था। ब्राह्मण का मध्यम पुत्र इसके लिए तैयार हुआ। वह मृत्यु से पहले पानी पीने और कुछ धर्म-कर्म करने लगा। घटोत्कच उसे देर करता देखकर मध्यम-मध्यम पुकारने लगा। उधर भीम अपने भाइयों में मध्यम था। वह आ गया। घटोत्कच उसे ही पकड़कर अपनी माता के पास ले गया। हिडिम्बा भीम को पहचान गई और उसने घटोत्कच से कहा कि यह तुम्हारे पिता हैं। इन्हें प्रणाम करो और क्षमा मांगो। इससे ब्राह्मण परिवार भी बच गया। इस नाटक में भावों की प्रबल अभिव्यक्ति तथा कोमल हास्य कथावस्तु के रोचक संगठन को और भी अधिक आकर्षक बना देते हैं।

4. ऊरुभंग

कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र में हुए भयानक युद्ध के अन्तिम दृश्य का चित्रण इस नाटक में है। इस रचना में 18 अक्षौहिणी सेना के अवशेष रूप एवं दुर्योधन का ऊरुभंग भीमसेन ने किया। उस समय के दृश्य तथा कृष्ण और बलराम की उसके विषय में प्रतिक्रिया तथा दुर्योधन के चरित्र की उदात्तता का चित्रण किया है।

5. पंचरात्र

यह तीन अंकों का नाटक है। इसमें पाण्डवों के वनवास के अन्तिम वर्ष के समय दुर्योधन ने यज्ञ प्रारम्भ किया। उसके प्रारम्भ में आचार्य द्रोण ने दुर्योधन से पाण्डवों को राज्य लौटाने को कहा, परन्तु दुर्योधन ने पाँच रात में पाण्डवों का पता लगाने की शर्त रखी। फिर

विराट नगरी पर आक्रमण किया गया। बृहन्नला वेषधारी अर्जुन ने कौरवों को हरा दिया, परन्तु पाण्डवों का पता लग गया। अभिमन्यु के पकड़े जाने पर दुर्योधन की चिन्ता को दिखाकर यहाँ भी दुर्योधन के चरित्र को तो उभारा गया है, परन्तु शकुनि की वक्रता उसे उस सौम्यता से हटा देती है।

6. दूतवाक्य

महाभारत का युद्ध प्रारम्भ होने से पहले कृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर दुर्योधन के पास गए थे। उसी घटना का वर्णन इस एकांकी नाटक में किया गया है। व्यंग्यपूर्ण वार्तालाप इसकी विशेषता है।

7. दूत घटोत्कच

इस छोटे से नाटक का कथानक कवि की अपनी कल्पना पर आश्रित है। अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् अर्जुन ने जयद्रथ आदि को मारने की प्रतिज्ञा की। उस समय कृष्ण का संदेश लेकर घटोत्कच कौरव शिविर में गया और धृतराष्ट्र दुर्योधन आदि के सामने कृष्ण का सन्देश सुनाया। इसमें भी वीररस की अभिव्यक्ति तथा व्यंग्यमय संवादों की प्रचूरता है।

8. कर्णभारम्

कर्ण द्वारा कौरव सेना का सेनापति बनने पर अर्जुन को बचाने के लिए इन्द्र किस प्रकार ब्राह्मणवेश में कर्ण से भिक्षा मांगने गया और कर्ण ने उसे अपने कवच और कुण्डल दान कर दिये, जिन पर उसकी रक्षा का भार था। इनके बदले में इन्द्र ने कर्ण को एक व्यक्ति को मारने वाली शक्ति प्रदान की। इस घटना का वर्णन रोचक एकांकी नाटक के रूप में कर्णभारम् में किया गया है।

9. बालचरितम्

इस नाटक के पाँच अंकों में कवि ने कृष्ण के बालकपन के समय किये गए अनेक पराक्रमपूर्ण कार्यों का रोचक वर्णन किया है। इसमें कंस को प्रधानता दी गई है।

10. अविमारक

यह 6 अंकों का नाटक है। इसकी कथावस्तु कविकल्पना पर आश्रित है, परन्तु कवि के अन्य नाटकों के समान इसका भी कथानिरूपण भास की शैली के अनुरूप है। इसमें राजकन्या कुरंगी और काशीराज की पत्नी सुदर्शना से अग्नि द्वारा उत्पन्न पुत्र अविमारक अथवा विष्णुसेन के परिणय तथा उसमें आने वाली लौकिक तथा अलौकिक बाधाओं के संघर्ष का वर्णन किया गया है।

11. दरिद्रचारुदत्त

इस नाटक में व्यापार में हानि हो जाने के कारण दरिद्र हुए चारुदत्त ब्राह्मण और नगर वधू वेश्या वसन्तसेना के प्रेम की कथा का वर्णन है। सम्भवतः इसी का आश्रय लेकर कवि शूद्रक ने मृच्छकटिकम् नाम के प्रकरण की रचना की थी। इसमें भास की शैली की अन्य विशेषताओं के अतिरिक्त उत्तम नाट्य तत्त्व भी हैं।

12. प्रतिज्ञायौगन्धरायण

उदयन और वासवदत्ता की कथा पर आश्रित नाटकों में से यह पूर्वकथा को प्रस्तुत करता है। इसमें यह दिखाया गया है कि वत्सराज उदयन का वासवदत्ता के मिलन और बन्दी बना लिए जाने पर उनको छुड़ाकर लाने के लिए प्रयत्न करने की प्रतिज्ञा उनके मन्त्री यौगन्धरायण ने क्यों की और उस प्रतिज्ञा का पालन कैसे किया? यह चार अंकों का नाटक वीर रस प्रधान है। इसका नायक यौगन्धरायण है। वासवदत्ता और उदयन की शृंगारमय कथा तो गौण रूप में ही आती है।

13. स्वप्नवासवदत्तम्

यह छह अंकों का नाटक है। कवि भास के रूपकों में यह श्रेष्ठ माना जाता है। कथानक की दृष्टि से यह प्रतिज्ञायौगन्धरायण का अवशिष्ट भाग है।

उज्जयिनी से प्रद्योतकुमारी वासवदत्ता को हरण कर अपने राज्य वत्स राज्य में लाने के अनन्तर राजा उदयन उनमें अतिशय आसक्त होकर राजकार्य से विमुख हो जाते हैं। फलस्वरूप वत्सराज्य का अधिक भाग उनका शत्रु आरुणि हर लेता है। तब उसको लौटाने के लिए मन्त्री यौगन्धरायण ने मगधराज की पुत्री पद्मावती के साथ उदयन का विवाह कराने के लिए उपाय सोचा। राजा उदयन के शिकार खेलने के लिए वन में जाने पर यौगन्धरायण ने रानी वासवदत्ता को मनाकर अपने तथा वासवदत्ता के अग्नि में जलकर मर जाने की वार्ता फैलाई।

अनन्तर उन्होंने स्वयं ब्राह्मण का वेश धारण किया और वासवदत्ता को अपनी बहन अवन्तिका बनाकर उन्हें राजकुमारी पद्मावती के पास न्यास (धरोहर) के तौर पर रखा। तब उनके कौशल से पद्मावती के साथ राजा उदयन का विवाह हुआ, परन्तु विवाह के अनन्तर भी राजा अपनी पूर्व पत्नी वासवदत्ता को नहीं भूल सके। पति के प्रणय को न पाने से पद्मावती को शिरोवेदना होती है। उनकी अस्वस्थता की खबर पाकर राजा उदयन समुद्रगृह में गये। वहाँ उनको न देखकर राजा उनकी शय्या पर सो गए। उधर पद्मावती की शिरोवेदना का समाचार पाकर वासवदत्ता भी वहीं आ जाती है और सोये हुए राजा को पद्मावती समझकर शय्या के एक भाग में बैठ जाती है। राजा स्वप्न में वासवदत्ता का नाम लेते हैं। तब वासवदत्ता को राजा की प्रतीति होती है। वह लटके हुए राजा के हाथ को शय्या पर रख देती है। राजा वासवदत्ता के स्पर्श से उन्हें पहचान कर पकड़ने का प्रयास करते हैं। वासवदत्ता उनसे हाथ छुड़ाकर भाग जाती है।

इस बीच में राजा उदयन के मन्त्री रुमण्वान् आरुणि को परास्त कर राजा का छीना हुआ राज्य लौटाते हैं। अनन्तर महासेन प्रद्योत के यहाँ से वासवदत्ता की धात्री वसुन्धरा और कंचुकी उनका सन्देश और वासवदत्ता और उदयन के विवाह का चित्र ले आते हैं। पद्मावती वासवदत्ता का चित्र देखकर राजा से “ऐसी ही सूरत की स्त्री मेरे पास है।” ऐसा कहती है और राजा के अनुरोध से अवन्तिका को बुलाती है। यौगन्धरायण भी उसी समय ब्राह्मण का छद्मवेश धारण कर बहन को लेने के लिए आ जाते हैं। वासवदत्ता को देखकर धात्री वसुन्धरा

पहचानती है और यौगन्धरायण भी राजा को सब वृत्तान्त बतलाते हैं। सब रहस्य खुल जाता है। मंगलमय परिणाम से सब प्रसन्न हो जाते हैं। राजा सपरिवार उज्जयिनी में प्रद्योत के पास जाने के लिए उद्यत होते हैं।

यह नाटक भास के समस्त रूपकों में सबसे प्रख्यात और श्रेष्ठ रचना है। नाट्यविधान भावों की अभिव्यक्ति भाषा की व्यञ्जकता, सरलता किन्तु सशक्तता सभी गुण भास को कालिदास के समकक्ष लाकर खड़ा कर देते हैं।

नाटककार भास का वैशिष्ट्य

भास ने पहले से प्रसिद्ध कथावस्तु लेकर उसको मौलिक रूप से प्रस्तुत किया। अनेक विषयों पर अनेक प्रकार के अनेक नाटक लिखे। इससे उनकी नाटकीय कुशलता का परिचय मिलता है। उनके नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत किए जाने योग्य हैं। पात्रों के चरित्र घटनाओं के विकास के साथ, पात्रों के परस्पर घात-परिघात के साथ विकसित होते हैं। पात्रों में अपने व्यक्तित्व की प्रधानता है जो सारी रचना पर छाया रहता है। वर्णनों में यथार्थता है, प्रवाहमयता और सजीवता है। अकृत्रिम शैली में, सरल भाषा में प्रयोग किया गया है। वैदर्भी रीति में उन्होंने यथास्थान प्रसाद, माधुर्य और ओज तीनों गुणों का निर्वाह किया है। सभी नाटकों में मुख्य रूप से शृंगार अथवा वीर रस का परिपाक सहज भाव से होता है। अलंकारों के प्रयोग में भी कवि अत्यन्त सहज और स्वाभाविक है। अतः अलंकृत होते हुए भी भाषा बोझिल नहीं है—

उपेत्य नागेन्द्र—तुरङ्ग—तीर्णे

तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम्।

विकीर्णवाणोग्रतरङ्गभङ्गे

महार्णवाभे युधि नाशयामि॥ (स्वप्न. 5.13)

भास के रूपकों को संस्कृत भाषा के प्राचीनतम उपलब्ध रूपक की श्रेणी दी गई है। इनमें नाट्य कला विकास के प्रारम्भिक रूप प्राप्त होते हैं। इसीलिए भरत के नाट्यशास्त्र के नियमों का अतिक्रमण इनमें स्वाभाविक रूप से हुआ है, फिर भी ये अत्यधिक रोचक तथा रंगमंच की दृष्टि से सफल रूपक हैं। कथानकों का चयन दर्शकों के मानस को बाँध लेता है। भाषा का नैसर्गिक प्रवाह हृदयावर्जक है, संवादों की संक्षिप्तता तथा संयत पद्य—प्रयोग अपना स्वतन्त्र प्रभाव डालते हैं।

रामायण—महाभारत जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थों की कथाओं को भी भास ने कलात्मक रूप देकर पहली बार नाट्य मंच पर उतारा। वर्णनात्मक जड़ता में मंचनीयता की चेतना का आधान होने से रसोद्भावन की प्रभूत भूमिका स्थापित हुई। जो लोककथा या उदयनकथा पर आश्रित रूपक हैं, वे भी भास की नाट्यकला के पूर्ण परिचायक हैं। भास को विशेष रूप से स्वप्नवासवदत्तम् के कारण ही ख्याति मिली। राजशेखर ने अपने सुभाषित में कहा है —

स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः।

अर्थात् भास के रूपकों की अग्निपरीक्षा (कठोर आलोचना) हुई तो स्वप्नवासवदत्तम् ही इस पर खरा उतरा। अन्य रूपक भी सामर्थ्यवान् हैं, किन्तु यह श्रेष्ठ है।

स्वप्नवासवदत्तम् के सन्दर्भ में भास ने कुछ ऐसी मौलिक कला दिखाई है जो इसे समुचित रूपक की अर्हता प्रदान करती है। इस नाटक में चार ऐसी उद्भावनाएँ गिनाई जा सकती हैं — प्रथमांक में ब्रह्मचारी का प्रवेश, चतुर्थ अंक में उदयन का धर्मसंकट, पंचम अंक में स्वप्न प्रदृश्य (जो इसके शीर्षक का कारण भी है) तथा षष्ठ अंक में अद्भुत रस का निवेश।

स्वप्नवासवदत्तम् के चतुर्थ अंक में एक ऐसी विषम परिस्थिति उपस्थित हुई है कि प्रमदवन में एक शिलातल पर उदयन विदूषक के साथ बैठा है। पास ही लतागुल्म में वासवदत्ता और पद्मावती दोनों स्त्रियाँ (उदयन की पत्नियाँ) छिपी हुई हैं। उदयन से विदूषक हठपूर्वक पूछता है कि उसकी दोनों पत्नियों में प्रियतरा कौन हैं? उदयन इसका उत्तर टालने का प्रयास करता है किन्तु विदूषक के हठ के समक्ष समर्पण करके उसे कहना ही पड़ता है। उधर दोनों स्त्रियाँ उत्तर सुनने के लिए कान लगाए बैठी हैं।

लेखक जानता है कि किसी एक को बढ़कर कहने का क्या परिणाम होगा। यदि पद्मावती को बढ़ाता है तो वासवदत्ता का हृदय टूट जाएगा और यदि वासवदत्ता को ऊँचा उठाता है तो पद्मावती तुरंत झाड़ी से प्रकट हो जाएगी, क्योंकि नवीन नायिका सपत्नी को अपने से बढ़कर सुनना कभी नहीं चाहेगी। इस विषम स्थिति या धर्मसंकट का समाधान भास ने मनोविज्ञान का आश्रय लेकर किया है —

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः।

वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति। (स्वप्न. 4.4)

पहले नवीन नायिका पद्मावती को प्रसन्न करें कि उसमें रूप शील और माधुर्य है, वह बहुत अच्छी लगती है। इतना सुनकर ही पद्मावती अपने आप में खो जाएगी, वासवदत्ता के विषय में उदयन क्या कहेगा — इसे सुनने में उसे कोई रुचि नहीं, किन्तु तपस्विनी वासवदत्ता तो अभी सुनने के लिए तत्पर ही है। उसका नाम बाद में लिया गया तो क्या हुआ? थोड़ी तपस्या ही और हो गई, किन्तु कहा गया — वासवदत्ता में आबद्ध मेरे मन को यह पद्मावती खींच नहीं पाती। बस, उसे सब कुछ मिल गया। इस प्रकार के नायक का उदाहरण कहाँ मिलेगा?

पंचम अंक का स्वप्न दृश्य अद्भुत है। एक पात्र (उदयन) स्वप्न में बोल रहा है, जबकि वहीं खड़ी वासवदत्ता उसका समुचित उत्तर देती है। दो पात्रों को पृथक मनःस्थितियों में रखकर यह नाट्य प्रयोग किया गया है। राजगृह के समुद्रगृह में यह घटना होती है। जब वासवदत्ता पलंग से उदयन के लटकते हाथ को ऊपर रखने का प्रयास करती है तो उदयन की नींद टूट जाती है। उसे वासवदत्ता के स्पर्श की अनुभूति होती है, भले ही वह हाथ छुड़ाकर भाग गयी है। स्वप्न में वासवदत्ता के प्राप्त होने तथा जीवित होने की सूचना का यह प्रतीकात्मक प्रयोग भास को भी अच्छा लगा तथा नाटक का शीर्षक भी उन्होंने इसी वृत्तान्त के अनुसार रखा। शीर्षक की वक्रता का यह समुचित पालन है।

भास ने जितने प्रकार के रूपकों का प्रयोग किया, उनसे रूपक—भेदों के उद्भव पर समुचित प्रकाश पड़ता है। स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, प्रतिमा नाटक, अभिषेकनाटक

— ये नाटक हैं तो अविमारक एवं दरिद्र चारुदत्त प्रकरण हैं। कृष्णगाथा पर आश्रित बालचरित भी सफल नाटक हैं, जबकि पंचरात्र समवकार श्रेणी का रूपक है। महाभारत पर आश्रित अन्य रूपक एकांकी हैं। वे अंक, व्यायोग — इन दो कोटियों में रखे गए हैं। इस प्रकार अनेक रूपक भेदों के प्राचीनतम रूप 'भास नाटक चक्र' में निहित हैं। प्रो. ध्रुव का कथन है कि भास के युग में आज के समान सभी रूपक प्रभेदों को सामान्य रूप से नाटक की संज्ञा दी जाती थी। लेखक अपनी इच्छा से अनेक प्रयोग का सम्पादन करता था। इनके प्रयोग भेद आगे चलकर रूपक भेद के निमित्त बन गए।

भास ने अपने रूपकों में संस्कृत के अतिरिक्त नियमों के अनुरूप प्राकृत का भी प्रयोग किया है। उनकी संस्कृत अत्यधिक सरल, दीर्घ समास रहित, अल्प अलंकारों से समन्वित प्रवाहपूर्ण और शुद्ध है। यत्र तत्र लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा का प्रभाव दर्शकों पर प्रचुर रूप से पड़ता है। इनकी रचनाओं में प्राकृत का प्रयोग गद्य में तो है, किन्तु पद्य एक भी नहीं है। इससे सूचित होता है कि उनके युग तक प्राकृत ने साहित्यिक रूप नहीं लिया था, बल्कि संस्कृत ही लोक व्यवहार में थी। सामान्य जनों में यत्र-तत्र प्राकृत का भी प्रयोग हो रहा था।

अलंकारों के प्रयोग भास ने अत्यन्त मर्यादित रूप में किये हैं। जहाँ आवश्यकता है तथा अभिव्यक्ति में चमत्कार लाने की सम्भावना है, वहीं पर भास की अलंकरप्रियता प्रकट होती है। अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास एवं विरोधाभास आदि अलंकार इस भाव के अनुकूल ही प्रयुक्त हैं तथा भास की शैली में सहज भाव प्रभावित होते हैं। उपमा का मौलिक प्रयोग इस लोकप्रिय पद्य में दर्शनीय है —

सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः।

सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता।। प्रतिमा. 2.7

दशरथ कहते हैं कि सायंकालीन सूर्य के समान राम वन चले गए। सूर्य के पीछे जैसे दिवस चला जाता है, उसी प्रकार राम के पीछे लक्ष्मण चले गए। सूर्य और दिवस की समाप्ति पर छाया नहीं दिखती, उसी प्रकार सीता भी दिखाई नहीं पड़ रही।

भास ने अपने रूपकों में कुल 24 छन्दों तथा 1092 पद्यों का प्रयोग किया है। इनमें अनुष्टुप् या श्लोक छन्द में 437 पद्य हैं जो वाल्मीकिय के प्रभाव को सूचित करते हैं। अन्य छन्द हैं — वसन्ततिलका (197) शार्दूलविक्रीडितम् (92) उपजाति (91) मालिनी (72) पुष्पिताग्रा (55) इत्यादि। कुछ अल्पप्रचलित छन्द भी भास ने प्रयुक्त किए हैं जैसे — वैश्वदेवी, सुवदना, दण्डक आदि। उनके कई रूपकों का मंगलाचरण मुद्रालंकार से युक्त है अर्थात् मुख्य रूप से आशीर्वचन और गौण रूप से कई पात्रों के नाम भी आ गए हैं। जैसे —

उदयनवेन्दु सुवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम्।

पद्मावतीर्णपूर्णो वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम्॥ स्वप्न 1.1

अर्थात् बलराम की वे दोनो भुजाएं तुम्हारी रक्षा करें जो (भुजाएं) उदयन काल के अभिनव चन्द्र के समान धवल हैं, प्रियतमा को आसव (मदिरा) दे चुकी हैं, खिले कमल के समान भरी-पूरी एवं वसन्त ऋतु के सदृश कमनीय हैं। इस पद्य के प्रत्येक चरण के आरम्भ में स्वप्नवासवदत्तम् नाटक के प्रमुख पात्रों के नाम भी आये हैं।

भावों को स्पष्ट करने के लिए भास ने असंख्य सामान्योक्तियों का प्रयोग किया है —
जैसे —

अकारणं रूपमकारणं कुलं महत्सु नीचेषु कर्म शोभते (पंचरात्र 2.33)

प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते (स्वप्न 6.7)

कुतः क्रोधो विनीतानां लज्जा वा कृतचेतसाम् (प्रतिमा 6.9)

कः कं शक्तो रक्षितं मृत्युकाले (स्वप्न 6.10)

जनयति खलु रोषं प्रश्रयोभिद्यमानः (चारुदत्त 1.14)

न न्यायं परदोषमभिधातुम् (प्रतिमा. 78)

निर्दोष दृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च (प्रतिमा 1.29)

नीते रत्ने भाजने को निरोधः (प्रतिज्ञा 4.2)

प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते (स्वप्न 1.7)

बहुविघ्नानि सुखानि (अविमारक)

मिथ्या प्रशंसा खलु नाम कष्टा (पंचरात्र 2.60)

शिक्षा क्षयं गच्छति कालापर्ययात् (कर्णभार 22)

सति च कुलविरोधे नापराध्यन्ति बालाः (पंचरात्र 3.4)

दुःखं न्यासस्य रक्षणम् (स्वप्न 1.10)

भास कालिदास के समय में पर्याप्त कीर्ति अर्जित कर चुके थे, जिससे कवि कुलगुरु कालिदास ने उन्हें 'प्रथितयशसाम' के विरुद्ध से विभूषित किया। जयदेव ने 'भासो हासः' कहकर उनकी रचनाओं की मनोरंजकता पर प्रकाश डाला है। सरल सरस भावों की अभिव्यक्ति तथा रंगमंच उपयुक्तता की दृष्टि से भास के रूपक संस्कृत साहित्य में अनुपम हैं। परवर्ती नाटककारों ने इनकी पद्धति का अनुकरण किया है।

महान् नाट्यकार कालिदास

नाटककार कालिदास की ख्याति सम्पूर्ण विश्व में फैली हुई है। इन्हें भारत का शेक्सपीयर कहा जाता है। नाटककार के रूप में कालिदास की प्रसिद्धि कवि रूप की अपेक्षा अधिक है। उनका शाकुन्तल नाटक विश्व नाटकों के परिगणित है। कालिदास और शेक्सपीयर दोनों ने अपनी कृतियों में मानव स्वभाव के विविध पहलुओं का तथा कोमल भावों से युक्त अन्तर्द्वन्द्वों को चित्रित किया है।

मानवता एवं यथार्थता के तत्त्वों ने दोनों की रचनाओं को विश्वमान्यता प्रदान की है। नाटक के स्वरूप, क्षेत्र तथा उद्देश्य को लेकर दोनों के दृष्टिकोण में महत्त्वपूर्ण समानता है। कालिदास के विचार में नाट्य में गुणत्रय एवं नाना रसों से युक्त लोकचरित दिखाया जाता है। यह भिन्न प्रकृति वाले लोगों के मनोरंजन का एक साधन है। शेक्सपीयर कहते हैं कि नाटक का उद्देश्य प्रकृति के दर्पण के रूप में कार्य करना है – सद्गुण को उसका स्वरूप, घृणा को उसका बिम्ब तथा युग की अवस्था एवं देह को उसका रूप एवं भार प्रदर्शित करना है।

कालिदास शेक्सपियर की भांति नाटक में वैविध्य के तत्त्वों को स्वीकार करते हैं। विभिन्न रुचियों के पात्र, अरुचियां तथा ऐसे ही अनेक भाव नाटक में विविध द्वन्द्वों का सृजन करते हैं। रचनाएं – कालिदास की तीन नाट्य कृतियाँ सुविख्यात हैं—मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम्। तीनों ही रचनाएं शृंगार रस प्रधान हैं तथा इनमें जीवन के विविध पहलुओं का प्रदर्शन किया गया है।

मालविकाग्निमित्रम्

यह पाँच अंकों में निबद्ध ऐतिहासिक नाटक है, जिसमें शृंगवंशी राजा अग्निमित्र तथा विदर्भराजकुमारी मालविका के विवाह की कथा है। महाकवि ने इसे स्वप्नवासवदत्तम् के आदर्श पर राजवंशों में वैवाहिक सम्बन्ध का प्रदर्शन करने के लिए लिखा था। राजप्रासाद में सांस्कृतिक गतिविधियों का समीचीन चित्रण इसमें किया गया है। विपत्तियों से ग्रस्त मालविका वन में वीरसेन (अग्निमित्र की महारानी धारिणी का भाई) को प्राप्त होती है, जो उसे धारिणी के पास पहुँचा देता है। वहाँ वह दासी रूप में रहती है, किन्तु राजा अग्निमित्र की आँखों में चढ़कर उसकी प्रेमिका बन जाती है। मालविका को नृत्य संगीत की शिक्षा देने के लिए गणदास की नियुक्ति की जाती है। यद्यपि मालविका को राजा से दूर रखने का प्रयास धारिणी करती है, किन्तु चित्र में उसे देखकर राजा उसके रूप से आकृष्ट हो जाता है।

विदूषक राजा के समक्ष मालविका को लाने का प्रयास करता है। इसी बीच नाट्याचार्य गणदास और हरदत्त के बीच योग्यता विषयक विवाद छिड़ जाता है, जिसके निर्णय का भार संन्यासिनी कौशिकी को मिलता है। कौशिकी के आदेश अनुसार दोनों आचार्य अपनी शिष्याओं के नृत्य और अभिनय कराने की बात मान लेते हैं। इसी से आचार्यों की योग्यता का निर्णय होगा।

द्वितीय अंक में मालविका नृत्य करती है, जिससे गणदास को विजयी घोषित किया जाता है। राजा इस प्रदर्शन को देखकर मालविका पर अत्यधिक मुग्ध हो जाते हैं। तृतीय अंक

में प्रमदवन में राजा और मालविका की भेंट होती है, यद्यपि इसमें छोटी रानी इरावती विघ्न डालती है और राजा पर कुपित भी होती है। चतुर्थ अंक में कुपित धारिणी मालविका और उसकी सखी को कारागार में डाल देती है। विदूषक सर्पदंश का बहाना बनाकर धारिणी की सर्पमुद्रायुक्त अंगूठी पा लेता है तथा उसी को दिखाकर कारागार से सखी सहित मालविका को मुक्त करवाता है। अन्तिम अंक में विदर्भ राज्य में आयी दो सेविकाओं से मालविका का परिचय मिलता है। पूरा विवरण जानकर रानी धारिणी अग्निमित्र से मालविका का विवाह करवा देती है।

यह सुखान्त नाटक एक परम्परागत कथानक को लेकर लेखक ने इसे सर्वथा मौलिक ढांचे में ढाल दिया है। इस रूपक में अग्निमित्र के पिता पुष्पमित्र (185 ई.पू.) के द्वारा निर्विघ्न अश्वमेधानुष्ठान एवं पुत्र वसुमित्र के द्वारा यवनों पर विजयलाभ दोनों ऐतिहासिक घटनाओं का निरूपण है। राजप्रासाद में होने वाले प्रेम-प्रपंच, विलास, कामसचिव (विदूषक) के कौशल आदि की कल्पना के द्वारा कालिदास ने कथानक को आनन्दमय तथा सजीव बना दिया है। यद्यपि इसमें कवि की प्रतिभा का उत्कर्ष नहीं मिलता, किन्तु बाह्य परिस्थितियों की सजावट से इसे बहुत सफलता मिली है। यहाँ कालिदास परम्परा भंग की बात करते हैं कि सब कुछ पुराना ही अच्छा हो, यह आवश्यक नहीं। नई रचनाएँ भी अच्छी होती हैं —

पुराणमित्येव न साधु सर्वं, न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते, मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः॥ (मालविका. 1.2)

कालिदास के शिक्षा विषयक सिद्धान्तों का प्रकाशन इस नाटक में सम्यक् प्राप्त होता है। उनकी दृष्टि में अच्छा शिक्षक वही है जिसमें ये दोनों गुण हों कि स्वयं विद्वान् हो और शिष्यों को भी योग्य बना सकता हो। केवल एक गुण से सम्पन्न होना पर्याप्त नहीं है —

श्लिष्टा क्रिया कस्यचिदात्मसंस्था

संक्रान्तिरन्यस्य विशेषयुक्ता।

यस्योभयं साधु स शिक्षकाणां

धुरि प्रतिष्ठापयितव्य एव॥ मालविका 1.16

एक अन्य श्लोक में गणदास के माध्यम से कालिदास कहता है कि जो अध्यापक नौकरी पा लेने पर शास्त्रार्थ से भागता है, दूसरों के अंगुली उठाने पर (निन्दित होने पर) भी चुप रह जाता है और केवल पेट पालने के लिए विद्या पढ़ता है, वह पण्डित नहीं, अपितु ज्ञान-विक्रेता वणिक् है —

लब्धास्पदोऽस्मीति विवादभीरो —

स्तितिक्षमाणस्य परेण निन्दाम्।

यस्यागमः केवलजीविकायै

तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति॥ मालवि. 1.17

इस नाटक के पाँच अंकों में क्रमशः पाँच सन्धियों का निर्वाह किया गया है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से विदूषक का शक्तिशाली चरित्र अंकित किया गया है, जो हर परिस्थिति का सामना करता है। राजा एक उदासीन प्रकृति का नायक है। मालविका कातर एवं कोमल स्वभाव की है। पात्रों के स्वभाव में यह वैविध्य नाटक में रुचि उत्पन्न करने में प्रमुख कारण बनता है। तीसरे अंक में त्रिकोणात्मक प्रेम के जटिल रूप को चित्रित किया गया है। इरावती, धारिणी एवं मालविका तीनों को एक ही समय में उपस्थित कर लेखक ने उनके अन्तर्द्वन्द्वों का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। वाक्कलह, स्थितिवैषम्य एवं विशेष रूप से निःसहाय एवं भीरु मालविका के कोमल पात्रों का आन्तरिक द्वन्द्व आदि अनेक नाटकीय तत्त्वों की दृष्टि से कालिदास की इस प्रथम कृति को नाट्य जगत् में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

विक्रमोर्वशीयम्

इस नाटक के पाँच अंकों में राजा पुरुरवस् तथा अप्सरा उर्वशी के प्रेम का कथानक है। इस तरह के प्रेम के कथानक वाली रचना को तोटक संज्ञा दी जाती है। इस रचना का नायक धीरोदात्त है तथा उसका प्रभाव देवलोक तक पहुँचा हुआ है। उसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की है। नायिका एक अप्सरा है, जो सौन्दर्य की प्रतिमा है। केशी नामक राक्षस के पंजे से

नायिका तथा उसकी सखी चित्रलेखा को छुड़ाकर राजा प्रथम दर्शन के समय ही नायिका के प्रेमपाश में बंध जाता है। उर्वशी से पृथक् हो जाने पर एक ओर उसके मन में टीस है, तो दूसरी ओर वह इस बात का निर्णय नहीं कर पाता कि उर्वशी भी उसे चाहती है या नहीं। भुर्जपत्र पर अंकित उर्वशी के प्रेम पत्र को पाकर उसे प्रसन्नता होती है। विदूषक की असावधानी से यह पत्र राजमहिषी औशीनरी के हाथ लग जाता है। अब राजा के सम्मुख कठिन परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि भले ही वह उर्वशी से प्रेम करता है, किन्तु वह सम्मान की पात्रा औशीनरी को भी कष्ट नहीं दे सकता।

देवलोक में अभिनय के समय उर्वशी के मुख से पुरुरवस् नाम के कारण बेतुकी बात निकल जाने पर उसे भरत मुनि के शाप का भाजन बनना पड़ता है। इन्द्र के बीच में पड़ने पर यह शाप इतना कठोर नहीं रहता तथा प्रथम सन्तति के बाद उर्वशी पुनः मर्त्यलोक से देवलोक में आने की अधिकारिणी बन जाती है। मृत्युलोक के राजा के औशीनरी प्रेम को देखकर पहले तो उर्वशी औशीनरी से ईर्ष्या करने लगती है, किन्तु परिस्थिति का सम्यक् आकलन कर औशीनरी अपने आपको राजा तथा उर्वशी के प्रेम में से हटा लेती है। पुरुरवस् और उर्वशी दोनों का मिलन होता है, किन्तु राजमहिषी के कारण उनके मन में अनेक तरंगें उत्पन्न होती हुई दिखाई पड़ती हैं।

प्रतिषिद्ध कुमार वन में प्रवेश करने के कारण उर्वशी लता के रूप में परिणत हो जाती है तथा विक्रमोर्वशीय का चतुर्थ अंक उर्वशी की खोज में राजा के प्रलापपूर्ण प्रयासों का चित्रण करता है। नाटकीय व्यापार के अभाव से ग्रस्त यह अंक अनिर्बन्ध प्रेममय गीत्यात्मकता के शिखरों को स्पर्श करता है। लता, भ्रमर, मृग, पर्वत, नदी आदि से अपनी प्रेमिका के विषय में प्रश्न करता हुआ राजा मारा—मारा फिरता है। एक आकाशवाणी को सुनकर राजा उसके सामने पड़े हुए हीरे को उठा लेता है, जिससे उसके मन में प्रेमिका के पुनर्मिलन की आशा बंधती है।

अन्ततोगत्वा उस हीरे की सहायता से उसे उर्वशी की प्राप्ति होती है, किन्तु यह मिलन भी क्षणिक ही है। राजा उर्वशी द्वारा गुप्त स्थान पर रखे हुए अपने पुत्र अयु को देख लेता है तथा उर्वशी के शाप का अन्त होता है। उर्वशी के वियोग को न सहन कर अपने पुत्र को

राज्य का भार सौंप राजा वन में जाने को उत्सुक होता है। इतने में देवर्षि नारद इन्द्र का सन्देश लेकर पहुँच जाते हैं, जिसके अनुसार उर्वशी को सदैव राजा के साथ रहने के लिए कहा जाता है। राजा का अभीष्ट पूर्ण होकर तोटक की समाप्ति हो जाती है।

इस नाटक में आरम्भ में दो नायिकाओं का अन्तर्द्वन्द्व दिखाया गया है, किन्तु यह अधिक व्यापक नहीं है। चतुर्थ अंक में पुरुरवस् का अन्तःसंघर्ष अपने चरम रूप को प्राप्त कर लेता है। अयु के दर्शन कराकर पुनः राजा के मन के संघर्ष के तार को छेड़ दिया जाता है। इस तरह नाटक में किसी न किसी रूप में संघर्ष का वातावरण बना ही रहता है।

कालिदास ने प्राचीन आख्यान में कई नई बातें जोड़ी हैं, जैसे भरतमुनि द्वारा उर्वशी को शाप देना, उपवन में उर्वशी का लता बन जाना, इन्द्र का उर्वशी को वर मिलना इत्यादि। वैदिक आख्यान (ऋग्वेद में पुरुरवा उर्वशी संवाद) में महाकवि कालिदास की इन कल्पनाओं ने इसे एक सफल नाटक का रूप दे दिया।

उर्वशी जब राक्षसों के भय से मूर्च्छित होकर पुनः चेतना प्राप्त कर रही थी, तब उसकी इस दशा के वर्णन में कवि ने कमनीय उत्प्रेक्षाओं की माला पिरो दी है –

आविर्भूते शशिनि, तमसा मुच्यमानेव रात्रिः

नैशस्यार्चिर्हुतभुज इव च्छिन्न भूयिष्ठ धूमा ।

मोहेनान्तर्वरतनुरियं लक्ष्यते मुक्तकल्पा

गङ्गारोधःपतन कलुषा गच्छतीव प्रसादम् ।। विक्रमो. 1.9

अर्थात् मूर्च्छा दूर होने पर आपकी सखी ऐसी लगती है कि जैसे चन्द्रमा के निकल जाने पर अन्धकार से मुक्त होती हुई रात्रि हो या रात के समय बिना धुँएँ वाली अग्नि की लपट हो या गंगा की धारा हो जो कगार (तट) से गिर जाने से मलिन होकर पुनः स्वच्छ हो गई हो।

संयोग शृंगार का चित्रण तृतीय अंक के अन्त में प्रकर्ष प्राप्त करता है। राजा उर्वशी को कहते हैं कि मेरे मनोरथ के पूर्ण होने से पहले तुम्हारे विरह में रातें सौ गुणी लम्बी लगती थीं, यदि वे अब तुम्हारे मिल जाने पर भी वैसे ही लम्बी लगें तो मैं अपने को भाग्यवान् समझूँ –

अनुपतनमनोरथस्य पूर्व

शतगुणितेव गता मम त्रियामा ।

यदि नु तव समागमे तथैव

प्रसरति सुभ्रु ततः कृती भवेयम् ।। विक्रमो. 3.22

विक्रमोर्वशीयम् का पूरा चतुर्थ अंक विप्रलम्भ की उद्भावना में समर्पित है। मेघदूत या रघुवंश (सर्ग 8) या कुमारसम्भव (सर्ग 4) के समान यह विलापमय है। उर्वशी के विरह में राजा का प्रलाप प्रायः कवित्वमय है। यहाँ कवि का नाट्यकार रूप गौण हो जाता है। इसमें अप्रत्याशित रूप से 76 पद्यों का प्रयोग है, जिनमें अधिकांश प्राकृत या अपभ्रंश के हैं। प्रकृति के विभिन्न उपादानों से राजा उर्वशी का पता पूछते हैं, किन्तु वह तो लता बन चुकी है।

राजा विक्षिप्त होकर मेघों को राक्षस समझते हैं, इन्द्रधनुष को राक्षस का धनुष, घोरवृष्टि को बाणों की वर्षा तथा बिजली को उर्वशी मानकर उर्वशी के अपहरण की आशंका में बड़बड़ाते हैं, किन्तु शीघ्र की उनका भ्रम दूर होता है कि ये तो प्राकृतिक उपदान हैं –

नवजलधरः सन्नद्धोऽयं न दृप्तनिशाचरः

सुरधनुरिदं दूराकृष्टं न नाम शरासनम् ।

अयमपि पटुर्धारसारो न बाणपरम्परा

कनकनिकषस्निग्धा विद्युत प्रिया मम नोर्वशी ।। विक्रमो. 4.7

अभिज्ञानशाकुन्तलम्

विश्व साहित्य में विख्यात इस नाटक में कालिदास ने अपने नाट्य कौशल का प्रकर्ष दिखाया है। एक सामान्य कथानक को परिवर्तित करके कवि ने नाटकीय रूप प्रदान कर उसे विश्वबन्ध बनाया है। जर्मन महाकवि गेटे ने इस नाटक के जार्ज फास्टर कृत जर्मन रूपान्तर (1791 ई.) को पढ़कर ही उसके विषय में एक समीक्षापूर्ण प्रशस्ति लिखी थी। तदनुसार इसमें

वसन्त और ग्रीष्म का स्वर्ग और पृथ्वी का ऐसा अभूतपूर्व समन्वय है, जो मन को परम तृप्ति प्रदान करता है। उधर शिलर ने भी हम्बोल्ट को सम्बोधित पत्र में लिखा है कि सम्पूर्ण ग्रीक साहित्य में स्त्री जीवन का इतना सुन्दर कवित्वमय चित्रण नहीं है, जो शकुन्तला की छाया को भी छू सके। इस प्रकार देश-विदेश में इसकी समीक्षा में लेखकों ने अपने भावों की अभिव्यक्ति की है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् सात अंकों का नाटक है। नाटककार ने महाभारत की नीरस कथा को सरसता से भरकर महाभारत के हीन चरित्रों को उदात्त बनाकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। पद्मपुराण में वर्णित कथानक इस नाटक के कथानक के अधिक निकट हैं। चतुर्थ अंक के विष्कम्भक में शकुन्तला की प्रेममय तन्मयता, दुर्वासा का शाप तथा अभिज्ञान दर्शन से प्रेम की स्मृति के पुनर्जागरण का प्रसंग नाटक का प्राण बन गया है। इसी प्रसंग से नाटक का यह नाम पड़ा है। शाप के प्रसंग में दुष्यन्त व शकुन्तला के चरित्रों में भव्यता एवं गरिमा आ गई है। चतुर्थ अंक तो इस नाटक का सर्वश्रेष्ठ अंक है। कण्व की व्यग्रता, अनसूया तथा प्रियंवदा की आनन्द में परिणत चिन्ता, कण्व का राजा के नाम संदेश और भावी गृहलक्ष्मी को उपदेश तथा आश्रम की नीरवता में विविध भाव और घटनाएँ ऐसी मार्मिकता तथा प्रगाढ़ सुकुमारता से चित्रित हुई हैं कि प्रतीत होता है कि यह अंक मानो शब्द निर्मित मानव हृदय ही हो।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् का संक्षिप्त कथा सार

प्रथम अंक

नान्दी पाठ के पश्चात् सूत्रधार ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करता है और राजा दुष्यन्त का उल्लेख करता है। तत्पश्चात् आश्रम के मृग का अनुसरण करते हुए रथ पर बैठे हुए धनुर्धारी दुष्यन्त का सारथी के साथ प्रवेश। राजा मृग को मारना ही चाहता है कि इतने में एकतपस्वी का प्रवेश। तपस्वी राजा को सूचित करता है कि यह आश्रम का मृग है, अतः इसे न मारें। राजा कहना मान लेता है। तपस्वी उसे आशीर्वाद देता है कि तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र हो और

राजा से प्रार्थना करता है कि आश्रम में जाकर अतिथि सत्कार स्वीकार करें। कुलपति कण्व सोमतीर्थ गए हैं और शकुन्तला अतिथि सत्कार का काम करती है। राजा सारथी को आश्रम के बाहर छोड़कर साधारण वेश में आश्रम जाता है। वहाँ वह वृक्षों में जल डालती हुई तीन सुन्दर कन्याओं को देखता है। उनमें से एक शकुन्तला है। राजा उस पर आसक्त हो जाता है। एक भौंरा शकुन्तला को तंग करता है और वह रक्षा की प्रार्थना करती है। राजा जो अब तक वृक्ष की ओट में छिपा हुआ था, सामने आता है और उन तीनों से वार्तालाप करता है। बातचीत से उसे ज्ञात होता है कि शकुन्तला विश्वामित्र और मेनका की पुत्री है तथा इस परित्यक्ता को ऋषि कण्व ने पाला है। यह क्षत्रिय कन्या है। अतः राजा उससे विवाह का विचार दृढ़ करता है। राजा अपने राजत्व को प्रकट नहीं करता। इसी बीच आश्रम में विक्षुब्ध हाथी का प्रवेश। राजा का अपने सैनिकों को रोकने के लिए प्रस्थान। राजा पर आसक्त शकुन्तला का प्रियंवदा और अनसूया नामक अपनी दोनों सखियों के साथ प्रस्थान।

द्वितीय अंक

शकुन्तला पर आसक्त राजा का कामी की अवस्था में प्रवेश। शिकार खेलने से तंग आए हुए विदूषक को अपने विचार प्रकट करना। राजा शिकार खेलने का विचार छोड़ता है और सेनापति को भी मना करता है तथा सैनिकों को आदेश देता है कि वे आश्रमवासियों को कोई दुःख न दें। वह विदूषक को सूचित करता है कि वह शकुन्तला पर आसक्त है। वह विदूषक से कहता है कि कोई बहाना बताओ, जिससे फिर आश्रम में कुछ समय रुकना हो सके। भाग्यवश दो ऋषि कुमारों का प्रवेश और राजा से प्रार्थना कि राक्षसों से यज्ञ के रक्षार्थ वे कुछ समय आश्रम में रुकें। राजा की स्वीकृति। राजधानी से दूत का आगमन और माता द्वारा राजा को बुलावा भेजना। विदूषक राजधानी में रानियों को यह घटना न बतावे, अतः राजा का उसको कथन कि यह शकुन्तला से प्रेम की सब बातें केवल हँसी मात्र है, वास्तविक नहीं।

तृतीय अंक

शकुन्तला भी दुष्यन्त के प्रति आसक्ति के कारण अस्वस्थ है और फूलों की शय्या पर लेटी हुई है। कामपीड़ित अवस्था में राजा का प्रवेश। पेड़ों की ओट में छिपकर उसका शकुन्तला और उसकी सखियों की बातों को सुनना। शकुन्तला का स्वीकार करना कि वह दुष्यन्त पर आसक्त है और उससे विवाह के बिना जीवित नहीं रह सकेगी। अवसर पाकर राजा का सामने आना और शकुन्तला के प्रति अपने प्रेम की घोषणा करना। राजा और शकुन्तला को एकान्त में छोड़कर दोनों सखियों का प्रस्थान। राजा के द्वारा गन्धर्व विवाह का प्रस्ताव। शकुन्तला की आनाकानी, शान्ति जल लेकर आश्रम की स्वामिनी गौतमी का प्रवेश। राजा का वृक्ष की ओट में छिपना। गौतमी का शकुन्तला को लेकर जाना। यज्ञ में राक्षसों के विघ्न को दूर करने के लिए राजा का प्रस्थान।

चतुर्थ अंक

इस बीच में राजा का शकुन्तला के साथ गान्धर्व विवाह। राजा का अपनी राजधानी के लिए प्रस्थान के समय शीघ्र ही शकुन्तला के लिवा लाने के लिए योग्य व्यक्ति को भेजने का आश्वासन। राजा का प्रस्थान। शकुन्तला राजा के ध्यान में मग्न कुटी में बैठी है। दुर्वासा ऋषि का अतिथि रूप में आगमन। उनका आतिथ्य न करने पर क्रुद्ध ऋषि का शकुन्तला को शाप कि “जिसको स्मरण करके तू मुझ आए हुए तपस्वी की ओर ध्यान नहीं दे रही, वह याद दिलाने पर भी तुझे नहीं पहचानेगा।” प्रियवंदा का ऋषि को मनाना और दुर्वासा का आश्वासन कि पहचान का कोई आभूषण दिखाने पर शाप का प्रभाव समाप्त हो जाएगा। प्रियवंदा और अनुसूया दुर्वासा के शाप की बात न शकुन्तला को बताती है और न किसी अन्य को। वे समझती हैं कि राजा की अंगूठी शकुन्तला के पास है, इसलिए राजा शकुन्तला को पहचान लेगा और शाप का कोई प्रभाव नहीं हो सकेगा।

तीर्थ यात्रा से लौटने पर ऋषि कण्व को आकाशवाणी द्वारा ज्ञात होता है कि शकुन्तला का गान्धर्व विवाह राजा दुष्यन्त से हुआ है और वह गर्भिणी है। ऋषि इस विवाह का समर्थन

करते हैं। दुर्वासा के शाप के प्रभाव के कारण राजा शकुन्तला को सर्वथा भूल जाता है और उसे लिवाने के लिए किसी व्यक्ति को नहीं भेजता।

शकुन्तला को गर्भ—चिह्न प्रकट हैं, अतः उसे राजा के पास भेजने का प्रबन्ध किया जाता है। शकुन्तला की विदाई की तैयारी होती है। वनवृक्षों द्वारा आभूषण और रेशमी वस्त्र आदि प्राप्त होते हैं। शकुन्तला अपनी सखियों, वन—मृगों आदि से विदाई लेती है। यहाँ वियोग का प्रभावोत्पादक वर्णन हुआ है। ऋषि कण्व द्वारा शकुन्तला का ऋषि से करुणापूर्ण मिलन और विदाई। शकुन्तला के साथ गौतमी और दो तपस्वियों का प्रस्थान। शकुन्तला को पति के पास भेजकर ऋषि को हार्दिक शान्ति प्राप्त होती है।

पंचम अंक

शार्ङ्गरव, शारद्वत और गौतमी शकुन्तला को लेकर राजद्वार पर पहुँचे हैं। राजा के आदेशानुसार वे महल में प्रवेश करते हैं। दुर्वासा के शाप के प्रभाव के कारण राजा शकुन्तला से विवाह की सारी बात भूल चुका है। पारस्परिक अभिनन्दन के पश्चात् शार्ङ्गरव ने निवेदन किया कि आप दोनों के गान्धर्व विवाह का ऋषि कण्व ने समर्थन किया है और इसको आपके पास भेजा है। आप इसे स्वीकार करें। राजा यह सुनकर आश्चर्यचकित हो जाता है और शकुन्तला से विवाह की घटना को असत्य बताता है। गौतमी शकुन्तला का धूँधट हटाती है, परन्तु राजा उसे नहीं पहचानता। शकुन्तला ने राजा की दी हुई अंगूठी को दिखाकर उसे विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया, परन्तु वह अंगूठी रास्ते में ही शकुन्तला के हाथ से गिर गई थी, अतः उसका यह उपाय भी निरर्थक रहा। शार्ङ्गरव और राजा में आवेशपूर्ण वार्तालाप होता है। राजा शकुन्तला को स्वीकार नहीं करता। पुरोहित ने शकुन्तला को पुत्र जन्म तक अपने घर रखने का प्रस्ताव किया। शकुन्तला को वहीं छोड़कर उसके साथी चले जाते हैं। शकुन्तला अपने आपको कोसती हुई रोती है। उसी समय एक अप्सरा आकर उसे उड़ा ले जाती है। यह सुनकर सभी आश्चर्यमग्न हो जाते हैं। राजा खिन्न हृदय और चिन्तामग्न है।

षष्ठ अंक

शकुन्तला के हाथ से शचीतीर्थ के जल में गिरी हुई अँगूठी एक धीवर को मिलती है। वह उसे बेचने के लिए बाजार में आया। राजपुरुषों ने उसे चोर समझ कर पकड़ लिया और निर्णय के लिए राजा के पास ले गए। राजा ने धीवर को पुरस्कार देकर छोड़ दिया। उस अँगूठी को देखते ही राजा पर शाप का प्रभाव समाप्त हो गया और उसे शकुन्तला से विवाह की सारी घटना स्मरण हो आई। वह अत्यधिक दुःखित रहने लगा। मेनका की एक सखी सानुमती अदृश्य रूप में राजा के पास आकर उसकी अवस्था को देखती है। राजा विदूषक से वार्तालाप करता है और शकुन्तला के अधूरे चित्र को मँगाकर पूरा करने का प्रबन्ध करता है। इसके पश्चात् प्रतिहारी मन्त्री का एक पत्र लाती है कि धनमित्र नामक एक व्यापारी नौका टूट जाने से समुद्र में मर गया। उसके सन्तान नहीं है, अतः उसका धन राजकोश में जाएगा। राजा यह पढ़कर अत्यन्त दुःखित होता है कि सन्तानहीन होने के कारण उसका धन भी दूसरे के हाथ पड़ेगा। वह मूर्च्छित हो जाता है। इसी समय इन्द्र के सारथि मालति का आगमन होता है। वह इन्द्र का सन्देश राजा को सुनाता है कि दैत्यों के नाश के लिए इन्द्र ने आपको तुरन्त बुलाया है। राजा इन्द्र के रथ पर चढ़कर स्वर्ग के लिए प्रस्थान करता है।

सप्तम अंक

राजा ने दानवों पर विजय पाई। इन्द्र ने बड़े समारोह के साथ राजा को विदाई दी। स्वर्ग से लौटते समय राजा ने हेमकूट पर्वत पर मारीच ऋषि आश्रम देखा। वह ऋषि को प्रणाम करने के लिए उतर पड़ा। मालति ऋषि से मिलने गया, उसी समय राजा को एक अद्भुत बालक दिखाई पड़ा, जो शेर के बच्चे के दांत गिनने का प्रयास कर रहा था और उसे खेल-खेल में तंग कर रहा था। बालक की आकृति राजा से बिल्कुल मिलती हुई थी। राजा उस पर पुत्रवत् प्रेम करने लगा। बालक भी राजा का कहना मानने लगा। बालक के साथ की तपस्विनी से उसे ज्ञात हुआ कि बालक की माता का नाम शकुन्तला है। बालक पुरुवंशी है। उसकी माता को उसके पिता ने छोड़ दिया है। अपराजिता नाम की औषधि की घटना से उसे

ज्ञात हुआ कि वह बालक उसका ही पुत्र है। शकुन्तला सामने आती है और उसे प्रणाम करती है। राजा शकुन्तला के पैरों में पड़कर अपने अपराध के लिए क्षमा याचना करता है।

राजा और शकुन्तला मारीच ऋषि के दर्शनार्थ जाते हैं। मारीच ने बताया कि दुर्वासा के शाप के कारण राजा ने शकुन्तला को नहीं पहचाना। अँगूठी देखते ही शाप समाप्त होने से उसे शकुन्तला की स्मृति आई। उसने राजा को निर्दोष बताया तथा दोनों को आशीर्वाद दिया कि इन्द्र के रथ पर उन्हें राजधानी भेजा। वहाँ वे दोनों सुखपूर्वक रहने लगे। भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

कालिदास का नाट्य वैशिष्ट्य

कालिदास के तीनों नाटक सुखान्त हैं। सभी का प्रतिपाद्य विषय शृंगार है। मालविकाग्निमित्र कवि की प्रथम कृति होने पर भी कला की दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना है। इसका नायक अग्निमित्र ऐतिहासिक व्यक्ति है जो शुंगवंश के प्रवर्तक सेनापति पुष्पमित्र का पुत्र है। यवन आक्रमणकारियों को पराजित कर पुष्पमित्र ने अश्वमेध यज्ञ किया। इस संक्षिप्त ऐतिहासिक वृत्त को लेकर कालिदास ने उसे वैचित्र्यपूर्ण प्रसंगों से सम्पन्न करने में अपने नाट्यकौशल का परिचय दिया है।

विक्रमोर्वशीय और अभिज्ञानशाकुन्तल नाटकीय वस्तु पौराणिक इतिवृत्त के आधार पर प्रतिष्ठित है। इनमें कवि कालिदास ने महाभारत के पौराणिक उपाख्यानों को लेकर उसे अपनी अद्भुत कल्पनाशक्ति से अनुपम नाटकीय रूप प्रदान किया है।

नायक-नायिका संबंध की दृष्टि से कालिदास ने तीनों नाटकों में एक समानता दिखाई देती है। इन नाटकों में नायिका, भले ही मालविका हो, उर्वशी हो अथवा शकुन्तला हो सर्वप्रथम दयनीय अवस्था में उपस्थित होती है। मालविका जैसी सुन्दरी को दासी के रूप में देखकर अग्निमित्र उसके प्रति सदयभाव का अनुभव करता है। इसी प्रकार पुरुरवस् दानवों द्वारा अपहृत उर्वशी को छुड़ाकर उसे उपकृत करता है। दुष्यन्त भी भौरे के विघ्न से आतंकित

शकुन्तला की रक्षा करता है। नायक के उपकार के प्रति कृतज्ञता के रूप में नायिका का आकर्षण चित्रित करना कालिदास की वस्तुयोजना का प्रथम बिन्दु है।

विक्रमोर्वशीय तथा अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रेम की प्रथम अवतारणा के चित्रण में एक मौलिक अन्तर दिखाई देता है। विक्रमोर्वशीय में पुरुरवस् के शौर्य तथा रूप के कारण उर्वशी पहले मोहित होती है बाद में पुरुरवस, किन्तु शाकुन्तल में दुष्यन्त में ही पहले पहल पूर्वरग का चित्रण किया गया है। कालिदास ने धीरोदात्त नायक दुष्यन्त के चरित्र में कामुकता के दोष को दूर करने के लिए अनेक प्रयास किए हैं। दुष्यन्त की यह उक्ति –

“सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः।”

ऐसा ही एक प्रयास है तथा दूसरा प्रयास दुर्वासा के शाप की योजना के रूप में है।

कालिदास की नाट्यकला का प्रधान लक्ष्य हैं ‘रसव्यंजना’। इसी कारण कालिदास के पात्रों के चरित्र-चित्रण में हमें शेक्सपीयर तुल्य चरित्रों की मनोवैज्ञानिक स्थिति का, उनके अन्तर्द्वन्द्वों का परिचय नहीं मिलता। वीर तथा कोमल हृदय पुरुरवस् रसिक-शिरोमणि तथा वर्णाश्रम धर्म का व्यवस्थापक दुष्यन्त, मुग्धा मालविका, रति विशारदा उर्वशी के चरित्रों के साथ कालिदास ने उस शकुन्तला का भी चित्रण किया है जो आरम्भ के तीन अंकों में तेजी से प्रणय व्यापार करती है, पर अन्त में उस दोष को तपस्या की आँच में तपाकर अपने स्वर्णिम चरित्र की भास्वरता को स्पष्ट करती है।

कालिदास के नाटक भावनावादी अधिक हैं, किन्तु वे यथार्थ के धरातल को नहीं छोड़ते। काव्य की भाँति, ये आदर्शवाद के वातावरण का सृजन अवश्य करते हैं, परन्तु लम्बे संवाद, अतिशय भावोद्रेक या प्रकृति वर्णन तथा पाण्डित्य प्रदर्शन आदि के द्वारा उत्तरवर्ती नाटकों के समान वे सामाजिकों की औत्सुक्य प्रवृत्ति की उपेक्षा नहीं करते। इसी कारण ये दृश्य काव्य के सफल निदर्शन सिद्ध हुए हैं तथा इन्हें बार-बार रंगमंच के लिए चुना जाता है। एक वाक्य में कहना हो तो कालिदास के नाटक काव्य तथा नाट्यकला दोनों ही दृष्टि से अनुपम हैं। कहा गया है –

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।

तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम् ।।

अर्थात् काव्यों में नाटक रमणीय होता है, उन नाटकों में कालिदास का अभिज्ञानशाकुन्तलम् रमणीय है, उसमें भी चतुर्थ अंक तथा चतुर्थ अंक के चार श्लोक अत्यन्त रमणीय कहे गए हैं।

चतुर्थ अंक इस नाटक का मर्मस्थल है, जहाँ से कहानी मुड़ती है। पार्थिव देह आध्यात्मिक दिशा में मुड़ता है। शकुन्तला के पतिगृहगमन की वेला का मार्मिक चित्र इस अंक में कवि ने प्रस्तुत करके 'नियतिकृत नियम रहिता' कविनिर्मिति का उत्कर्ष दिखाया है। साथ ही प्रकृति और मानव का सामंजस्य वात्सल्य का अनुपम उन्मेष, संस्कृति की उदात्तता (कण्व के उपदेशों में) तथा आशीर्वाद की पावनता का प्रतिपादन इस अंक का वैशिष्ट्य है।

कण्व तपस्वी होकर भी विकल है। (यास्यत्मद्य शकुन्तलेति 4.6) तब गृहस्थों की पुत्री की प्रथम विदाई के समय की वेदना कैसी होती होगी। शकुन्तला वृक्षों को तृप्त किये बिना जल पीने का उपक्रम नहीं करती थी (पातु न प्रथमं व्यवस्यति. 4.9), उनमें प्रथम कुसुमोद्गम पर समारोह मनाती थी वही आज जा रही है। कण्व के उपदेशों में शकुन्तला के कर्तव्यों की तालिका है (शुश्रुषस्व गुरुन् 4.18), तो दुष्यन्त के दिये गए मार्मिक सन्देश भी हैं। (अस्मान्साधु विचिन्त्य 4.17)। ये चारों पद्य इस अंक को उस पद पर प्रतिष्ठापित करते हैं, जो काव्य और संस्कृति के युगपत् समावेश के कारण उदात्त तथा वांछनीय हैं।

कालिदास ने इस नाटक में प्रेम का आरम्भ तो भौतिक आकर्षण से दिखाया है, क्योंकि शकुन्तला को "अनाघ्रातं पुष्पं किलयमलूनं कररुहैः" (2.10) इत्यादि के रूप में प्रकट करते हुए रूपासक्ति का विषय बनाया है, किन्तु विरह की अग्नि में नायक-नायिका को तपाकर इस प्रेम को आत्मिक बनाने का सफल प्रयास किया है। जो शारीरिक आकर्षण मालिनी नदी के तटवर्ती कण्वाश्रम में आरम्भ होता है, उसकी परिणति पृथ्वी के ऊपर अन्तरिक्षस्थ मारीच आश्रम में होती है, जहाँ समस्त भौतिक रत्नों की उपस्थिति में उच्चरत साधना किसी परम साध्य की प्राप्ति के लिए की जाती है।

शकुन्तला का उपाख्यान महाभारत के आदिपर्व (अध्याय 67–74) में वर्णित है, किन्तु कवि ने उस नीरस आख्यान को काव्यमय बनाने के लिए कई परिवर्तन किए हैं। जैसे – कण्व ऋषि की सोमतीर्थ यात्रा, शकुन्तला का जन्म वृत्तान्त, भ्रमर बाधा, अंगूठी का वृत्त, दुर्वासा का शाप, शकुन्तला का परित्याग तथा अनुवर्ती घटनाएँ। इन परिवर्तनों से नाटक का कथानक हृदयावर्जक हो गया है तथा नायक–नायिका के चरित्र उत्कर्षयुक्त हुए हैं।

महाभारत का दुष्यन्त कामुक, छली, समाजभीरु और स्वार्थी है, जबकि इस नाटक में वह धीरोदात्त के सभी गुणों से युक्त आदर्श प्रेमी, राजा, वीर, विनीत तथा धर्मप्राण है। शकुन्तला भी मूल कथा में निर्लज्ज, धृष्ट और स्वार्थमयी है, यहाँ कालिदास ने उसे मुग्धा नायिका का रूप दिया है। वह आद्यन्त अपनी शान्त प्रकृति में रहती है।

कालिदास के नाटकों से कुछ सुभाषित वाक्य

कालिदास के नाटकों में कुछ सुभाषित वाक्यों के द्वारा उनके जीवन दर्शन की झलक ली जा सकती है। जैसे –

बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः (अभि. 1.2)

सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः (अभि. 1.21)

स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति (अभि. 3.8 के बाद)

गुर्वपि विरहदुःखम् आशाबन्धः साहयति (अभि. 4.16)

भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि (अभि. 5.2)

औत्सुक्यमात्रमवसाययति प्रतिष्ठा, क्लिश्नाति लब्ध परिपालनवृत्तिरेव (अभि. 5.2)

अतनुषु विभनेषु ज्ञातयः सन्तु नाम (अभि. 5.8)

अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकारः (विक्रमो. 1.7)

मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः (माल. 1.2)

आकृतिविशेषेषु आदरः पदं करोति (माल 1.3)

अनुरागोऽनुरागेण परीक्षितव्यः (माल. 1.13 के बाद)

अश्वघोष और शारिपुत्रप्रकरण

अश्वघोष का एक नाटक शारिपुत्र प्रकरण प्राप्त होता है, वह भी अपूर्ण अथवा खण्डित अवस्था में। मध्य एशिया से मिले कुछ तालपत्रों पर यह लिखा हुआ मिला है। प्रो. ल्यूडर्स ने इन तालपत्रों से एकत्र करके इस नाटक का जर्मनी से प्रकाशन किया है। यह नाटक सम्भवतः नौ अंकों में समाप्त होता था। इसमें शारिपुत्र और मौद्गलायन के द्वारा बौद्ध धर्म को स्वीकार करने की घटना का वर्णन किया गया है। इसमें मानव पात्रों के अतिरिक्त स्मृति, कीर्ति, धृति आदि के प्रतीक पात्रों का प्रयोग सबसे पहले किया गया था। जैसा कि महाकाव्य प्रकरण में कहा जा चुका है कि अश्वघोष का उद्देश्य काव्य के माध्यम से बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन था। वही बात इस नाटक के लिए भी उपयुक्त है। पूरा नाटक न मिलने के कारण पूरा कथानक ज्ञात नहीं होता। जितना भी नाटक प्राप्त है उसके आधार पर यही कहा जा सकता है कि महाकाव्यों के समान नाटक में भी कवि ने उसी संयत शैली का प्रयोग किया, जो सरल, प्रवाहमय तथा चित्रमय है। मनोभावों के प्रतीक पात्रों के माध्यम से कवि के दर्शन तथा मनोविज्ञान के ज्ञान का प्रदर्शन होता है।

नाट्यकार शूद्रक और मृच्छकटिकम्

शूद्रक का परिचय उनके द्वारा रचित प्रकरण 'मृच्छकटिकम्' की प्रस्तावना में मिलता है। इसके अनुसार वे एक द्विजश्रेष्ठ नृपति थे। उनकी चाल हाथी के समान, नेत्र चकोर के समान तथा मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर था। वे ऋग्वेद, सामवेद, गणित, हस्तशिक्षा, व्यापार एवं नृत्य संगीत आदि 64 कलाओं में दक्ष थे। उन्होंने सौ वर्ष तथा दस दिन राज्य करके, बाद में अपने पुत्र को राज्य देकर अग्निप्रवेश कर लिया था। अपनी ही मृत्यु के विषय में कोई कवि कैसे

लिख सकता है? अतः कतिपय विद्वानों ने इस लेख की यथार्थता पर सन्देह किया है तथा मृच्छकटिक का रचयिता अन्य किसी कवि को माना है।

स्कन्दपुराण, वेतालपंचविंशति, कथासरित्सागर, कादम्बरी, हर्षचरित तथा दशकुमार चरित आदि ग्रन्थों में विभिन्न शूद्रकों के उल्लेख मिलते हैं। इन उल्लेखों में कौन सा उल्लेख ऐतिहासिक है और किसका संबंध मृच्छकटिक के साथ जोड़ा जाए—ये दोनों विवादास्पद विषय हैं। अभिलेखों तथा साहित्य के आधार पर शूद्रक का ऐकात्म्य संबंध डॉ. स्मिथ 240 ई. पू. के आन्ध्रवंशीय सिमुक के साथ, पं. चन्द्रबली पाण्डेय ईसा की दूसरी शताब्दी के आन्ध्रवंशीय वासिष्ठीपुत्र पुलुमावि के साथ, प्रो. स्टेनकोनो आभीरवंशीय राजकुमार शिवदत्त के साथ तथा डॉ. फ्लीट 248—49 में चेदिवंश के संस्थापक ईश्वरसेन के पिता के साथ स्थापित करते हैं।

वस्तुतः शूद्रक ने भास के नाटक 'दरिद्र चारुदत्त' को परिवर्द्धित करके उसमें आर्यक के विद्रोह की राजनैतिक कथा का समावेश कर उसे मृच्छकटिक का स्वरूप प्रदान किया। अतः इस प्रकरण का रचनाकाल भास के पश्चात् दूसरी—तीसरी शताब्दी ईस्वी में या इसके बाद माना जा सकता है।

मृच्छकटिकम्

यह प्रकरण चारुदत्त और वसन्तसेना की कल्पित प्रेम कथा के आधार पर लिखा गया है। चारुदत्त उज्जयिनी का एक सम्मानित ब्राह्मण है जो दरिद्र है। वसन्तसेना उज्जयिनी की एक गणिका है, जो रूपवती एवं गुणवती है, किन्तु धन की अभिलाषा नहीं रखती तथा चारुदत्त से प्रेम करती है। संक्षेप में कथानक इस प्रकार है —

प्रथम अंक—अलंकार न्यास

चारुदत्त के मित्र जूर्णवृद्ध का दिया हुआ शाल लेकर विदूषक (मैत्रेय) आता है। तभी चारुदत्त विदूषक से चौराहे पर देवियों को बलि देने के लिए जाने को कहता है, किन्तु विदूषक आनाकानी करता है और चारुदत्त दरिद्रता के दोषों को स्मरण करने लगता है। फिर विदूषक

रदनिका (सेविका) को साथ लेकर जाने के लिए तैयार होता है। इस समय राजमार्ग में विट, शकार आदि के द्वारा पीछा की जाती हुई वसन्तसेना चारुदत्त के घर के समीप आ जाती है और घर में प्रवेश करती है। जब विदूषक और रदनिका बाहर जाते हैं तो शकार रदनिका को वसन्तसेना जानकर पकड़ लेता है और विट के कहने से छोड़ता है। वसन्तसेना किसी भावी लाभ की आशा से अपने आभूषण चारुदत्त के घर पर रख देती है तथा चारुदत्त उसे घर पहुँचा देता है।

द्वितीय अंक – द्यूतकार संवाहक

वसन्तसेना अपनी चेटी मदनिका के साथ चारुदत्त संबंधी वार्तालाप कर रही है। इसी समय संवाहक आता है। जुआरी और द्यूतकारों का मुखिया (माथुर) उसका पीछा करते हुए आते हैं। वसन्तसेना अपना स्वर्णभूषण देकर संवाहक को छोड़ती है। संवाहक विरक्त होकर बौद्ध भिक्षु बन जाता है। वसन्तसेना का उन्मत्त हाथी मार्ग में उसे पकड़ लेता है तथा वसन्तसेना का सेवक कर्णपूरक उसे हाथी से छोड़ता है। फलतः चारुदत्त कर्णपूरक को पुरस्कार स्वरूप अपना दुशाला देता है।

तृतीय अंक – सन्धिच्छेद

चारुदत्त और मैत्रेय संगीत सुनकर आते हैं। वे घर में आकर सो जाते हैं। इधर मदनिका को दासता से मुक्त कराने के लिए शर्विलक चारुदत्त के घर संधि लगाता है और वसन्तसेना के आभूषणों को चुरा ले जाता है।

चतुर्थ अंक – मदनिका और शर्विलक

प्रातःकाल शर्विलक आभूषण लेकर मदनिका के पास आता है। ये आभूषण चारुदत्त के घर से चुराये गए हैं, यह जानकर मदनिका दुःखी होती है और उन आभूषणों को निपुणतापूर्वक वसन्तसेना को दिला देती है। वसन्तसेना मदनिका को सेवामुक्त कर देती है। उधर चारुदत्त

की पतिव्रता स्त्री धूता अपनी रत्नावली चारुदत्त को देती है और चारुदत्त उसके विदूषक के द्वारा वसन्तसेना के घर भेज देता है।

पंचम अंक – दुर्दिन

वसन्तसेना विट और चेटी के साथ चारुदत्त के प्रति अभिसरण करती है। यह दुर्दिन है, घनान्धकार, मेघ-गर्जना, वर्षा की झड़ी और विद्युत की कड़क। चारुदत्त उसकी प्रतीक्षा में है। वह भीगी हुई वहाँ पहुँचती है और रात्रि में विश्राम करती है।

षष्ठ अंक – यान परिवर्तन

प्रातः काल चारुदत्त पुष्पकरण्डक नामक उद्यान में आ जाता है। इधर मदनिका चारुदत्त के पुत्र रोहसेन को लेकर वसन्तसेना के पास आती है। रोहसेन सोने की गाड़ी पाने के लिए आग्रह कर रहा है और वसन्तसेना अपने आभूषणों को उसकी मिट्टी की गाड़ी में लाद देती है। तब वह भी पुष्प करण्डक उद्यान में जाने को तैयार होती है, किन्तु भ्रमवश चारुदत्त की गाड़ी के बदले समीप खड़ी शकार की गाड़ी में बैठ जाती है। इसी समय पालक द्वारा बन्दी बनाया गया आर्यक भाग कर आता है और चारुदत्त की गाड़ी को खाली पाकर उसमें बैठ जाता है। गाड़ीवान समझता है कि वसन्तसेना बैठ गई है और गाड़ी को ले जाता है। मार्ग में दो रक्षक चन्दनक और वीरक गाड़ी को रोकते हैं। चन्दनक आर्यक को देखकर रक्षा का वचन देता है और वीरक भी गाड़ी को देखना चाहता है तो झगड़ा करने लगता है।

सप्तम अंक –आर्यक अपहरण

आर्यक उद्यान में पहुँचता है। चारुदत्त उसे देखता है और उसे प्रेमपूर्वक विदा कर देता है। बाद में आर्यक पकड़ा जाता है।

अष्टम अंक – वसन्तसेना मर्दन

भिक्षु उद्यान में आता है। शकार उसे पीटने को उद्यत है। वह किसी प्रकार बचकर चला जाता है। इसी समय वसन्तसेना उद्यान पहुँचती है। उसे देखकर शकार प्रणय-प्रस्ताव

करता है। वह उसे स्वीकार नहीं करती तो वह वसन्तसेना का गला घोट देता है और सूखी पत्तियों में दबाकर भाग जाता है। बौद्ध भिक्षु वहाँ आता है और वसन्तसेना को पुनर्जीवित करता है।

नवम अंक – व्यवहार

शकार न्यायालय में जाता है और चारुदत्त पर हत्या का आरोप लगाता है। दुर्भाग्य से अभियोग सिद्ध हो जाता है और चारुदत्त को मृत्युदण्ड दिया जाता है।

दशम अंक – उपसंहार

चाण्डाल चारुदत्त को श्मशान में ले जाते हैं। विदूषक तथा रोहसेन भी वहाँ पहुँच जाते हैं। फांसी लगने को है कि भिक्षु वसन्तसेना को लेकर वहाँ पहुँच जाता है। इधर पालक को मारकर आर्यक राजा बनता है और उसका मित्र शर्विलक भी श्मशान भूमि में पहुँच जाता है। चारुदत्त के स्थान पर शकार को दण्ड दिया जाता है, किन्तु चारुदत्त उसे क्षमा कर देता है। राजा वसन्तसेना को वधू रूप में अलंकृत कर देता है और चारुदत्त तथा वसन्तसेना का विवाह हो जाता है।

शूद्रक की नाट्यकला

शूद्रक प्रणीत मृच्छकटिक रूपक भेद की दृष्टि से दस अंकों का एक प्रकरण है। यह निश्चय ही संस्कृत नाटक साहित्य का एक अति महान् रूपक है। इसमें काव्य के रस तथा भावों का यथार्थ स्वरूप विद्यमान है। यह एक यथार्थोन्मुख रचना है। इस रचना का सम्बन्ध उस जगत् से है जिसमें चोर, जुआरी, भिक्षु, वेश्या, विट तथा चेट आदि सभी तरह के लोग स्वच्छन्द होकर विचरण करते हैं। नाट्य का कथानक सामाजिक जीवन के अधिक निकट है, वह राजमहल की चारदीवारी में बन्द होकर नहीं रह जाता।

मृच्छकटिक (मिट्टी की गाड़ी) के नामकरण में नायक अथवा नायिका को महत्त्व न देकर उस दृश्य को महत्त्व प्रदान किया गया है, जिसमें मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द्व का अधिक

वास्तविक चित्रण है तथा जो इस रचना में निर्णायक बिन्दु का कार्य करता है।

पूरी कथावस्तु दृढसूत्र में बंधी हुई है, जिसके कथांश सामाजिक के चित्त को बाँधे रखते हैं और उत्सुकता व कुतूहल बढ़ाते जाते हैं। संभोगशृंगार की प्रधानता तथा हास्य (शंकार की उक्तियों में) करुण (चारुदत्त को मृत्यु दण्ड दिये जाने के दृश्य में) भय (विट की उक्तियों में, श्मशान के दृश्यों में) अद्भुत (प्रवहण—विपर्यय एवं आर्यक के राजा बनने पर) आदि रसों की यथावकाश उद्भावना ने रस—दृष्टि से इसे उत्कृष्ट रूपक बनाया है।

शंकार जैसे पात्र का निवेश करके लेखक ने अत्याचारी राजा के सम्बन्धियों का चित्रण किया है, जो मूर्ख और स्वेच्छाचारी भी होते हैं। वह अपने उपमानों से हास्य का पात्र बनता है, जैसे —

चाणक्येन यथा सीता मारिता भारते युगे।

एवं त्वां मोटयिष्यामि जटायुरिव द्रौपदीम्॥ मृ. 8.35

नाट्य संवादों में लेखक ने हास्य व्यंग्य से भरे हुए लघुकाय वाक्य प्रस्तुत किए हैं, जो कहीं—कहीं सूक्तियों के रूप में आये हैं —

द्यूतं हि नाम पुरुषस्यासिंहासनं राज्यम् (2.7 के पूर्व)

सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते (1.10)

गुणः खल्वनुरागस्य कारणं, न पुनर्बलात्कारः (1.32 के बाद)

पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते, न पुनर्गोहेषु (1.53 के बाद)

स्त्रीषु न रागः कार्यं रक्तं पुरुषं स्त्रियः परिभवन्ति (4.13)

मृच्छकटिक की रचना में लेखक ने अपने युग के समाज के विविध पक्षों की नाट्य प्रस्तुति करके विशाल जनसमूह के मनोरंजन का उद्देश्य रखा है। समाज के उपेक्षित वर्गों के प्रति भी सहानुभूति रखकर उन्होंने इस क्रान्तिकारी रूपक का निर्माण किया। 'गुणाः पूजास्थानम्' की उपपत्ति में मृच्छकटिक का विपुलांश समर्पित है। रूढ़ियों का परित्याग करते हुए लेखक ने गणिका के कुलवधू बनने, गणिकाओं और उच्चवर्ग के वैवाहिक सम्बन्ध,

मध्यवर्गीय व्यक्ति के राजा होने तथा निम्नवर्ग से बड़े-बड़े अधिकारियों (जैसे सेनापति) के पद पर प्रतिष्ठित होने की अनुशंसा की है। यह इसी दृष्टि से लोकप्रिय रूपक है।

4.4 अपनी प्रगति जांचिए, प्रश्न

1. काव्यों में रमणीय क्या बताया गया है?
2. भास के कितने नाटक प्राप्त होते हैं?
3. स्वप्नवासवदत्तम् नाटक किसके द्वारा लिखा गया?
4. प्रतिमा नाटक किस पर आधारित है?
5. कालिदास का सर्वश्रेष्ठ नाटक कौन-सा है?
6. विक्रमोर्वशीयम् नाटक के नायक का नाम बताइए।
7. मालविकाग्निमित्र नाटक में कितने अंक हैं?
8. कण्व ऋषि कालिदास के किस नाटक का पात्र है?
9. शारिपुत्र प्रकरण किसकी रचना है?
10. मृच्छकटिकम् का रचनाकार कौन है?

5.5 सारांश

सभी प्रकार के काव्यों में नाटक को सबसे रमणीय माना गया है। काव्यशास्त्रियों ने इसके दस भेद बताए हैं, जिनमें नाटक और प्रकरण ज्यादा प्रसिद्ध हैं। भास के तेरह नाटकों में स्वप्नवासवदत्तम् श्रेष्ठ हैं। कालिदास ने भी कवि भास की प्रशंसा की है। भास की अन्य रचनाएँ (कर्णभारम्, दूतवाक्य, ऊरुभंग आदि) भी प्रशंसनीय हैं। इनकी रचनाओं में नाट्यकला विकास के प्रारम्भिक रूप के दर्शन होते हैं। महाकवि कालिदास सर्वश्रेष्ठ नाटककार के रूप में विश्व प्रसिद्ध हैं। इनकी अद्वितीय रचना अभिज्ञानशाकुन्तलम् विश्व साहित्य की धरोहर है। कालिदास की नाट्य कला का चरमोत्कर्ष हमें अभिज्ञानशाकुन्तल में दिखाई पड़ता है। इसका

चतुर्थ अंक तो अतुलनीय है। कालिदास के नाटक भावनावादी अधिक हैं, परन्तु ये यथार्थ के धरातल को नहीं छोड़ते। अश्वघोष द्वारा रचित शारिपुत्रप्रकरण बौद्ध सिद्धान्तों को मनोवैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत करता है। नाटककार शूद्रक को एक राजा बताया गया है और इसके प्रकरण मृच्छकटिकम् में रूढ़ियों का परित्याग करते हुए लेखक ने गणिका के कुलवधू बनने, गणिकाओं और उच्चवर्ग के वैवाहिक संबंध, मध्यवर्गीय व्यक्ति के राजा होने तथा निम्नवर्ग के उच्च अधिकारियों के पद पर प्रतिष्ठित होने की अनुशंसा की गई है।

5.6 मुख्य शब्दावली

1. नाटक (नट् + ण्वुल्) स्वांग, रूपक के दस मुख्य भेदों में से प्रथम।
2. उर्वशी (उरु + अश् + क + ङीप्) इन्द्रलोक की एक प्रसिद्ध अप्सरा जो पुरुरवा की पत्नी बनी।
3. अभिज्ञानम् (अभि + ज्ञा + ल्युट्) पहचान या पहचान का चिह्न या वस्तु
4. मालविकाग्निमित्र – मालविका (नायिका) + अग्निमित्र (नायक)
5. विक्रमोर्वशीय – विक्रम (राजा पुरुरवा) + उर्वशी अप्सरा

5.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. नाटक
2. तेरह नाटक
3. भास द्वारा
4. रामायण पर
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम्
6. पुरुरवा
7. पाँच

8. अभिज्ञानशाकुन्तलम् का
9. अश्वघोष की
10. शूद्रक

5.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. नाटक की उत्पत्ति एवं रूपक के भेदों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. रामायण पर आधारित भास के नाटकों का परिचय दीजिए।
3. महाभारत पर आश्रित भास के नाटकों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. संस्कृत नाट्य जगत में स्वप्नवासवदत्तम् का वैशिष्ट्य प्रतिपादित कीजिए।
5. मालविकाग्निमित्रम् नाटक का संक्षिप्त सार लिखिए।
6. विक्रमोर्वशीयम् नाटक पर एक टिप्पणी लिखिए।
7. अभिज्ञानशाकुन्तलम् की विश्व प्रसिद्धि का कारण स्पष्ट कीजिए।
8. कालिदास के नाट्य वैशिष्ट्य का तुलनात्मक विश्लेषण कीजिए।
9. शारिपुत्रप्रकरण पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
10. शूद्रक का नाट्यकौशल प्रतिपादित संक्षेप कीजिए।

5.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. स्वप्नवासवदत्तम् — भास, व्याख्याकार शेषराज शर्मा 'रेग्मी', चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
2. अभिज्ञानशाकुन्तलम् — कालिदास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायणलाल विजयकुमार, इलाहाबाद।
3. मृच्छकटिकम् — शूद्रक, डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ।

4. संस्कृत साहित्य का इतिहास— वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी ।
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास — डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्बा भारती अकेडमी, वाराणसी ।

अध्याय—6

विशाखदत्त से भट्ट नारायण तक का नाट्य साहित्य

- 6.1 अध्याय के उद्देश्य
- 6.2 परिचय
- 6.3 विशाखदत्त से भट्टनारायण तक का नाट्य साहित्य
- 6.4 अपनी प्रगति जांचिए
- 6.5 सारांश
- 6.6 मुख्य शब्दावली
- 6.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर
- 6.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 6.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

6.1 अध्याय के उद्देश्य

- विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस की अवधारणा प्रस्तुत कर पाएंगे।
- हर्षवर्धनकृत प्रियदर्शिका नाटिका का परिचय प्राप्त कर पाएंगे।
- रत्नावली नाटिका का विश्लेषण कर पाएंगे।
- नागानन्द नाटक का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- भवभूति के नाट्यवैशिष्ट्य से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- उत्तररामचरितम् की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।
- भवभूति का करुणरस प्रेम का विश्लेषण कर सकेंगे।
- भट्टनारायण के नाट्य वैशिष्ट्य के परिचित हो सकेंगे।

- वेणी संहार की कथावस्तु का सार तत्त्व प्राप्त कर पाएंगे।
- राजा हर्षवर्धन के नाट्यवैशिष्ट्य का तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।

6.2 परिचय

संस्कृत नाट्यजगत में एकमात्र उपलब्ध राजनीतिक नाटक 'मुद्राराक्षस' के लेखक के रूप में विशाखदत्त की कीर्ति अमर है। विशाखदत्त ने अपने सर्वाधिक विख्यात नाटक का नाम मुद्राराक्षस इसलिए रखा कि इसमें मुद्रा के द्वारा राक्षस अमात्य के निग्रह की घटना अंकित की गई है। आचार्य चाणक्य और मौर्य वंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य इसके मुख्य पात्र हैं। यह नाटक नायिकारहित और विदूषकरहित है। विशाखदत्त ने इस नाटक को घटना प्रधान बनाया है, चरित्रमूलक नहीं। इसमें एकमात्र स्त्रीपात्र चन्दनदास की पत्नी है, जो सप्तम अंक में चन्दनदास के मृत्यु दृश्य में करुण रस का उद्भावन करती है। चन्द्रगुप्त योग्य राजा है किन्तु चाणक्य के हाथों समर्पित है।

पुष्पभूति वंश में उत्पन्न सम्राट प्रभाकरवर्धन के पुत्र राजा हर्षवर्धन का चरित हमें उनके राजकवि बाण द्वारा रचित हर्षरचित नामक गद्यकाव्य से ज्ञात होता है। हर्षवर्धन ने प्रियदर्शिका तथा रत्नावली नामक दो नाटिकाएँ तथा नागानन्द जैसा उत्कृष्ट नाटक प्रदान कर अपनी सार्वभौम प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी दोनों नाटिकाएँ समान कथानक (उदयन कथा) पर आश्रित हैं तथा नागानन्द नाटक, जिसका प्रचार बौद्धों के बीच बहुत अधिक है, क्योंकि इसमें बोधिसत्त्व रूप राजा की कथा है। नाटिका जैसी नाट्य विधा में इनकी नाटिकाओं का स्थान प्रथम है।

संस्कृत रूपककारों में कालिदास के अनन्तर श्रेष्ठता की दृष्टि से भवभूति का ही स्थान है। दोनों ने तीन-तीन रूपक लिखे और तीनों पूर्णरूपेण उपलब्ध हैं। भवभूति की तीन रचनाओं में दो नाटक महावीरचरितम् तथा उत्तररामचरितम् हैं और एक प्रकरण मालतीमाधव है। मालतीमाधव में विदर्भराज के मन्त्री के पुत्र माधव तथा पद्मावती नरेश के मन्त्री की पुत्री

मालती की प्रणयकथा का नाटकीय निरूपण है। महावीर चरित का कथानक रामायण की कथा पर आश्रित है। यहाँ महावीर शब्द महापराक्रमी राम के लिए आया है। राम—सीता विवाह से लेकर राम राज्याभिषेक तक की घटनाएँ इसमें वर्णित हैं। उत्तररामचरित नाटक का कथानक भगवान् राम के जीवन के उत्तर भाग से संबंधित हैं। यह भवभूति के रूपकों में श्रेष्ठ है। रामायण के उत्तरकाण्ड के सीता निर्वासन के कथानक पर यह आश्रित है। इसमें करुण रस का सुन्दर परिपाक किया गया है। वश्यवाक् भवभूति की वाणी में इतना बल था कि उनके प्रदर्शित करुण प्रसंगों में शिलाखण्ड भी रो पड़े हैं।

भट्टनारायण की केवल एक ही रचना वेणीसंहार प्राप्त होती है। अपनी इस एकमात्र रचना से ही ये संस्कृत नाटककारों में महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। वेणीसंहार का कथानक महाभारत से लिया गया है। मुख्य कथानक कौरवों की सभा में पाण्डवों और द्रौपदी का अपमान है। यह नाटक द्रौपदी की खुली वेणी के संहार (संवारने) की घटना को केन्द्र बनाकर चलता है। अन्त में भीम दुर्योधन के रक्त से द्रौपदी की वेणी का संहार करता है। वीर रस प्रधान यह नाटक संस्कृत नाट्यजगत् में अमर है।

6.3 विशाखदत्त से भट्टनारायण तक का नाट्य साहित्य

नाटककार विशाखदत्त और मुद्राराक्षस

संस्कृत नाटक जगत् में एकमात्र उपलब्ध राजनीतिक नाटक मुद्राराक्षस के लेखक के रूप में विशाखदत्त की कृति अमर है। कवि विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस की प्रस्तावना में अपना परिचय देते हुए स्वयं को महाराज पृथु का पुत्र और सामन्त बटेश्वर दत्त का पौत्र बताया है। कुछ संस्करणों में उनके पिता का नाम भास्कर दत्त भी दिया गया है। ये स्वयं विद्वान् राजनीतिज्ञ थे, इन्हें राजधर्म का क्रियात्मक अनुभव था। यह तो मुद्राराक्षस से ही स्पष्ट हो जाता है, परंतु अभी तक इनके स्थान और समय के विषय में निर्णय नहीं हो पाया है। मुद्राराक्षस के भरत वाक्य में उल्लिखित राजा के साथ विशाखदत्त का संबंध जोड़ते हुए डॉ.

काशी प्रसाद जायसवाल और प्रो. शारदा रंजन ने इनको 400 ई. के पश्चात् अर्थात् पांचवी-छठी शताब्दी में माना है।

रचनाएं

विशाखदत्त की दो नाटक कृतियाँ उपलब्ध हैं मुद्राराक्षस और देवीचंद्रगुप्तम्। देवीचंद्रगुप्तम् खंडित अवस्था में प्राप्त है। इसका कथानक चंद्रगुप्त और ध्रुव देवी (ध्रुवस्वामिनी) के विवाह से सम्बद्ध प्रतीत होता है।

मुद्राराक्षस का नामकरण

नाटककार ने अपने सर्वाधिक विख्यात नाटक का नाम मुद्राराक्षस इसलिए रखा कि इसमें मुद्रा के द्वारा राक्षस अमात्य के विग्रह की घटना अंकित की गई है —

“मुद्रया गृहीतं राक्षसमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः मुद्राराक्षसम्।”

कथावस्तु का मूल स्रोत

राजा नन्द तथा चाणक्य विषयक कथा का स्पष्ट वर्णन श्रीमद्भागवतकथा तथा विष्णु पुराण में मिलता है। तदनुसार आचार्य चाणक्य ने नंद वंश का नाश कर चंद्रगुप्त को मगध के राजसिंहासन पर अधिष्ठित किया था। ऐतिहासिक साक्ष्यों से चाणक्य द्वारा नंद वंश का अन्त कर चंद्रगुप्त को मगध राज्य का सम्राट बनाये जाने का समय 325 ई. पू. माना जाता है। इस घटना काल से नाटक के रचना काल तक कम से कम 1000 वर्ष का अंतर रहा होगा तथा इस अवधि में अन्य भी अनेकानेक किंवदंतियाँ नंदवंश व चंद्रगुप्त तथा चाणक्य से संबंधित प्रचलित हुई होंगी। इन्हीं सबसे प्रेरित होकर निजी कल्पना के आधार पर विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस का निर्माण किया होगा।

नाटक की संक्षिप्त कथावस्तु

सात अंकों के मुद्राराक्षस नाटक की रचना नंदवंश के महामात्य राक्षस को केंद्रित कर की गई है। प्रतिभाशाली चाणक्य चाहता था कि किसी प्रकार राक्षस चंद्रगुप्त का अमात्यत्व

स्वीकार कर ले। महाराज नंद का सेनापति कूटनीतिज्ञ चाणक्य की सहायता से नंद वंश का अंत कर मगध के राज सिंहासन पर बैठता है। सम्राट चंद्रगुप्त अपने विजयोत्सव को कौमुदी महोत्सव के रूप में कुसुमपुर में मनाए जाने का निर्देश कुसुमपुर वासियों को देते हैं, किंतु चाणक्य को गुप्तचरों द्वारा ज्ञात हो जाता है कि राक्षस के कतिपय विश्वासी व्यक्ति तथा सामंत चंद्रगुप्त की हत्या का कुसुमपुर में षड्यंत्र बना चुके हैं। अतएव चाणक्य उत्सव को मनाने के लिए निषिद्ध कर देता है। इससे चंद्रगुप्त का अचानक चाणक्य के साथ मनमुटाव हो जाता है।

उनके मनमुटाव के समाचार को सुनकर अमात्य राक्षस अपनी 'चाणक्य पर विजय' की योजना को सफल हुई जान लेता है। राक्षस चंद्रगुप्त के बजाय नंद राज्य के सिंहासन पर पर्वतेश्वर पुत्र मलयकेतु को बिठाना चाहता है। इसी कल्पना के उपहार स्वरूप मलयकेतु अपने आभूषण अमात्य राक्षस को देना चाहता है। चाणक्य राक्षस के विश्वासपात्र शकटदास से एक कूट लेख लिखवा कर मुद्रित करा लेता है। मुद्रित लेख तथा आभूषण पेटिका लिए सिद्धार्थक को पकड़ा जाता है। इससे मलयकेतु राक्षस को गुप्त रूप से चंद्रगुप्त के साथ मिला समझ बैठता है। क्रोध आवेश में मलयकेतु अपने सहयोगी राजाओं की हत्या करवा डालता है। परिणामस्वरूप उसे कैद कर लिया जाता है। इधर धनकुबेर चंदनदास जोकि राक्षस का अभिन्न मित्र है, इसको राजद्रोह में प्राण दंड दिए जाने की सूचना सुनकर हताश अमात्य राक्षस आत्मसमर्पण करने को उद्यत हो जाता है और चंद्रगुप्त का अमात्य बनना स्वीकार कर लेता है, इससे चाणक्य की विजय होती है।

विना वाहनहस्तिभ्यां मुच्यतां सर्वबन्धनम्।

पूर्णप्रतिज्ञेन मया केवलं बध्यते शिखा।।

यह कहकर एवं प्रसन्न होकर चाणक्य राज्य में कैद किए गए सभी लोगों को मुक्त किए जाने की घोषणा कर अपनी उन्मुक्त शिखा को पुनः बांधता है। नाटक का सफलतया अंत होता है।

विशाखदत्त का नाट्य वैशिष्ट्य

विशाखदत्त का प्राचीन नाटककारों में विशिष्ट स्थान है और मुद्राराक्षस की गणना उत्कृष्ट नाटकों में की जाती है, इसमें एक दो अत्यंत गौण पात्रों को छोड़कर सभी पात्र पुरुष हैं। कथानक के विकास में सन्धियों और अर्थ प्रकृतियों का पूरा ध्यान रखा गया है। इस नाटक का स्थायी भाव उत्साह है और वीर रस की प्रधानता है। इसमें निरंतर युद्ध के गाजे—बाजे सुनाई देते हैं, परंतु युद्ध कहीं होता नहीं। बस नीति युद्ध है जो आजकल के शीत युद्ध से मेल खाता है।

विशाखदत्त की शैली स्वाभाविकता सरलता, ओजमयता तथा प्रवाह पूर्णता के कारण इस नाटकीय वातावरण के सर्वथा अनुरूप है। “जयति जलदनीलः केशवः केशिघाती” में शब्दालंकार की सुंदरता के साथ प्रसादात्मकता के दर्शन होते हैं। श्लेष, उपमा और अप्रस्तुतप्रशंसा नामक अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग के साथ स्वाभावोक्ति का प्रयोग अनन्य है। कवि ने यथावसर प्रायः सभी स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, मंदाक्रांता, उपजाति आदि छंदों का सुंदर प्रयोग किया है।

विशाखदत्त ने इस नाटक को घटना प्रधान बनाया है, चरित्रमूलक नहीं। सभी पात्र अपनी अपनी विशेषताओं के साथ घटनाओं को आगे बढ़ाने में सन्नद्ध हैं। सभी घटनाओं को मुख्य फल के लाभ की दिशा में त्वरित गति से प्रेरित किया गया है। एक भी प्रासंगिक या अनावश्यक गद्यांश या वाक्य तक इसके विकास क्रम में प्रयुक्त नहीं है। इस प्रकार पूरा नाटक कसा हुआ है। घटनाओं के पर्व जैसे—जैसे खुलते हैं कुतूहल और उत्सुकता का शमन होता जाता है, किंतु उत्सुकता के भी नए आयाम बनते हैं जिनका निवारण क्रमशः होता रहता है।

मुद्राराक्षस में कुल 29 पात्र हैं, एकमात्र स्त्रीपात्र चंदन दास की पत्नी है जो सप्तम अंक में चंदनदास के मृत्यु दंड दृश्य में करुण रस का उद्भावन करती हैं। शेष सभी पात्र अपनी—अपनी विशेषता रखते हुए भी चाणक्य अथवा राक्षस के हाथों की कठपुतली हैं। इन दोनों पात्रों के संघर्ष का ही प्रतिफलन पूरे नाटक में हुआ है।

ये दोनों अमात्य क्रमशः चंद्रगुप्त और मलयकेतु को आधार बनाकर नीति कौशल दिखाते हैं। ये दोनों पात्र परस्पर विरोधी चरित्र के हैं। चंद्रगुप्त योग्य राजा है, किंतु चाणक्य के हाथों में समर्पित है। मलयकेतु स्वतन्त्र बुद्धि वाला पुरुषार्थी किंतु मूर्ख और उद्दंड है। इससे भावुक राक्षस उससे दूर चला जाता है। बुद्धिवादी चाणक्य के हाथों में खेलने वाले चंद्रगुप्त का राज्य शक्तित्रय संपन्न होकर स्थिर बन जाता है। शकटदास और चन्दनदास राक्षस के विश्वसनीय मित्र हैं तथा मित्र के लिए सर्वस्य त्याग करते हैं।

इस नाटक में कूटनीति वीर रस है जो अन्य किसी संस्कृत नाटक में नहीं है तथा शास्त्रों में विवेचित तक नहीं हुआ है। मुद्राराक्षस की वीर रस अभिव्यक्ति में समसामयिक राजनीतिक जीवन की उन्नतिशीलता के लिए उत्सुक एवं कर्मठ राजनीतिक नेतृत्व की अदम्य आत्मोत्सर्ग भावना और उत्साह की प्रबल प्रेरणा का हाथ है और यही वह रहस्य है कि संस्कृत नाटककार किसी अन्य मुद्राराक्षस की रचना न कर सके।

इस नाटक में राष्ट्र की सुरक्षा के लिए कर्तव्यभावना का ऐसा प्राबल्य यह है कि इसके समक्ष रति आदि के भाव शून्यवत् हैं। इसलिए इसमें सभी पात्र अपूर्व उत्साह से भरे हैं और अपने कार्यों के प्रति तन्मयता से समर्पित हैं। जय-पराजय की भावना के ऊपर यह कर्तव्य पालन का नाटक है, जो अपने प्रयोजन में पूर्णतः सफल है।

मुद्राराक्षस के नायक को लेकर प्रायः तीन मत प्रचलित हैं जिनमें राक्षस, चंद्रगुप्त और चाणक्य को नायक कहा जाता है। इनमें चंद्रगुप्त का नायकत्व कुछ अधिक महत्त्व रखता है, जबकि कई विद्वान् मुद्राराक्षस के नामकरण में राक्षस शब्द के प्रयोग से उसे नायक स्वीकार करते हैं तथा कई विद्वानों के मतानुसार चाणक्य को ही नायक मानना उचित है।

विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस की रचना में काव्यात्मकता का अतिशय न रखकर पूर्णतः नाट्य दृष्टि रखी है। इसलिए लेखक की शैली प्रसाद एवं माधुर्य गुणों से विभूषित है। इसमें अलंकारों का प्रयोग केवल विषय वस्तु को सुगम बनाने के लिए किया गया है। प्रकृति वर्णन विरल है। श्लेष के प्रयोग में कई उपमाएं सुंदर बन पड़ी हैं। रूपक समासोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा एवं अर्थान्तरन्यास के हृदयावर्जक विन्यास मुद्राराक्षस में अत्यंत सरल किंतु लालित्यपूर्ण भाषा में

सुलभ है। छोटे बड़े सभी प्रकार के छंद भी इसके शोभा वर्धक है। बड़े छंदों में भाव का विस्तार है और छोटे छन्दों में अल्पाक्षर वाली सारभूत सूक्तियां हैं।

विशाखदत्त ने इस नाटक में अनेक सूक्तियों का भी प्रयोग किया है, जैसे –

- अत्यादरः शंकनीय (1.21 के बाद)
हिमवति दिव्यौषधयः शीर्षे सर्पः समाविष्टः (1.22)
पुरन्धीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी (2.16)
सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः (3.14)
परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेतुं पुरुषः (3.4)
भव्यं रक्षति भवितव्यता (2.20)
नन्वयुक्ततरः सुहृद्विरोधः (2.19)
अनुचित उपचारो हृदयस्य परिभवादपि दुःखमुत्पादयति (1.2)
नहि सर्वः सर्वं जानाति (1.11)
शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतिकारः (1.13)
चीयते बालिशस्यापि सत्क्षेत्रपतिता कृषिः (1.5)
परायत्तः प्रीतेः कथमिव ररुं वेत्ति पुरुषः (3.24)
दैवमविद्वान्सः प्रमाणयन्ति (3.30)
विद्वांसोऽप्यविकथना भवन्ति (3.31)
मुण्डितमुण्डो नक्षत्राणि पृच्छति (5.33)
गतिः सोच्छ्रायाणां पतनमनुकूलं कलयति (5.36)
दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति (6.38)

नाटककार राजा हर्षवर्धन

स्थाण्वीश्वर (थानेसर, हरियाणा) के पुष्पभूति वंश में उत्पन्न सम्राट् प्रभाकर वर्धन के पुत्र सम्राट् हर्षवर्धन का चरित हमें उनके राजकवि बाण द्वारा रचित हर्षचरित नामक गद्य काव्य से

ज्ञात होता है। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसांग तथा इत्सिंग ने भी हर्ष संबंधी अनेक संस्मरण अपने यात्रा विवरणों में प्रस्तुत किए हैं। हर्षवर्धन ने 606 ई. से 648 ई. तक राज्य किया। शासन क्षमता के साथ-साथ उनकी दानशीलता, कला प्रेम तथा विद्यानुराग संसार में प्रसिद्ध है। न केवल उनकी सभा में बाण और मयूर जैसे विद्वान् तथा हुएनसांग जैसे प्रबुद्ध यात्री सम्मान पाते थे, अपितु साहित्य के पारखी होने के साथ-साथ वे स्वयं भी कुशल साहित्यकार थे।

नाट्य जगत को उन्होंने प्रियदर्शिका तथा रत्नावली नामक दो नाटिकाएं तथा नागानंद जैसे उत्कृष्ट नाटक प्रदान कर अपनी सार्वभौम प्रतिभा का परिचय दिया है। इनमें प्रथम दो समान कथानक पर आश्रित नाटिकाएँ हैं तथा नागानंद 5 अंकों का नाटक है, जिसका प्रचार बौद्धों के बीच में बहुत अधिक है, क्योंकि इसमें बौद्धिसत्त्व रूप राजा की कथा है। हर्ष ने दो बौद्ध स्तोत्र भी लिखे थे, सुप्रभात स्तोत्र तथा अष्टमहाचैत्य स्तोत्र। कुछ विद्वानों ने आक्षेप किया कि लक्ष्मी और शक्ति के धनी हर्षवर्धन ने इन कृतियों को दूसरों से लिखवा कर अपने नाम से प्रचारित किया, किंतु यह पक्षपात और ईर्ष्या से ग्रस्त लोगों की उक्ति है कि राजा स्वयं रचनाकार नहीं हो सकता। भारतीय इतिहास में ही अनेक राजा कवि भी हुए हैं। बाण ने हर्षवर्धन को विद्वान् गोष्ठी विदग्ध तथा कवि कहा है। चीनी यात्री इत्सिंग (671 ई.) ने लिखा है कि राजा शीलादित्य (हर्ष का अन्य नाम) ने बौद्धिसत्त्व जीमूतवाहन की कथा को नाट्य रूप देकर संगीत आदि से संयुक्त इसका अभिनय कराया था। कश्मीरी कवि दामोदरदास गुप्त (700 ई.) ने कुट्टनीमत में रत्नावली की और जैन कवि सोड्ढल ने उदयन सुंदरी कथा में हर्ष की वाणी और उदारता की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। इन प्रमाणों से हर्षवर्धन के द्वारा उक्त रूपकों की रचना सिद्ध है।

प्रियदर्शिका नाटिका

यह हर्ष की प्रथम कृति है। यह चार अंकों की नाटिका है। इसमें वत्सराज उदयन और आरण्यिका (प्रियदर्शिका) की प्रीतिकथा प्रदर्शित है। उदयन अपनी ज्येष्ठा रानी वासवदत्ता के

भय से आरण्यिका के प्रति अपने प्रणय को छिपाये रखता है, किंतु अन्ततः वासवदत्ता को ज्ञात होता है कि आरण्यिका उसकी मौसेरी बहन है तो वह राजा का विवाह उससे करा देती है।

कलिंगराज से अपने पिता दृढ़वर्मा के परास्त होने पर संयोगवश राजकुमारी प्रियदर्शिका राजा उदयन के प्रासाद में आती है और वहाँ वह वासवदत्ता की दासी के रूप में रहती है। अरण्य से प्राप्त होने पर उसे 'आरण्यिका' कहा जाता है। द्वितीय अंक में उसकी भेंट नायक उदयन से होती है और दोनों में उत्कट प्रेम होता है। तृतीय अंक में वासवदत्ता की सखी सांस्कृत्यायनी उसके मनोरंजन के लिए उदयन-वासवदत्ता के प्रेमाख्यान से संबंधित एक नाटक का अभिनय कराती है। इसमें अरण्यिका को वासवदत्ता का और मनोरमा को उदयन का अभिनय करना था, किन्तु उदयन स्वयं अभिनय करता है, जिससे वासवदत्ता क्षुब्ध होकर अरण्यिका को कारागार में डाल देती है। चतुर्थ अंक में अरण्यिका के विषपान करने पर विष उतारने वाले उदयन के समक्ष उसे लाया जाता है, उसी समय दृढ़वर्मा का कंचुकी आता है और मूर्च्छित राजकुमारी को पहचान लेता है। इस से वासवदत्ता को पश्चात्ताप होता है। राजा का आरण्यिका से विवाह हो जाता है।

वस्तुतः प्रियदर्शिका की रचना रत्नावली की रचना के पूर्व किए गए एक पूर्वाभ्यास सरीखी है। रत्नावली में हमें प्रियदर्शिका के अनेक दृश्य अधिक विशद् रूप में प्राप्त होते हैं। प्रियदर्शिका में भ्रमर कथा के दृश्य में अभिज्ञानशाकुंतलम् का स्पष्ट प्रभाव है। वैसे तो हर्ष की सभी रचनाओं में कालिदास की तूलिका से बनाए गए समांतर चित्रों के उदाहरण मिल सकते हैं।

रत्नावली नाटिका

यह चार अंकों की नाटिका है, जिसमें राजा उदयन तथा सिंहल देश (श्रीलंका) की राजकुमारी रत्नावली (सागरिका) के प्रेम और विवाह का कथानक है। इसमें भी राजा अपनी ज्येष्ठ रानी वासवदत्ता के भय से प्रच्छन्न प्रेम करता है। प्रियदर्शिका के समान यहाँ भी

वासवदत्ता अन्त में जान लेती है कि सागरिका उसकी ममेरी बहन है। तब वह उदयन का विवाह उससे करा देती है।

राजा उदयन के प्रासाद में रत्नावली समुद्र-दुर्घटना से बचकर आती है, अतः उसे सागरिका कहा जाता है। मदन महोत्सव के समय कन्दर्प के समान सुन्दर उदयन को देखकर सागरिका के हृदय में राजा के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है। राजा भी उसके द्वारा रचे गए अपने चित्र को देखकर तथा सागरिका के सम्मुख अपने प्रेम को प्रकट करता है, किंतु चित्रफलक के माध्यम से उदयन और सागरिका के गुप्त प्रेम का निश्चय हो जाने पर उदयन की महिषी वासवदत्ता उन दोनों के प्रेम में बाधा उत्पन्न करती है।

माधवी मंडप में वेश बदलकर सागरिका तथा सुसंगता का राजा के समीप अभिसार करने का भेद प्राप्त कर वासवदत्ता कांचनमाला के संग पहले ही पहुँच जाती है। सारा भेद प्रकट होने पर राजा लज्जित होकर क्षमा मांगता है। सागरिका आत्महत्या करने को उद्यत है तथा राजा के मनाने पर भी वह रूठी रहती है, विदूषक बीच-बचाव करता है पर वासवदत्ता सागरिका को पकड़कर बंदी बना देती है। सुसंगता के माध्यम से सागरिका की रत्नमाला विदूषक को मिल जाती है। अन्त में सिंहलेश्वर का मंत्री वसुभूति विदूषक के गले की रत्नमाला को पहचान लेता है। इधर ऐन्द्रजालिक द्वारा अन्तःपुर में आग लगाने का चमत्कार किया जाता है। वासवदत्ता के कहने पर राजा अग्नि में से सागरिका को बचा लेता है। अग्नि भी शांत हो जाती है। वसुभूति द्वारा सागरिका (रत्नावली) को पहचान लिया जाता है। यौगन्धरायण समस्त घटना का उद्घाटन कर देता है। राजा वासवदत्ता की प्रार्थना पर रत्नावली को पत्नी रूप में ग्रहण कर लेता है।

नागानंद नाटक

यह पाँच अंकों का नाटक है। इसमें मुख्यतः विद्याधर राजकुमार जीमूतवाहन के द्वारा अपनी बलि देकर शंखचूड़ नामक सर्प की रक्षा गरुड़ से करने का वर्णन है। यह बौद्ध धर्म की एक कथा पर आश्रित है, जो बृहत्कथा से संकलित है, जिसका एक रूप 'वेतालपंचविंशति' में मिलता है। हर्ष ने मूलकथा में पर्याप्त परिवर्तन करके इसे पौराणिक परिवेश दिया है। इसका

नायक बौद्ध होने पर भी पौराणिक देवताओं के प्रति भक्ति रखता है। इस प्रकार हर्ष ने बौद्ध और पौराणिक धर्मों के समन्वय के लिए इसे रचा था।

नाटक के प्रथम अंक में विद्याधर राजकुमार जीमूतवाहन तथा सिद्ध राजकन्या मलयवती के हृदयों में एक-दूसरे के प्रति प्रेम भाव की जागृति प्रस्तुत कर मुखसन्धि का आरम्भ दिखाया गया है। राजकुमार जीमूतवाहन का विदूषक को यह कहना है कि “उसका जीवन एवं शरीर तो परोपकार के लिए है।” नाटक का बीज है, क्योंकि अन्त में वह अपने इस आदर्श को ही फलित करता हुआ देखता है। सहसा किसी तपस्वी के आ जाने से न चाहते भी मलयवती का प्रस्थान उसके मानसिक द्वन्द्व को प्रदर्शित करता है।

दूसरा अंक प्रेम और वियोग के प्रथम अनुभव जन्य द्वन्द्वात्मक भावों से ग्रसित प्रेमपीड़ित मलयवती की अस्वस्थ अवस्था का चित्रण करता है। प्रयत्नपूर्वक बाधाओं को निरस्त कर प्रेमियों को प्रेमाबद्ध कर इस अंक में लेखक द्वारा प्रतिमुख सन्धि की योजना की गई है। भावी उत्सर्ग के कथानक का आधार यह विवाह ही बनता है और कथानक को गति देने के कारण बिन्दु का कार्य करता है।

तीसरे अंक में विद्याधरों के राज्य पर मतांग का आक्रमण दिखलाकर राजनैतिक संघर्ष की भूमिका तैयार की गई है तथा उसके माध्यम से जीमूतवाहन के हृदय में उत्पन्न पीड़ित जनता के प्रति करुणा एवं सहानुभूति का भाव उसके आत्मोत्सर्ग के मार्ग में एक अगला कदम कहा जा सकता है।

चौथे अंक में नाग शंखचूड़ की रोती हुई माता की वेदना को न सहन कर जीमूतवाहन शंखचूड़ के बदले में स्वयं को, कंचूकी द्वारा दिए गए विवाह के लाल वस्त्र धारण कर, गरुड़ के सम्मुख उपस्थित कर देता है। कंचूकी का लाल वस्त्र देना नियताप्ति का कार्य करता है तथा गरुड़ का जीमूतवाहन को वध्यशिला से उठाकर ले जाना विमर्श सन्धि का आरम्भ कहा जा सकता है।

पाँचवें अंक में पश्चात्तापग्रस्त शंखचूड़ द्वारा पहले से ही शंकाग्रस्त गरुड़ के सम्मुख रहस्योद्घाटन किये जाने पर गरुड़ को भी पश्चात्ताप करते हुए दिखाया गया है। जीमूतवाहन

की घायल अवस्था को देखकर उसके सभी संबंधी शोकाकुल हैं। इतने में भगवती गौरी आकर जीमूतवाहन को तथा सब नागों को जीवित कर देती है जिससे दुःखान्त नाटक एकदम सुखान्त नाटक के रूप में परिणत हो जाता है।

नाटक में जीमूतवाहन, गरुड़ तथा शंखचूड़ के असाधारण मानसिक द्वन्दों का सफलतापूर्वक चित्रण किया गया है। इन सभी पात्रों के द्वन्दों का धरातल प्रायः अलौकिक है, क्योंकि यह द्वन्द्व लौकिक, यथार्थ एवं अलौकिक आदर्शों को लेकर चलता है। इसकी कथावस्तु एवं प्रेरणा बौद्ध प्रभावयुक्त है। यह नाटक मानो बोधिसत्त्व के शाश्वत मूल्यों की ही प्रतिकृति है। इसके पहले तीन अंकों में शृंगार रस की प्रधानता है, जबकि शेष दो अंकों में दयावीर अथवा करुण रस की प्रमुखता है। नाटक का पूर्वाद्ध यदि राजकुमार जीमूतवाहन तथा मलयवती के प्रणय कथानक पर आबद्ध है तो इसका उत्तरार्द्ध शंखचूड़ नामक नाग के बदले में जीमूतवाहन के प्राणों के उत्सर्ग से संबंधित कथानक को लेकर चलता है।

हर्षवर्धन का नाट्य कौशल

हर्ष ने वत्सराज उदयन के चरित को अपनी दोनों नाटिकाओं प्रियदर्शिका तथा रत्नावली के लिए चुना। इस चरित को वे स्वयं लोगों को आकर्षित करने वाला मानते हैं। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि हर्ष ने इन नाटिकाओं के कथानक की सामग्री को गुणादय की बृहत्कथा से लिया अथवा इसे लोकप्रचलित कथाओं से लिया, परन्तु यह माना जा सकता है कि हर्ष ने अपनी प्रतिभा से इन नाटिकाओं के नायक चरित को उपस्थित करने में कल्पना का पर्याप्त आश्रय लिया है।

इन नाटिकाओं के अनेक दृश्यों के चित्रण में कालिदास के मालविकाग्निमित्र तथा शाकुन्तल नाटकों की छाप भी देखने को मिलती है। हर्ष की मौलिकता विभिन्न दृश्यों की कल्पना करने में इतनी अधिक नहीं, जितनी कि उन कल्पनाओं को कुशलता से सजाने में है। नाट्यशास्त्र के आचार्यों ने रत्नावली को नाटकीय लक्षणों के उदाहरण के रूप में बार-बार उद्धृत किया है। वस्तुतः इस नाटिका को वस्तु विधान की गत्यात्मकता और स्वाभाविकता की

कसौटी पर तौला जाए तो यह मानना होगा कि शास्त्रीय नियमों के पालन की इसकी विशेषता को अलग रखकर विचार करने पर भी यह एक सफल नाटिका सिद्ध होती है।

नागानन्द की कथा को हर्ष ने विद्याधर जातक से ग्रहण किया, किन्तु इस समय यह जातक उपलब्ध नहीं है। गुणाद्य की बृहत्कथा पर आधारित कथासरित्सागर तथा बृहत्कथामंजरी में भी जीमूतवाहन की कथा उपलब्ध होती है। परवर्ती काल की इस कथा के सन्दर्भ में विचार करने पर लगता है कि हर्ष ने नागानन्द के कथानक की मूलकथा में पर्याप्त परिवर्तन करके नाटकीय रूप प्रदान किया है। वस्तुतः नायक द्वारा आत्महत्या करती हुई नायिका की रक्षा, तृतीय अंक का आमोद—प्रमोद, मलयवती का चित्रांकन, जीमूतवाहन द्वारा लाल वस्त्र धारण करने की कल्पना आदि मार्मिक प्रसंग सब हर्ष की मौलिक प्रतिभा के परिणाम हैं।

घटनाओं की स्वाभाविकता तथा कार्यान्विति के निर्वाह की दृष्टि से विद्वानों ने इस नाटक में कुछ कमियों की ओर भी संकेत किया है और वस्तु संयोजक के विचार से इस नाटक को असफल रचना माना है। पहले तीन अंकों की नायक—नायिका प्रणय कथा को बाद के दो अंकों की कथा के साथ संबद्ध करने में हर्ष कोई दृढ़ सूत्र नहीं दे पाये हैं। फिर भी इन रूपकों में उद्दीपन के रूप में कई वर्णन बहुत ही उत्कृष्ट श्रेणी के हैं। वैदर्भी शैली का आश्रय लेने के कारण हर्ष के वर्णन सहज ग्राह्य हैं तथा अपना पुष्कल प्रभाव सामाजिकों पर छोड़ते हैं।

नाटिका जैसी नाट्यविधा का प्रयोग पहले भी होता होगा, किन्तु उपलब्ध नाटिकाओं में हर्ष की रचनाएँ ही प्रथम हैं। हर्ष के तीनों रूपक अभिनेय हैं। नागानन्द में नायक का अपूर्व उत्साह दिखाया गया है। गरुड़ जब उसे खाना बन्द कर देते हैं। मरणासन्न होने पर भी वह कहता है कि रक्त शिराओं से रक्त अभी भी निकल रहा है, मेरे शरीर में अभी भी मांस शेष है और आपके मुख पर भी तृप्ति के लक्षण दिखाई नहीं पड़ते, तो आप भोजन से क्यों विरत हो गए हैं?

शिरामुखै स्यन्दत एव रक्तमद्यापि देहे मम मांसमस्ति।

तृप्तिं न पश्यामि तवापि तावत् किं भक्षणात्त्वं विरतो गरुत्मन् ।। (नागा. 5.16)

गरुड़ के प्रहार से मृतप्राय जीमूतवाहन को देखकर उसके पिता का करुण विलाप बहुत मार्मिक है —

निराधारं धैर्यं कमिव शरणं यातुविनयः

क्षमः क्षान्तिं वोढुं क इह विरता दानपरता ।

हतं सत्यं सत्यं व्रजतु च कृपा क्वाध कृपणा

जगज्जातं शून्यं त्वपि तनय, लोकान्तरगते ।। (नागा. 5.30)

अर्थात् हे पुत्र! तुम्हारे परलोकगमन से धैर्य, विनय, क्षमा, दानशीलता, सत्य, कृपा आदि गुण निराश्रित हो गए तथा सारा संसार सूना हो गया ।

हर्ष का प्रकृति चित्रण भी अद्भुत है । प्रियदर्शिका में ग्रीष्म काल का वर्णन दर्शनीय है—

आभात्यर्काशुताप क्कथदिव शफरोदवर्तनैदीर्घकाम्भः

छत्राभं नृत्तलीलाशिथिलमणि शिखी बर्हभारं तनोति ।

छायाचक्रं तरुणां हरिणशिशुरुपैत्यालवालाम्बुलुब्धः

सद्यस्त्यक्त्वा कपोलं विशति मधुकरः कर्णपाली गजस्य ।। (प्रिय. 1.12)

अर्थात् सरोवरों में मछलियाँ गर्मी से उछल रही हैं, मानो सूर्य ताप से वे खौल रहे हैं । नाच करने से शिथिल पंखों को भी मोर सिर पर छाते के समान धारण कर रहे हैं । प्यासा हरिण शावक थाले के जल के लोभ से वृक्षों की छाया में जा रहा है और भौंरा हाथी के कपोल को छोड़कर (गर्मी के कारण) उसके कान में घुस रहा है ।

हर्ष ने रत्नावली नाटिका में वसन्तोत्सव का रम्य वर्णन किया है । वसन्त में वृक्ष मतवाले हो गए हैं । प्रमदवन की प्रकृति के वर्णन में वन वर्णन जैसा प्रकृति चित्रण नहीं है, अपितु मानव-सौन्दर्य या विशेषता के स्पष्टीकरण के लिए प्रयुक्त किया गया है । इनका संभोग श्रृंगार का वर्णन भी अद्वितीय है ।

नाट्यकार भवभूति

संस्कृत रूपककारों में कालिदास के अनन्तर श्रेष्ठता की दृष्टि से भवभूति का ही स्थान है। दोनों ने तीन-तीन रूपक लिखे हैं और तीनों पूर्णरूपेण उपलब्ध हैं। कालिदास ने अपने रूपकों की प्रस्तावनाओं में आत्मगोपन किया है, जबकि भवभूति ने अपना अच्छा परिचय अपने रूपकों के आरम्भ में दिया है। विद्वानों और समीक्षकों ने भवभूति का विश्लेषण व अनुशीलन भी पर्याप्त किया है। राजशेखर ने इन्हें वाल्मीकि का अवतार कहा है तथा रामकथा विषयक नाटक की रचना स्वयं भी करने से उन्होंने अपने आपको भवभूति का दूसरा रूप कहने में गर्व का अनुभव किया है।

भवू वल्मीकभवः पुरा कविस्ततः प्रपेदे भवि भर्तृमेण्डताम्।

स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः॥ (बालरामायण 1.16)

भवभूति ने अपने नाटकों की भूमिका में अपने व्यक्तित्व के विषय में जो सूचनाएँ दी हैं उनके अनुसार भवभूति विदर्भ के पद्मपुर के निवासी थे। वे यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के उदुम्बर वंश के ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम नीलकण्ठ और पितामह का नाम भट्टगोपाल था। उनकी माता का नाम जतुकर्णी था। भवभूति को श्रीकण्ठ भी कहा जाता था। ऐसा भी माना जाता है कि मीमांसा दर्शन के प्रसिद्ध विद्वान् उम्बेक भवभूति ही थे, परन्तु यह मान्यता अभी सर्वथा पुष्ट नहीं हो पाई है। ये कन्नौज के राजा यशोवर्मन की राजसभा में राजकवि के रूप में सम्मानित थे। अतः इनका समय सातवीं शताब्दी निश्चित होता है।

मालतीमाधव में प्राप्त एक श्लोक से ऐसा प्रतीत होता है कि भवभूति को अपने जीवनकाल में उतना सम्मान नहीं मिला था, परन्तु बाद में उनकी रचनाओं की अतिप्रशंसा हुई। वाक्पतिराज ने भवभूति के काव्य को अमृतरसकण माना है। क्षेमेन्द्र ने भवभूति के शिखरिणी छन्दों में बद्ध श्लोकों की प्रशंसा की है। प्रसिद्ध है —

‘उत्तरे रामचरिते तु भवभूतिर्विशिष्यते।’

करुण रस का परिपाक करने में भवभूति अद्वितीय माने जाते हैं।

रचनाएँ — भवभूति की तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं। दो नाटक महावीर चरित तथा उत्तर रामचरित और एक प्रकरण — मालतीमाधव।

मालतीमाधव

यह दस अंकों का प्रकरण है जिसमें विदर्भराज के मन्त्री के पुत्र माधव तथा पद्मावती नरेश के मन्त्री की पुत्री मालती की प्रणयकथा का नाटकीय निरूपण है। इसके साथ माधव के मित्र मकरन्द और पद्मावती नरेश के नर्मसचिव नन्दन की बहन मदयन्तिका (मालती की सखी) की भी प्रणय कथा चलती है। अनेक संकटों के बाद इन दोनों के प्रणय विवाह में परिणत हो जाते हैं।

यह बहृत्कथा पर आश्रित कथानक है क्योंकि कथासरित्सागर में वर्णित मदिरावती की कथा से इसका साम्य है। इसका कथानक सामाजिक है किन्तु मृच्छकटिक के सदृश राजमार्ग पर घटित होने वाली घटनाओं का संग्रह इसमें नहीं है। नायक—नायिका के प्रणय में बाधा होने पर भी न्यासिनी कामन्दकी दोनों की सहायता करती है। मयन्दिका पर सिंह का आक्रमण, मकरन्द द्वारा सिंह का मारा जाना, माधव का सिद्धि प्राप्ति के लिए श्मशान में जाना, तान्त्रिक अघोरघण्ट द्वारा मालती की बलि देने की तैयारी, माधव द्वारा अघोरघण्ट का वध, मालती वेशधारी मकरन्द का पति रूप में आए नन्दन की पिटाई करना, कपाल कुण्डला (तान्त्रिक अघोरघण्ट की शिष्या) द्वारा मालती का अपहरण, सौदामिनी द्वारा उसकी रक्षा — ये सब विचित्र तथा रोमांचक घटनाएँ, इसमें आई हैं, जो सातवीं—आठवीं शताब्दी ई. के विश्वास के अनुरूप हैं। इस प्रकरण में भवभूति ने अपनी प्रकृति के अनुरूप गम्भीर पक्ष का आश्रय लिया है, हास्य या साधारण पक्ष का नहीं।

यह प्रकरण घटनाओं के घात—प्रतिघात तथा अन्तर्द्वन्द्वों से परिपूर्ण है। एक स्थल पर हम देखते हैं कि राजा के द्वारा विवाह का अनुमोदन हो जाने पर माधव व मकरन्द दोनों को अगाध प्रसन्नता होती है, किन्तु शीघ्र ही मालती के अदृश्य हो जाने का पता चलता है। खोजने पर भी जब वह नहीं मिलती तो शोकाकुल माधव प्रलाप करने लगता है तथा मकरन्द

के उसे सान्त्वना देने के सभी प्रयास विफल हो जाते हैं। यहाँ पर दर्शक को मेघदूत के यक्ष तथा विक्रमोर्वशीयम् के पुरुरवस् की याद ताजा हो जाती है।

भवभूति ने इस प्रकरण में अनेक सामाजिक तथ्य अनावृत्त किये हैं, जैसे – संन्यासियों का प्रपंच, नरबलि की प्रथा, पुरुष का स्त्री रूप धारण करना, भाग्य पर अधिक आश्रित होना इत्यादि। नीतिश्लोक के तुल्य निम्नांकित पद्य में भवभूति क्रिया की सफलता में इन आवश्यक गुणों की सूची देते हैं – शास्त्रज्ञान, प्रत्युन्नमतित्व, प्रगल्भता, गुणों से भरी वाणी, अवसर की पहचान तथा प्रतिभा से काम लेना –

शास्त्रे प्रतिष्ठा सहजश्च बोधः प्रागल्भ्यमभ्यस्तगुणा च वाणी।

कालानुरोधः प्रतिभानवत्त्वमेते गुणाः कामदुघाः कियासु।। मालती. 3.11

महावीरचरित

महावीरचरित का कथानक रामायण की कथा पर आधारित है। नाटक के नाम में प्रयुक्त महावीर शब्द महापराक्रमी राम के लिए आया है। यह रामायण के छह काण्डों पर (बालकाण्ड से युद्धकाण्ड तक) आश्रित रामकथा का सात अंकों में प्रदर्शन करने वाला नाटक है। तदनुसार सीता-राम विवाह से लेकर राम राज्याभिषेक तक की घटनाएँ इसमें वर्णित हैं। भवभूति से पूर्व रामकथा के इतने विस्तृत प्रसंगों को किसी ने नाट्यरूप में प्रस्तुत नहीं किया था। अतः सात अंकों में रामकथा की घटनाएँ कसी हुई हैं, जैसे – विश्वामित्र के आश्रम में राम-लक्ष्मण का आगमन, ताटका-सुबाहु आदि रासक्षों का वध, राम वनगमन, खरदूषण का वध, सीताहरण, बालिवध, सीतान्वेषण, राम रावण युद्ध, रावण वध, राम का अयोध्या लौटना और राज्याभिषेक।

भवभूति ने नाट्यकौशल से इन घटनाओं के देशकाल आदि में आवश्यक परिवर्तन करके उन्हें एक नाटकीय सूत्र में बाँधा है, इससे नाटक में प्राण-संचार हुआ है। रामकथा से परिचित लोगों को ये परिवर्तन खटक सकते हैं। जैसे – विश्वामित्र के आश्रम में राम-सीता और लक्ष्मण-ऊर्मिला की भेंट होना। रावण का दूत वहीं सन्देश लेकर आता है कि राक्षसराज ने सीता के विवाह की इच्छा प्रकट की है। शिवधनुष का भंग भी वहीं होता है।

रावण के मन्त्री माल्यवान की कूटनीति पर भवभूति ने बहुत बल दिया है। उसकी कूटनीति से ही परशुराम को राम के विरुद्ध उत्तेजित किया जाता है और बालि भी राम के शत्रु के रूप में आता है। परशुराम के मिथिला आगमन की एवं राम द्वारा बालि के वध की प्रासंगिकता की ऐसी मौलिक कल्पना भवभूति की ही है। राम आत्मरक्षा के लिए बालि को मारते हैं, सुग्रीव की सहायता के लिए नहीं।

इसी प्रकार भवभूति शूर्पणखा को दशरथ के प्रासाद में मन्थरा के रूप में उपस्थापित करते हैं, वह भी माल्यवान की कूटनीति का अंग है। इसमें राम और परशुराम का वाग्युद्ध दो या तीन अंक में वर्णित है। चतुर्थ अंक में मन्थरा के रूप में शूर्पणखा राम को कैकेयी का पत्र देती है, जिसमें वनवास का सन्देश है। पंचम अंक में जटायु और सम्पाति के संवाद में राम का वन कार्य वर्णित है बाद से सीता के हरण से लेकर सुग्रीव से मैत्री तक के वृत्तान्त रखे गए हैं।

इस नाटक में राम को महावीर दिखाया गया है, किन्तु रावण की कूटनीति की असफलता में राम के पौरुष से अधिक उनका भाग्य काम करता दिखाया गया है। इसमें कवित्व का प्रदर्शन अधिक है। नाटकीयता विस्तृत आयाम के कारण बाधित हुई है। न तो पात्रों के चरित्र का विकास उचित रूप से हुआ है और न ही मनोभावों का ही यथेष्ट चित्रण है। अनावश्यक रूप से विस्तृत प्रसंग कवित्व के उद्भावन के लिए हैं।

वीर रस प्रधान इस नाटक में ओजोगुणमयी गौड़ी शैली का प्राचुर्य है, किन्तु कुछ पद्य बहुत सरल तथा स्वाभाविक अभिव्यक्ति के सूचक हैं। दशरथ परशुराम के प्रति विनय दिखाते हुए कहते हैं—

का ते स्तुतिः स्तुतिपथादतिवृत्तधाम्नः

किं दीयतामविकलक्षिति दायिनस्ते ।

शान्तस्य किं परिजनेन मनुस्तथापि

पुत्रैः समं दशरथोऽद्य वंशवदस्ते ॥ महावीर 4.29

अर्थात् स्तुति की सीमा से ऊपर बढ़ चुके प्रताप वाले आप तपस्वी की स्तुति क्या की जाए? सम्पूर्ण पृथ्वी का दान करने वाले आप को दिया भी क्या जाये? शान्त-निःस्पृह मुनि को परिजन की क्या आवश्यकता है? फिर भी यह दशरथ अपने पुत्रों के साथ आपका दास है।

इस नाटक में वीर रस के अनेक प्रसंग इसमें आद्योपान्त भरे हैं। परशुराम के प्रसंग में रौद्र, विश्वामित्र आश्रम में सीता-राम या लक्ष्मण-ऊर्मिला के प्रसंग में शृंगार, ताटका वर्णन में वीभत्स, धनुष टंकार में अद्भुत तथा लंका में वीरों के मारे जाने पर विलाप में करुण – ये रस भी इसमें यथास्थान उद्भावित हैं। कहा जाता है कि भवभूति ने पंचम अंक के 46वें पद्य तक ही इसकी रचना की थी। दक्षिण और उत्तर भारतीय संस्करणों में इसके बाद पृथक्-पृथक् पाठ हैं।

उत्तररामचरितम्

सात अंकों के उत्तररामचरित नाटक का कथानक भगवान राम के जीवन के उत्तर भाग से संबंधित है। यह भवभूति के रूपकों में श्रेष्ठ है। कवित्व तथा नाट्यकौशल दोनों का प्रकर्ष इसमें प्रकट किया गया है। भवभूति के गम्भीर स्वभाव का उत्कर्ष इसमें मिलता है। पूरे नाटक में राम का चरित्र शील, सत्य और शक्तियुक्त बनकर प्रकाशित हुआ है। रामायण के उत्तरकाण्ड के सीता निर्वासन के कथानक पर यह आश्रित है।

राम लोकाराधन के लिए स्नेह, दया और सुख की मूर्ति अपनी प्रियतमा सीता का परित्याग कर देते हैं, किन्तु भीतर ही भीतर असह्य वेदना से दग्ध होते रहते हैं, उनके समस्त व्यापार केवल कर्तव्य निर्वाह के लिए होते हैं। राम का जीवन एकमात्र करुण रस के फलक पर विभिन्न रसों के चित्र अंकित करता है।

एको रसःकरुण एव निमित्तभेदाद् भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् । उत्तर . 3.47

सीता-निर्वासन की परिस्थितियों में राम का उत्तरदायित्व समुचित परिप्रेक्ष्य में दिखाकर कवि ने उनके चरित्र को कलंकमुक्त तो किया ही है तथा उन्हें एकान्त निर्जन में अपनी भावना के प्रकाशन का भी अवसर दिया है। करुण रस प्रधान नाटक में भी आशावाद की सुखद

किरणों की झलक यत्र-तत्र देते हुए कवि ने रामायण की दुःखान्त कथा के प्रतिकूल नाटक को सुखान्त बनाया है।

प्रथम अंक – चित्रदर्शन (संक्षिप्त कथा सार)

प्रथम अंकों में घटनाओं के संयोजन में कवि ने उत्कृष्ट कला की अभिव्यक्ति की है। राज्याभिषेक के बाद राम राजा के रूप में अपने कर्तव्यपालन में अत्यधिक निरत हैं। उनके सभी गुरुजन (वसिष्ठ तथा माताएँ) ऋष्यशृङ्ग के द्वादशवार्षिक सत्र में चले गए हैं। वसिष्ठ का संदेश जब राजकर्तव्य के पालन के संबंध में राम को मिलता है तो वे कह उठते हैं –

स्नेहं दयां न सौख्यं च यदि वा जा कीमपि।

आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे कथा।। उत्तर 1.12

अर्थात् प्रजा के अनुरंजन के लिए प्रेम, दया, सुख अथवा जानकी को भी छोड़ते हुए मुझे कष्ट नहीं होगा।

इस समय सीता पूर्णगर्भा है, उसके साथ राम चित्रवीथी के दर्शनार्थ जाते हैं। इस चित्रवीथी में राम के जीवन में सम्बद्ध चित्रों को प्रदर्शित किया गया है – विश्वामित्र के आश्रम प्रसंग से आरम्भ करके सीता की अग्निपरीक्षा तक के अनेक चित्र इसमें हैं। प्रत्येक चित्र को देखकर राम की प्रतिक्रिया होती है। वे सीताहरण के बाद के चित्रों को देख नहीं पाते। उन्हें लगता है कि पुनः सीता-वियोग आ गया हो। आगे चलकर यही होता है। सीता थककर उनकी गोद में सो जाती है। राम उसके प्रति अपने आकर्षण का प्रकाशन कई सुन्दर पद्यों में करते हैं। एक पद्य का अन्त है –

किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरह (1.38)

इसी बीच प्रतिहारी आकर कहती है –देव, उपस्थितः। राम को विरहः उपस्थितः की प्रतीति से घबराहट हो जाती है। इस प्रकार चित्रदर्शन नामक प्रथम अंक में बार-बार सीता विरह का प्रच्छन्न संकेत मिलता है। अन्ततः गुप्तचर दुर्मुख उपस्थित होकर राम को नगर और

ग्रामों में फैले सीतापवाद का समाचार देते हैं। यह सुनकर राम सीता के निर्वासन का कठोर निर्णय लेते हैं, उन्हें रोकने वाला कोई भी गुरुजन उस समय वहां नहीं है। वे भारी मन से लक्ष्मण को आदेश देते हैं। लक्ष्मण सीता को रथ में बैठाकर वन में छोड़ने के लिए जाता है।

द्वितीय अंक – पंचवटी प्रवेश

दण्डकारण्य के जनस्थान प्रदेश में विष्कम्भक में सीता परित्याग के बाद बारह वर्षों में घटित घटनाओं की सूचना दी गई है। तपस्विनी आत्रेयी और वनदेवता का प्रवेश। आत्रेयी ने सूचित किया कि किसी देवता ने महर्षि वाल्मीकि के कुश और लव नाम के दो बालक लाकर समर्पित किये हैं। इन्होंने अभी माता का दूध छोड़ा है। ये दोनों बालक अद्भुत गुणों वाले हैं। इन्हें रहस्य सहित जृम्भक अस्त्र जन्मसिद्ध हैं। वाल्मीकि ने इनका पालन पोषण किया है, इनका क्षत्रियोचित उपनयन संस्कार करके इन्हें वेदत्रयी तथा अन्य तीनों विद्यायें (आन्वीक्षिकी, वार्ता और दण्डनीति) सिखाई हैं। दोनों बालक अत्यन्त प्रतिभाशाली हैं। महर्षि वाल्मीकि को क्रौंचवध के कारण दया आना और सहसा 'मा निषाद' श्लोक का उद्गार। ब्रह्मा का वाल्मीकि को आर्षदृष्टि देना और आदेश देना कि तुम रामचरित वर्णन करो। आत्रेयी सूचित करती है कि ऋष्यशृंग का 12 वर्ष चलने वाला यज्ञ समाप्त हो गया है। वसिष्ठ, अरुन्धती आदि सीता-परित्याग के कारण राम से अप्रसन्न हैं। अतः वे वाल्मीकि के आश्रम में जाते हैं।

उधर राम ने अश्वमेध नामक यज्ञ प्रारम्भ किया है और उसमें पत्नी के स्थान पर सीता की स्वर्णमूर्ति स्थापित की है। दिग्विजय के निमित्त अश्वमेध का घोड़ा छोड़ा गया है और उसके रक्षकों का नेतृत्व लक्ष्मण का पुत्र चन्द्रकेतु कर रहा है। इस बीच एक ब्राह्मण बालक की अकालमृत्यु होती है और आकाशवाणी होती है कि शम्बूक नाम का एक शूद्र तप कर रहा है, उसको मार कर बालक को पुनर्जीवित करो। राम शम्बूक को ढूँढते हुए दण्डकारण्य वन में जाते हैं। (विष्कम्भक)

राम शूद्र तपस्वी शम्बूक को मार देते हैं। शम्बूक का दिव्यपुरुष का रूप धारण करके राम के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना। शम्बूक से यह जानकर कि यह दण्डक वन है तो राम का

पूर्व घटनाओं को स्मरण करना और विलाप करना। अगस्त्य ऋषि के निमन्त्रण पर पंचवटी के दर्शन के बिना ही पुष्पक विमान से राम का अगस्त्य के आश्रम के लिए प्रस्थान।

तृतीय अंक – छाया अंक

स्थान—दण्डकारण्य का पंचवटी प्रवेश। विष्कम्भक में शरीरधारी तमसा और मुरला नामक दो नदी—देवताओं का प्रवेश। दोनों के संवाद से सूचित होता है कि सीता के परित्याग से राम अत्यधिक दुःखित एवं शोकातुर हैं। गोदावरी नदी से प्रार्थना की गई है कि वह राम के जीवन के प्रति सावधान रहे। कुश और लव के विषय में और विवरण प्राप्त होता है कि वाल्मीकि के आश्रम के समीप सीता को छोड़कर जब लक्ष्मण लौट जाते हैं, तब सीता ने प्रसवपीड़ा से पीड़ित होकर अपने आपको गंगा के प्रवाह में डाल दिया और वहीं उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए। गंगा और पृथ्वी कृपा करके सीता को पाताल ले गई। जब दोनों बालकों ने माता का दूध छोड़ दिया तब देवी गंगा ने स्वयं वे दोनों बालक महर्षि वाल्मीकि को समर्पित किये।

इधर राम अगस्त्य ऋषि के आश्रम से लौटकर पंचवटी में आते हैं। गंगा को संदेह है कि कहीं राम कुछ अनिष्ट न कर बैठे। अतः वह सीता सहित गोदावरी के पास आती है। उस दिन कुश और लव की 12वीं वर्षगांठ थी। गंगा ने सीता को आदेश दिया कि वह अपने हाथ से एकत्रित फूलों से सूर्य की पूजा करे। साथ ही सीता को सिद्धि प्रदान की कि वह अदृश्य होकर रहेगी। उसे मनुष्य ही नहीं, वनदेवता भी नहीं देख पाते हैं। सीता गोदावरी के जल से निकलती है और साक्षात् करुणा की मूर्ति एक शरीरधारिणी विरह व्यथा प्रतीत होती है। (विष्कम्भक)

राम पंचवटी में प्रवेश करते हैं और अपने पूर्वपरिचित स्थानों को देखकर मूर्च्छित होते हैं। सीता अपने हाथ के स्पर्श से राम को होश में लाती हैं। राम सीता के प्रति अपने हार्दिक एवं मार्मिक उद्गार प्रकट करते हैं। सीता भी अदृश्य रहते हुए राम के हार्दिक भावों से परिचित होती है। वनदेवता वासन्ती का पंचवटी में राम से मिलना। राम वासन्ती से वार्तालाप करते हैं, उधर अदृश्य रहते हुए सीता तमसा से बात करती है। फिर पंचवटी के दृश्यों का

वर्णन है। वासन्ती राम से सीता के विषय में प्रश्न पूछती है और सीता—परित्याग के लिए राम की भर्त्सना करती है कि कीर्ति लाभ के लिए सीता—परित्याग क्या उचित कार्य था? राम दुःखित होते हैं और आशंका प्रकट करते हैं कि वन में सीता को हिसंक पशु खा गए हैं। राम भावावेश में विलाप करते हैं। वे मूर्च्छित होते हैं और सीता के हस्तस्पर्श से होश में आते हैं। राम सूचित करते हैं कि उन्होंने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया है और उसमें सीता की स्वर्ण प्रतिमा को उन्होंने पत्नी के स्थान पर रखा है। सीता के समस्त संदेह दूर हो जाते हैं। राम अश्वमेध यज्ञ के लिए अयोध्या लौट जाते हैं और सीता पुत्रों की वर्षगांठ मनाने के लिए गंगा के पास जाती है।

चतुर्थ अंक —कौशल्याजनकयोग

स्थान — महर्षि वाल्मीकि का समीपवर्ती स्थान। वाल्मीकि के शिष्य सौधातकि और दण्डायन के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि के आश्रम में वसिष्ठ, अरुन्धती, राम की माताएं और जनक अतिथि रूप में आए हैं। सीता के शोक से सन्तप्त राजर्षि जनक आश्रम के बाहर वृक्ष के नीचे बैठे हैं। (विष्कम्भक)

जनक का प्रवेश। वे सीता के शोक में विलाप करते हैं। वसिष्ठ के आदेशानुसार अरुन्धती के साथ कौशल्या जनक से मिलने आती है। जनक और कौशल्या सीता—शोक के कारण दुःखित होते हैं तथा राम और सीता के विवाह के पश्चात् की घटनाओं को स्मरण करके दुःखित होते हैं। अरुन्धती का कथन है कि वसिष्ठ ने बताया है कि इन घटनाओं का अन्त सुख होगा। नेपथ्य में खेलते हुए बालकों का कोलाहल। बालकों में राम के सदृश आकृति वाला बालक दिखाई देता है। जनक उसे कंचूकी से बुलवाते हैं। बालक लव आकर उन वृद्धों को प्रणाम करता है। कौशल्या यह देखकर आनन्दित होती है कि लव की आकृति सीता से भी मिलती—जुलती है। कौशल्या लव से उसके माता—पिता का नाम पूछती है। लव अपने आपको वाल्मीकि का पुत्र बताता है। लव रामायण की कथा तथा उसके पात्र राम, लक्ष्मण, जनक आदि की जानकारी प्रकट करता है। जनक के यह पूछने पर कि दशरथ के किस—किस पुत्र से

कितनी सन्तान हैं, लव सूचित करता है कि यह अंश अभी अप्रकाशित है और वाल्मीकि ने यह अंश मेरे बड़े भाई कुश के संरक्षण में अभिनय के लिए भरतमुनि के पास भेजा है। इसी बीच अश्वमेध का अश्व आश्रम के समीप आता है और बालक घोड़ा दिखाने के लिए लव को ले जाते हैं। अश्व रक्षकों से विवाद बढ़ जाने के कारण लव अपना धनुष उठाकर युद्धार्थ तैयार हो जाता है।

पंचम अंक—कुमार विक्रम

स्थान—वाल्मीकि के आश्रम का समीपवर्ती स्थान। सारथि सुमन्त्र के साथ लक्ष्मण पुत्र चन्द्रकेतु का प्रवेश। दोनों यह देखकर आश्चर्यचकित हैं कि लव ने अश्वरक्षकों को हरा दिया और मार भगाया है। चन्द्रकेतु लव का युद्धार्थ आह्वान करता है। वार्तालाप में विघ्न करने के कारण लव जृम्भक अस्त्र के प्रयोग से सैनिकों को निश्चेष्ट कर देता है। लव राम के शौर्य को कुछ नहीं समझता है और उन पर आक्षेप करता है। क्रुद्ध चन्द्रकेतु लव से युद्ध के लिए तैयार हो जाता है।

षष्ठ अंक — कुमार प्रत्यभिज्ञान

स्थान — वाल्मीकि के आश्रम का समीपवर्ती स्थान। विद्याधर और विद्याधरी के संवाद से सूचना मिलती है कि लव और चन्द्रकेतु में दिव्य अस्त्रों से घोर युद्ध हो रहा है। चन्द्रकेतु ने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया है, उसके प्रतिकार स्वरूप लव ने वरुण अस्त्र का प्रयोग किया है। पुनः उसके प्रतिकार रूप में चन्द्रकेतु ने वायव्य अस्त्र छोड़ा है। इसी समय शम्बूक के वध के बाद लौटे हुए राम का प्रवेश (विष्कम्भक)

लव और चन्द्रकेतु राम को प्रणाम करते हैं। लव को देखकर राम को हार्दिक प्रसन्नता होती है और वे उसे गले लगाते हैं। लव जृम्भक अस्त्र को वापिस लौटा देता है। लव राम को सूचित करता है कि जृम्भक उसे जन्मसिद्ध है। इसी समय भरत के आश्रम से लौटे हुए कुश का प्रवेश। कुश लव से राम का परिचय प्राप्त करके उन्हें प्रणाम करता है। राम कुश और लव की आकृति से अनुमान करते हैं कि ये दोनों बालक सीता के पुत्र हैं, ये युगल हैं, इन्हें जृम्भक

अस्त्र जन्मसिद्ध है। अपने अनुमान की पुष्टि के लिए वे उनसे कुछ प्रश्न पूछते हैं, परन्तु सीता के विषय में उनके उत्तर उदासीन के सदृश हैं। अतः राम अपना अनुमान त्याग देते हैं। शिशु कलह को सुनकर वसिष्ठ, वाल्मीकि, जनक, दशरथ की रानियाँ और अरुन्धती वहाँ पहुँचते हैं। शोकसन्तप्त एवं लज्जित राम उनको प्रणाम करने के लिए जाते हैं।

सप्तम अंक – सम्मेलनम्

वाल्मीकि के आश्रम के समीप गंगा के तट पर वाल्मीकि की कृति का अप्सराओं के द्वारा अभिनय दिखाया गया है। इस अभिनय को देखने के लिए राम के सहित सारी प्रजा उपस्थित होती है। वाल्मीकि ने अपनी तपस्या के प्रभाव से चराचर के सहित समस्त देवों और असुरों को वहाँ बुला लिया है। इस गर्भनाटक का उद्देश्य है – सीता को सर्वथा निर्दोष सिद्ध करके उसका तथा कुश-लव का राम के साथ समागम और नाटक को सुखान्त बनाना। इसमें सीता-परित्याग से लेकर कुश-लव के जन्म तक की कथा का वर्णन है। सीता प्रसववेदना से पीड़ित होकर अपने आपको गंगा में डाल देती है। सीता जल में ही पुत्रों को जन्म देती है। गंगा और पृथ्वी एक-एक बच्चे को गोद में लिए हुए सीता को सहारा देकर जल से बाहर लाती हैं। पृथ्वी सीता-परित्याग के कारण राम पर क्रुद्ध होती हैं और गंगा उसे समझाती है।

आकाश में तीव्र प्रकाश होता है और प्रकाशमय जृम्भक अस्त्र कुश और लव को प्राप्त होते हैं। पृथ्वी के आदेशानुसार सीता दूध छोड़ने तक दोनों बालकों का पालन करती है और तत्पश्चात् गंगा उन दोनों को महर्षि वाल्मीकि को समर्पित करती है। सीता के रसातल को सुशोभित करने के समाचार को सुनकर राम मूर्च्छित हो जाते हैं। सीता के स्पर्श मात्र से राम होश में आते हैं। पृथ्वी अपने उत्तरदायित्व से मुक्त होती है कि अब तक मैंने सीता की रक्षा पूरी की। राम पृथ्वी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। अरुन्धती सीता की पवित्रता की घोषणा करती है और सभी देवादि तथा चराचर प्राणिवर्ग उसका समर्थन करते हैं। राम निर्दोष सीता को स्वीकार करते हैं। कुश और लव के साथ वाल्मीकि का प्रवेश। कुश और लव का अपने माता-पिता से मिलन होता है। भरतवाक्य के साथ नाटक की समाप्ति।

भवभूति का नाट्य वैशिष्ट्य

भवभूति की कृतियों को देखने से ज्ञात होता है कि उनका शास्त्रीय और कला विषयक ज्ञान अगाध था। उसने वेद उपनिषद्, दर्शन, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, राजनीति, धनुर्वेद, साहित्य, कामशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, संगीत, नृत्य, चित्रकला, मनोविज्ञान, भूगोल और इतिहास आदि का गंभीर अध्ययन किया था। भवभूति के पांडित्य सूचक स्थल अनेक हैं। उत्तररामचरित के अतिरिक्त उसने मालतीमाधव और महावीर चरित में भी बहुत ऐसे प्रसंग दिए हैं।

संस्कृत साहित्य में कालिदास के बाद भवभूति का ही नाम उत्कृष्ट नाटककार के रूप में लिया जाता है। उसके मालतीमाधव, महावीरचरित और उत्तरराम चरित इन तीन नाटकों में उत्तररामचरित को ही सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। इसमें भवभूति अपने आपको परिणतप्रज्ञ कहता है। (उत्तर. 7.21) इसमें उसने अपनी योग्यता और विद्वता का चरम रूप प्रकट किया है। यह नाटक उसकी नाटकीय प्रतिभा का सर्वोत्तम निदर्शन है। इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ मुख्य रूप से परिलक्षित होती हैं — घटना संयोजन के सौष्ठव, घटनाओं और वर्णनों की सार्थकता, वर्णनों में स्वाभाविकता, चरित्र-चित्रण में वैयक्तिकता, कथोपकथन में स्वाभाविकता, मनोहर शैली, देशकाल का विचार, कवित्व और रस परिपाक। भवभूति के जीवन में ही उसके तीनों नाटकों का सफलता के साथ अभिनय हो चुका था, इससे उसके नाटकों की अभिनेयता सिद्ध होती है।

वाणी को अपने वश में रखने वाले कवि भवभूति ने संस्कृत साहित्य में प्रचलित गौड़ी और वैदर्भी दोनों शैलियों का भावों के अनुसार प्रयोग किया है। प्रकृतिवर्णनों में या वीररस के प्रसंगों में उन्होंने गौड़ी रीति का अनुसरण किया है तो सामान्य स्थिति में वैदर्भी रीति अपनाई है। अलंकारों के प्रयोग भी भवभूति ने अपने प्रतिपाद्य को स्पष्टतर बनाने के लिए बहुधा किए हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, काव्यलिंग आदि उनके प्रिय अलंकार हैं। उन्होंने कई नए उपमान प्रस्तुत किए हैं।

जहाँ तक कथावस्तु का प्रश्न है उसमें यह नाटक अत्यधिक सफल है। राम के उत्तरजीवन का करुण प्रसंग किसे ज्ञात नहीं है? युगों से चले आये हुए इस कथानक में समुचित सुधार करके भवभूति ने न केवल इसे नाट्य व्यापार के योग्य बनाया है अपितु सीता निर्वासन की परिस्थितियों का अभिनव संयोजन करके राम को दोषमुक्त करने का भी श्लाघ्य प्रयास किया है। ऐसा ही प्रयास वे बालिवुड के प्रसंग में महावीर चरित में भी कर चुके हैं। इसलिए कहा गया है कि सीता निर्वासन के साहित्यिक समर्थन का प्रयास इस नाटक में हुआ है।

इस नाटक का छायांक भी भवभूति की मानसी सृष्टि है। इससे सीता के निर्वासन के बाद भी घटनाओं का संक्षिप्त परिचय तो मिलता ही है, राम तथा सीता की मनःस्थिति का भी स्पष्ट निरूपण होता है। राम की मनःस्थिति सूत्र रूप में इस प्रकार दी गई है —

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।

पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः॥ उत्तर .3.1

अर्थात् पत्नी सीता के परित्याग के बाद गंभीरता के कारण अप्रकट एवं अंदर छिपी हुई घोर वेदना से युक्त राम का करुण रस (शोक) पुटपाक के तुल्य है।

उत्तररामचरित में तीन महत्त्वपूर्ण कल्पनाएँ हैं — चित्रदर्शन, छायांक तथा गर्भनाटक। तीनों के पृथक्-पृथक् नाटकीय महत्त्व कथावस्तु के सघन प्रभाव की दृष्टि से हैं। चित्रदर्शन का स्थूल उद्देश्य सीता का मनोरंजन करना है जो अपने पिता के लौटने से दुःखी है। इसमें करुण दृश्यों का संकलन है और इसी से भावी सीता-वियोग का संकेत मिलता है। इसी में जृम्भकास्त्र के दृश्य हैं तथा सीता की सन्तान में भी स्वयं इस अस्त्र के संक्रमण की बात कही गई है। लव कुश को पहचानने में यही जृम्भकास्त्र सहायक होता है।

गर्भनाटक की योजना से सीता का पवित्र चरित्र सार्वजनिक रूप से घोषित हो जाता है और बिखरे हुए परिवार को संयुक्त करने में सहायता होती है। पृथ्वी और गंगा के निरन्तर सान्निध्य में रह चुकी सीता को कोई कलंकित करने का साहस नहीं कर सकता। एक प्रकार

से गर्भनाटक उत्तररामचरित का प्रतीक बनकर आया है जिसे वाल्मीकि के नूतन रूप, परिणतप्रज्ञ, शब्दब्रह्मविद् भवभूति ने रचा है।

‘कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते’

संस्कृत नाट्य साहित्य में भवभूति के द्वारा उत्तररामचरित में प्रधान रस के रूप में स्वीकृत करुण रस की बहुधा चर्चा हुई है। शृंगार के उद्भावन में कालिदास श्रेष्ठ हैं तो करुण रस को पराकाष्ठा पर भवभूति ने पहुँचाया है। तृतीय अंक में सीता-राम के जीवन के घटनाचक्रों को ध्यान में रखकर एक पात्र तमसा को उन्होंने मुखरित किया —

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्

भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्। उत्तर. 3.47

जीवन में निराशा, जगत् की अस्थिरता, इच्छाओं की पूर्ति में बाधा इत्यादि ने भवभूति को गम्भीर तथा करुणप्रिय बना दिया है। उन्होंने अपनी इस प्रवृत्ति की पुष्टि के लिए ही भारतीय साहित्य के करुणतम प्रसंग को नाट्य रूप प्रदान किया। वश्यवाक् भवभूति की वाणी में इतना बल था कि उनके द्वारा प्रदर्शित करुण प्रसंगों में शिलाखण्ड भी रो पड़े —

अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्। उत्तर. 1.28

अर्थात् निर्जन जनस्थान (दण्डकारण्य) में खिन्न चित्त आपके चरितों से पत्थर भी रो पड़ा था और वज्र का भी हृदय फट गया था।

भवभूति की सूक्तियाँ उनकी दार्शनिकता का आभास देती हैं —

वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि

लाकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥ उत्तर. 2.7

अर्थात् वज्र से कठोर और फूल से भी कोमल महापुरुषों के चित्त को कौन जान सकता है?

न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैदुःख्यान्यपोहति।

तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः॥ उत्तर. 2.19

जो व्यक्ति जिसका प्रिय होता है, वह कुछ न करता हुआ भी (साथ मात्र से) सुख से उसके दुःखों को नष्ट कर देता है। यह उसका अनुपम धन होता है।

तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः। उत्तर. 1.3

सतां सदिभः संगः कथमपि हि पुण्येन भवति। उत्तर. 2.1

रहस्यं साधूनामनुपधिं विशुद्ध विजयते। उत्तर. 2.2

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः। उत्तर. 4.11

पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति। उत्तर. 4.12

हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्। उत्तर. 6.32

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुः। उत्तर. 6.12

तेजस्तेजसि शाम्यतु। उत्तर. 5.7

कुल मिलाकर भवभूति संस्कृत भाषा के एक अमर कवि नाट्यकार हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा नाट्यजगत में अभिनव मार्ग का निर्माण किया। उत्तररामचरित को करुणरस प्रधान बनाकर उन्होंने मर्यादापुरुष राम के कलंक का भी प्रक्षालन किया।

विश्वास की महिमा में, प्रेम की पवित्रता में, भाव की तरंग-क्रीड़ा में, भाषा के गाम्भीर्य में और हृदय के महात्म्य में उत्तररामचरित श्रेष्ठ है और घटनाओं की विचित्रता में, कल्पना के कोमलत्व में, मानव चरित्र के सूक्ष्म विश्लेषण में, भाषा की सरलता और लालित्य में अभिज्ञानशाकुन्तल श्रेष्ठ है। संस्कृत साहित्य में ये दोनों नाटक अद्वितीय हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल शरद् ऋतु की पूर्ण चाँदनी है, दूसरा हविष्यान्न है, एक वसन्त है दूसरा वर्षा, एक नृत्य है दूसरा अश्रु है तथा एक उपभोग है दूसरा पूजन है।

नाट्यकार भट्टनारायण

भट्टनारायण ने स्वयं तो अपने विषय में कुछ नहीं लिखा है। वामनाचार्य और आनन्दवर्धनाचार्य ने अपने ग्रन्थों में वेणीसंहार से उदाहरण दिए हैं। इससे यह निश्चय किया जाता है कि भट्टनारायण आठवीं शताब्दी में रहे होंगे। दूसरी ओर यह उल्लेख भी मिलता है

कि बंगाल के राजा आदिशूर ने पाँच विद्वान् ब्राह्मणों को अपनी राजसभा में बुलाया था। उनमें से एक ब्राह्मण भट्टनारायण थे जो कान्यकुब्ज (कन्नोज) के निवासी थे। इसके अतिरिक्त वेणी संहार के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह भागवत धर्म के मानने वाले और कृष्ण के उपासक थे।

रचना — भट्टनारायण की केवल एक ही रचना वेणीसंहार प्राप्त होती है। उसी से वह संस्कृत नाटककारों में महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। नाट्यशास्त्र पर लिखने वाले आचार्यों ने वेणीसंहार को अनेक बार उद्धृत किया है। इस नाटक में छह अंक हैं।

वेणीसंहार की कथावस्तु (संक्षिप्त परिचय)

वेणीसंहार का कथानक महाभारत से लिया गया है और उसको नाटकीय प्रदर्शन के उपयुक्त बनाने का प्रयास किया गया है। मुख्य कथानक कौरवों की सभा में पाण्डवों तथा द्रौपदी का अपमान है। यह नाटक द्रौपदी की खुली वेणी के संहार (संवारने) की घटना को केन्द्र बनाकर चलता है। कौरव सभा में द्रौपदी के केश खींचे जाने पर द्रौपदी की वेणी खुल जाती है और वह प्रण करती है कि जब तक इस अपमान का बदला नहीं लिया जाएगा वह वेणी नहीं बांधेगी। भीमसेन ने भी तुरन्त प्रतिज्ञा की कि वह दुर्योधन के रक्त से रंगे हाथों से द्रौपदी की वेणी का संहार करेगा। अन्त में यह प्रतिशोध पूर्ण होता है।

प्रथम अंक

यह अंक भीम और सहदेव के संवाद से प्रारम्भ होता है। वे कृष्ण के प्रयत्न के परिणाम की प्रतीक्षा करते हैं जो पाण्डवों और कौरवों में सन्धि का प्रस्ताव लेकर गए हैं। अपनी शक्ति के दम्भ और उग्र क्रोध की अभिव्यक्ति करते हुए भीम उद्घोष करते हैं कि यदि द्रौपदी के अपमान का बदला लिये बिना युधिष्ठिर सन्धि करते हैं तो मैं उनसे संबंध विच्छेद कर लूँगा। सहदेव उन्हें शान्त करने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु वह निष्फल हो जाता है। खुले हुए केशों

की ओर इंगित करके दुर्योधन की रानी ने अपमानजनक बात कह दी है, इस नई घटना का उल्लेख करके द्रौपदी भीम की कटुता को और भी बढ़ा देती है। शान्तिवार्ता विफल हो जाने से कृष्ण खाली हाथ लौटकर आते हैं। शत्रुओं के शिविर में बन्धन से बचने के लिए उन्हें मायायुधों का प्रयोग करना पड़ा है। युद्ध अनिवार्य हो गया है। द्रौपदी अब करुणार्द्र हो गई है। वह अपने पतियों को शत्रु से प्राण रक्षा के लिए सावधान करती है।

द्वितीय अंक

यह अंक दुर्योधन की रानी भानुमति के अशुभ स्वप्न के साथ आरम्भ होता है। उसने स्वप्न देखा कि एक नकुल ने सौ सर्प मार डाले हैं। यह भावी घटना का सूचक है कि पाण्डव सौ कौरवों का वध करेंगे। राजा दुर्योधन छिपकर सुनता है, किन्तु समझ नहीं पाता। उसे भ्रम होता है कि भानुमति उसके साथ छल कर रही है। सत्य बात का बोध होने पर पहले तो वह भयभीत होता है, परन्तु उस क्षणिक अवसाद को वह झाड़ फेंकता है। रानी इस उपशकुन के शमन के निमित्त सूर्य की पूजा करती है। राजा उसे आश्वासन देता है। तूफान आता है और वे सुरक्षा के लिए आसन वेदी पर बैठते हैं। तदनन्तर अर्जुन पुत्र अभिमन्यु को मारने वाले सिन्धुराज जयद्रथ की माता दुःशला आती है। दुर्योधन उसके भय की बात को हँसकर उड़ा देता है। द्रौपदी के घोर अपमान का स्मरण करके वह पाण्डवों की विरोध भावना का उपहास करता है। अतः वह रथ पर सवार होकर युद्ध के लिए प्रस्थान करता है।

तृतीय अंक

भयानक भीम का प्रवेश होता है। एक राक्षसी और उसका पति युद्ध में मारे गए पुरुषों के मांस और रक्त का आहार करते हैं। वे वहाँ बुलाये गए हैं, क्योंकि हिडिम्बा और भीम का पुत्र घटोत्कच मारा गया है और उसकी राक्षसी माँ ने उन्हें आदेश दिया है कि वे कौरव सेना से प्रतिशोध लेते हुए भीम के साथ रहें। उन्हें इस प्रतिशोध का पहला फल धृष्टद्युम्न के द्वारा

द्रौण की मृत्यु में दिखाई देता है। अपने पुत्र की मृत्यु के झूठे समाचार को सुनकर उन्होंने अस्त्र-शस्त्र डाल दिए थे। अश्वत्थामा के पहुँचने से पहले ही उनका वध हो जाता है। छलपूर्ण युक्ति से अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर अश्वत्थामा शोकमग्न है। उसके मामा कृपाचार्य उसे आश्वासन देते हैं और उनसे कहते हैं कि दुर्योधन से कहो कि वह युद्ध में तुम्हें सेनापति बनाए, परन्तु इस बीच कर्ण ने दुर्योधन को भड़का दिया है। द्रोण ने केवल अपने पुत्र के राज्याधिकार के लिए युद्ध किया था और अपनी योजना के असफल हो जाने से हताश होकर प्राणोत्सर्ग कर दिया। कृप और अश्वत्थामा वहाँ पहुँचते हैं। अश्वत्थामा सेनापति पद के लिए कहता है, किन्तु दुर्योधन अस्वीकार करता है, क्योंकि वह कर्ण को वचन दे चुका है। अश्वत्थामा कर्ण से झगड़ पड़ता है। दुःशासन के वध के लिए कटिबद्ध भीम की गर्वोक्ति को सुनकर झगड़ा रुक जाता है। वह कृप को राजा की सहायता के लिए भेजता है।

चतुर्थ अंक

घायल दुर्योधन लाया जाता है। स्वस्थ होने पर वह दुःशासन की मृत्यु का समाचार सुनता है। कौरवों पर एक और विपत्ति पड़ी है। कर्ण के पास से आया हुआ एक चर अपने लम्बे प्राकृत भाषण में कर्ण के पुत्र की मृत्यु का वर्णन करता है और सहायता के लिए कर्ण के रक्त से लिखित अभ्यर्थना पत्र प्रस्तुत करता है। दुर्योधन युद्ध में जाने को तैयार होता है, किन्तु इसी समय संजय के साथ धृतराष्ट्र और गान्धारी के आगमन के कारण रुक जाता है।

पंचम अंक

संजय के साथ आए गान्धारी-धृतराष्ट्र दुर्योधन को सन्धि करने के लिए प्रेरित करते हैं परन्तु उनका यत्न व्यर्थ जाता है क्योंकि दुर्योधन इन्कार कर देता है और कर्ण की मृत्यु का समाचार सुनकर किसी सहायक के बिना ही युद्ध के लिए तैयार होता है। भीम-अर्जुन के आग्रह पर वे दोनों धृतराष्ट्र को अपमानपूर्ण प्रणाम करते हैं। दुर्योधन भीम को ललकारता है।

वे उससे लड़ पड़ते, किन्तु अर्जुन मना कर देता है। युधिष्ठिर के बुलाने से वे दोनों चल देते हैं। अश्वत्थामा आता है और उससे मेल करना चाहता है। दुर्योधन उसकी उपेक्षा करता है और चला जाता है। धृतराष्ट्र के आदेश से संजय उसे शान्त करने के लिए उसके पीछे जाता है।

षष्ठ अंक

युधिष्ठिर और द्रौपदी को संवाद मिलता है कि भीम के हाथ से दुर्योधन की मृत्यु हो गई है, परन्तु एक चार्वाक आता है और बिल्कुल उल्टी बात कहता है। वह बताता है कि दुर्योधन के हाथों भीम और अर्जुन की मृत्यु हो गई है। द्रौपदी और युधिष्ठिर प्राण त्यागने का संकल्प करते हैं। वह चार्वाक, जो वस्तुतः एक राक्षस है, प्रसन्न होकर प्रस्थान करता है, परन्तु जब वे मरने के लिए तैयार होते हैं, तभी कोई शब्द सुनाई देता है। उसे दुर्योधन समझकर युधिष्ठिर शस्त्र के लिए दौड़ पड़ते हैं। द्रौपदी भागती है और भीम उसके केश पकड़ लेता है। फिर हास्यास्पद भूल का पता चलता है। द्रौपदी अपनी वेणी का संहार करती है। अर्जुन और कृष्ण पहुँचते हैं। नकुल ने चार्वाक का वध कर दिया है और सब सुखान्त होता है।

भट्टनारायण का नाट्य वैशिष्ट्य

वेणीसंहार नाटक के रचयिता के रूप में भट्टनारायण का महत्त्व इसलिए बहुत अधिक है कि इनकी कृति महाभारत युद्ध पर आश्रित वीर रस प्रधान नाटक है तथा इसमें नाटकीय उपादानों का सर्वाधिक प्रयोग होने के कारण संस्कृत नाट्य-शास्त्रियों के द्वारा इसके उद्धरण व्यापक रूप में दिए गए हैं। अनेक परवर्ती विद्वानों जैसे भोज, क्षीर स्वामी और मम्मट ने जो उदाहरण दिए हैं वे भट्टनारायण की प्रसिद्धि के पर्याप्त प्रमाण हैं। इन्हें मृगराजलक्ष्मा और कविमृगेन्द्र भी कहा जाता है।

भट्टनारायण ने मूलकथा में व्यापक परिवर्तन करके उसे नाटकीय बनाने का अत्यधिक प्रयास किया है। द्रौपदी की वेणी संवारने की प्रतिज्ञा नई कल्पना है, मूलकथा में अरुभंग की

प्रतिज्ञा है। भानुमति का प्रसंग भी कवि की कल्पना है। राक्षस-साक्षसी संवाद तथा चार्वाक द्वारा गलत सूचना दिलाना भट्टनारायण की नाट्य-कल्पना ही है।

वास्तव में, वेणीसंहार काव्य और नाटक का मिश्रण करने वाले संस्कृत रूपकों में अन्यतम है। गौड़ी रीति में पाण्डित्य का प्रकर्ष दिखाने वाले भट्टनारायण का अनुकरण मुरारि आदि अनेक नाट्यकारों ने किया। नाट्यशास्त्रों में निहित लक्षणों तथा सिद्धान्तों का अनुसरण पद-पद पर करने के कारण वेणीसंहार रुढ़िग्रस्त है। यद्यपि इसके नाट्यशास्त्रीय महत्त्व को परवर्ती युग में बहुत सराहा गया, किन्तु यह उत्कृष्ट कोटि का नाटक नहीं कहा जा सकता।

भट्टनारायण शैली के धनी हैं। सामान्यतः इस नाटक में ओज गुण का प्रयोग है, किन्तु आवश्यकतानुसार सभी रसों में समान आदर पाने वाला प्रसाद गुण भी हृदयावर्जक है। जैसे यह प्रसिद्ध श्लोक इस नाटक में आशा के महत्त्व को प्रकट करता है –

गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते।

आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान्।। वेणी. पृ. 5.23

वीररस प्रधान नाटक में भी रोचकता का समावेश करने, अर्थानुकूल भाषा शैली के प्रयोग एवं पात्रों के ओजस्वी चित्रण के कारण इस नाटक के रचयिता भट्टनारायण संस्कृत नाट्यजगत् में अमर हैं।

6.4 अपनी प्रगति जांचिए

1. मुद्राराक्षस नाटक के रचयिता का नाम क्या है?
2. मुद्राराक्षस में कितने अंक हैं?
3. प्रियदर्शिका नाटिका किसके द्वारा लिखी गई?
4. रत्नावली नाटिका में नायक कौन है?
5. नागानन्द नाटक में कितने अंक हैं?
6. मालतीमाधवम् नाटक की रचना किसने की?
7. भवभूति को किस रस का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है?

8. छाया अंक किस नाटक में है?
9. वेणीसंहार नाटक के रचयिता कौन हैं?
- 1.0. वेणीसंहार में किस रस की प्रधानता है?

6.5 सारांश

संस्कृत नाट्यजगत् में विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस नामक राजनीतिक नाटक, राजा हर्षवर्धन रचित प्रियदर्शिका, रत्नावली व नागानन्द नाटक तथा भवभूति के तीनों रूपकों (मालतीमाधव, महावीरचरित एवं उत्तररामचरित) और भट्टनारायण कृत वेणीसंहार का विशेष स्थान है। इनमें अपने-अपने क्षेत्र में सभी उत्कृष्ट हैं जैसे, एकमात्र राजनीतिक नाटक मुद्राराक्षस हैं जो चाणक्य की कूटनीतिक चालों के लिए अतिविख्यात है तो नाटिकाओं में मूर्धन्य स्थान हर्षवर्धन की नाटिकाओं को प्राप्त हैं भवभूति ने उत्तररामचरित नामक नाटक में करुण रस का जो सुन्दर परिपाक किया है वह अक्षितीय – अतुलनीय है। जहाँ कालिदास शृंगार रस परिपाक में सर्वश्रेष्ठ हैं, वहीं करुणरस परिपाक में भवभूति के समान कोई नहीं। भवभूति ने उत्तर रामचरित को करुण रस प्रधान बनाकर मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के कलंक का भी प्रक्षालन किया है। वीर रस प्रधान नाटकों में भट्टनारायण का वेणी संहार रोचकता का समावेश करने, अर्थानुकूल भाषा शैली तथा पात्रों के ओजस्वी चित्रण के कारण नाट्यजगत् में अमर है। इसके नाट्यशास्त्रीय महत्त्व को बहुत सराहा गया।

6.6 मुख्य शब्दावली

1. मुद्राराक्षस – मुद्रया गृहीतं राक्षसमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः मुद्राराक्षसम्।
(मुद्रा के द्वारा राक्षस अमात्य के निग्रह की घटनाप्रधान नाटक)
2. महावीर चरित – महावीर (महाप्राक्रमी श्रीराम) के बालकाण्ड से युद्धकाण्ड तक के चरित को प्रदर्शित करता नाटक।

3. वेणीसंहार – दुर्योधन के रक्त से द्रौपदी की वेणी का संहार (संवारना)
4. छायांक – भवभूति रचित उत्तररामचरित का तीसरा अंक, जिसमें सीता छाया के रूप में श्रीराम के साथ है।
5. रत्नावली – रत्नों की माला, हर्षवर्धन कृत श्रेष्ठ नाटिका।

6.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. विशाखदत्त
2. सात
3. हर्षवर्धन द्वारा
4. उदयन
5. पाँच
6. भवभूति ने
7. करुण रस का
8. उत्तररामचरितम् में
9. भट्टनारायण
10. वीर रस की

6.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस के विषय में एक टिप्पणी लिखिए।
2. विशाखदत्त का नाट्यवैशिष्ट्य स्पष्टकीजिए।
3. प्रियदर्शिका नाटिका का सार संक्षेप कीजिए।
4. रत्नावली नाटिका के आधार पर हर्षवर्धन का वैशिष्ट्य बताइए।
5. नागानन्द नाटक पर एक टिप्पणी लिखिए।

6. 'मालतीमाधवम्' पर एक टिप्पणी लिखिए।
7. महावीरचरितम् नाटक का सार बताइए।
8. उत्तररामचरितम् में करुण रस प्रधानता सिद्ध कीजिए।
9. 'कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते' विषय पर एक निबन्ध लिखिए।
10. वेणीसंहार नाटक का नाट्यजगत में महत्त्व प्रतिपादित कीजिए।

6.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. मुद्राराक्षसम् –विशाखदत्त, व्याख्याकार डॉ. निरुपमा वेदालंकार, साहित्य भंडार, मेरठ।
2. मुद्राराक्षसम् – विशाखदत्त, व्याख्याकार परमेश्वर दीन पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
3. रत्नावली नाटिका – हर्षवर्धन, व्याख्याकार परमेश्वर दीन पाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
4. उत्तररामचरितम् – भवभूति व्याख्याकार डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायण लाल विजय कुमार, इलाहाबाद।
5. वेणीसंहार नाटकम् – भट्टनारायण, व्याख्याकार डॉ. कृष्णकान्त त्रिपाठी, साहित्य भण्डार, मेरठ।
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास—वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
7. संस्कृत साहित्य का इतिहास—डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्बा भारती अकेडमी, वाराणसी।

अध्याय-7

अन्य काव्य विधाएँ (खण्ड काव्य और गीतिकाव्य)

- 7.1 अध्याय के उद्देश्य
- 7.2 परिचय
- 7.3 अन्य काव्य विधाएँ (खण्ड काव्य और गीतिकाव्य)
- 7.4 अपनी प्रगति जांचिए
- 7.5 सारांश
- 7.6 मुख्य शब्दावली
- 7.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर
- 7.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 7.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

7.1 अध्याय के उद्देश्य

- खण्डकाव्य ऋतुसंहार की अवधारणा प्रस्तुत कर सकेंगे।
- ऋतुसंहार में वर्णित सभी छह ऋतुओं का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- मेघदूत की अद्वितीयता का तुलनात्मक विश्लेषण कर पाएंगे।
- मेघदूत में वर्णित स्थानों के वर्तमान नामों से परिचित हो सकेंगे।
- मेघदूत के कलापक्ष को स्पष्ट कर सकेंगे।
- कालिदास के अद्भुत प्रकृति वर्णन से परिचित हो सकेंगे।
- संस्कृत गीतिकाव्यों की अवधारणा प्रस्तुत कर पाएंगे।
- जयदेवकृत गीतगोविन्द से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- चौरपंचाशिका का सार तत्त्व प्राप्त कर पाएंगे।

7.2 परिचय

खण्डकाव्य शास्त्रीय दृष्टि से छोटा काव्य होता है। इसमें वर्णन की प्रधानता रहती है। खण्डकाव्य किसी एक छोटी-सी घटना को लेकर उस पर भावपूर्ण काव्य होता है। इसके दो सुन्दर उदाहरण महाकवि कालिदास की दो कृतियाँ हैं — ऋतुसंहार और मेघदूत। ऋतुसंहार में भारत की छह ऋतुओं का वर्णन कवि ने क्रमशः — ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त ऋतु में किया है। इसमें छह सर्ग हैं। प्रत्येक ऋतु में एक अलग ही प्राकृतिक सौन्दर्य होता है। उस परिवेश में प्रेमी-प्रेमिका की भावनाएँ किस प्रकार उभरती हैं, इसका शृंगारमय चित्रण कवि ने किया है। कवि कालिदास की प्रतिभा तथा काव्यशैली का प्रारम्भिक रूप इस काव्य में सर्वत्र दिखता है।

मेघदूत कालिदास की अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है। आधुनिक समीक्षक इसे गीतिकाव्य का प्रथम महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ मानते हैं। प्रबन्धात्मक परम्परा से इसे खण्डकाव्य कहा जाता है। इसके सभी 115 पद्य मन्दाक्रान्ता छन्द में निबद्ध हैं। 'माघे मेघे गतं वयः' का आभाणक भी इसके विषय में प्रसिद्ध है। कालिदास की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना यही है, जिसमें उनकी प्रतिभा शिखर पर पहुँची है। अपने स्वामी कुबेर द्वारा शापित एक यक्ष से जो अपनी प्रिया से एक वर्ष दूर रहने का शाप झेल रहा है, किस प्रकार आषाढ़ मास के मेघ को अपना दूत बनाकर अपनी प्रिया को सन्देश भेजना चाहता है और फिर मार्ग में आने वाले विभिन्न स्थानों और प्राकृतिक दृश्यों का जो वर्णन करता है, वह अद्वितीय है। भारत के बाहरी देशों पर भी मेघदूत का बहुत प्रभाव पड़ा है। इससे परवर्ती अनेक कवियों ने इससे भाव-प्रेरणा ली और इसी के अनुकरण पर अनेक दूत काव्यों की रचना हुई।

खण्डकाव्य की अपेक्षा गीतिकाव्य में कथानक का आधार नहीं होता। इनमें एक छोटे से दृश्य का भावात्मक चित्रण होता है। इसमें ऐसे छन्द का प्रयोग होता है जो संगीत के स्वरों में सजाया जा सकता है। इन गीतों में प्रायः वियोग, भक्ति एवं शृंगार के गीत हैं। इन गीतों को गाकर व्यक्ति आनन्दमग्न हो जाता है। इस प्रकार के काव्यों में गीतगोविन्द तथा चौरपंचाशिका तथा स्तोत्र काव्य आ जाते हैं। गीतगोविन्द जयदेव द्वारा लिखित श्रेष्ठ गीतिकाव्य है जिसने

कवि को अद्भुत कीर्ति प्रदान की है। इसका कथानक राधा-कृष्ण के बीच हास-परिहास और गोपियों से कृष्ण की रासक्रीड़ा से सम्बद्ध है। कवि बिल्हण द्वारा रचित चौरपंचाशिका वसन्ततिलका छन्द में रचित 50 पद्यों का काव्य है। इन पद्यों में किसी राजकुमारी के साथ अपनी प्रच्छन्न प्रणयलीला का कवि ने प्रभावशाली और मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। कवि गोवर्धनाचार्य ने हाल की गाथा सप्तशती के अनुकरण पर शृंगाररस के मुक्तक पद्यों के संग्रह आर्यासप्तशती की रचना की। इसमें उत्कृष्ट शृंगार रस का प्रयोग हुआ है।

7.3 अन्य काव्य विधाएँ (खण्ड काव्य और गीति काव्य)

संस्कृत भाषा में कुछ ऐसे छोटे-बड़े काव्य मिलते हैं, जिनका विषय शृंगार, नीति, भक्ति एवं वैराग्य आदि होते हैं और जिनमें आत्माभिव्यंजना की प्रधानता है, विषय वर्णन की नहीं। इन काव्यों को पाश्चात्य विद्वानों ने गीतिकाव्य या लिरिक (Lyrical Poetry) कहा है। यूरोप में शोक, प्रेम आदि मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति करने वाली गीत-प्रधान कविताओं को 'लिरिक' कहा जाता है। यूनान में वीणा की सहायता से ऐसी कविताओं को गाया जाता था, सुनने वाले इससे अद्भुत आनन्द पाकर आत्मविस्मृति की दशा में चले जाते थे। अन्य सभी रचनाओं की अपेक्षा इन गीति काव्यों में प्रभावोत्पादकता अधिक होती है। जीवन के किसी एक ही मार्मिक पक्ष का इसमें निरूपण होता है, किन्तु साधारणीकरण इतनी शीघ्रता से होता है कि श्रोता तत्काल आनन्दलोक में चला जाता है।

कुछ विद्वानों ने गीतिकाव्य को संस्कृत काव्यशास्त्र में निरूपित 'खण्डकाव्य' से अभिन्न समझा है। महाकाव्य के कथानक के एक खण्ड पर आश्रित रचना ही महाकाव्य है –

खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च। साहित्य 6.239

अनिवार्य रूप से यह काव्य प्रबन्धात्मक होता है। शास्त्रीय दृष्टि से यह छोटा काव्य (8 सर्ग से कम) होता है। वर्णन की इसमें प्रधानता रहती है।

आधुनिक समीक्षा की दृष्टि से खण्ड काव्य और गीतिकाव्य में भेद होता है। खण्डकाव्य वस्तुवर्णन परक और बहिरङ्ग का प्रतिपादक होता है, जबकि गीतिकाव्य आत्माभिव्यक्ति प्रधान होता है।

(क) खण्डकाव्य

किसी एक छोटी सी घटना को लेकर इस पर भावपूर्ण काव्य लिखा जाता है तो उसे खण्डकाव्य कहते हैं। यह छोटी सी घटना ही इसका लघु कथानक होता है। भावुक कवि अपनी रागात्मक वृत्ति का माधुर्य भरकर उस लघु कथानक को रस से परिपूर्ण कर देता है। खण्डकाव्य के दो सुन्दर उदाहरण महाकवि कालिदास की दो कृतियाँ हैं – ऋतुसंहार और मेघदूत।

ऋतुसंहार

यह रचना महाकवि कालिदास की प्रारम्भिक रचना मानी जाती है। उत्तर भारत की छह ऋतुओं का वर्णन कवि ने क्रमशः – ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर और वसन्त ऋतु में किया है। इस खण्डकाव्य में छह सर्ग हैं। प्रत्येक ऋतु में एक अलग ही प्राकृतिक सौन्दर्य होता है। उस परिवेश में प्रेमी और प्रेमिका की भावनाएँ किस प्रकार उभरती हैं, इसका शृंगारमय चित्रण कवि ने किया है। कवि कालिदास की प्रतिभा तथा काव्यशैली का प्रारम्भिक रूप इस काव्य में भी सर्वत्र दिखता है।

प्रथम सर्ग – ग्रीष्म ऋतु

ऋतुसंहार के प्रथम सर्ग में महाकवि ने ग्रीष्म ऋतु का वर्णन किया है। इस ऋतु में सूर्य की प्रचण्ड किरणें सबको संतप्त करने लग जाती हैं। इन दिनों लोग खूब स्नान करते हैं, सायंकाल की बेला कुछ मनोरम होती है। इस ऋतु में लोग चन्द्रमा की चाँदनी की शीतलता का सुखद अनुभव करते हैं। इस ऋतु में लोग चन्द्रमा की चाँदनी, जलयन्त्र के अधोभाग तथा सुगन्धित चन्दन के छिड़काव का सेवन करते हैं। कामी पुरुष वीणा सुनते-सुनते अपनी प्रियतमा के साथ मदिरापान करके छतों पर शयन करते हैं।

रात्रि में छतों पर सोयी हुई रमणियों के मनोहर मुखमण्डल को देखकर लज्जित चन्द्रमा मानो प्रातः काल में पीला पड़ जाता है। प्रियतमा के वियोग से विषण्ण अन्तःकरण वाले प्रवासी पुरुष तो सूर्य के संताप से संतप्त एवं उड़ी हुई धूल से व्याप्त भूमि को देख भी नहीं पाते हैं। उस ऋतु में प्यास के कारण शुष्क तालु वाले मृग पानी की खोज में मृगमरीचिका को देखकर एक वन से दूसरे वन तक दौड़ रहे हैं।

सायंकाल में सजधज कर निकलने वाली सुन्दरियाँ अपनी तिरछी नजरों से परदेशियों के मन को लुभा रही हैं। सूर्य की गर्मी से संतप्त साँप छाया पाने के लिए आकर इस ऋतु में मयूर के बर्ह के नीचे बैठ जाता है। प्यास से व्याकुल सिंह सन्निकट में विद्यमान हाथी को देखकर भी उस पर आक्रमण नहीं कर रहा है। प्यास से आकुल हाथी भी सिंह को देखकर नहीं डरता है। प्यासे मयूर अपने नीचे बैठे सर्प को भी नहीं मारते। इस तरह इस ऋतु में सभी जीवों ने गर्मी से व्याकुल होकर मानो अपने स्वभाव का परित्याग कर दिया है।

सूकर छोटे-छोटे जलाशयों में मुस्ताक्षति कर रहे हैं। कीचड़ भरे पानी से निकलकर प्यासा मेंढक साँप के फण के नीचे बैठ जाता है। धूप से संतप्त गज समूह सरोवर में प्रवेश करके कमल समूह को क्षतिग्रस्त तथा पानी को मटमैला बना रहा है। धूप से संतप्त विषैले मणिवाले सर्प सिन्निकट के मेंढकों को नहीं मारते हैं, वनैले भैंसे जल की खोज में इधर उधर घूमते हैं। दावाग्नि से दग्ध निष्प्रभ वृक्षों वाला वन देखने में भयावह लगता है। इस ग्रीष्म ऋतु में पशु-पक्षी सब के सब प्यास एवं धूप से व्याकुल हैं। वन में चारों ओर दावाग्नि लग गई है। उस आग से पर्वत कन्दराओं में बाँसों की गाँठ चट-पट करके फटती है, सभी पशु परेशान हैं। इस ग्रीष्म ऋतु में कमल विकसित हो रहे हैं, गुलाब खिल गए हैं, स्नान करना अच्छा लगता है। इस प्रकार का ग्रीष्म ऋतु आप सभी के लिए कल्याणकारी बने।

द्वितीय सर्ग-वर्षा ऋतु

यह वर्षा ऋतु एक राजा के समान है। जल के फुहारों से युक्त बादल ही इसके मतवाले गजेन्द्र हैं, विद्युत की चमक पताका हैं और मेघ की गर्जना ही इसके नगाड़े की ध्वनि

है। इस प्रकार का यह ऋतु कामी पुरुषों को अत्यन्त प्रिय है। इस ऋतु में आकाश में अनेक प्रकार के काले-काले मेघ भर जाते हैं। लगता है गर्मी के दिनों की चातकों की प्रार्थना से प्रसन्न मेघ गरज-गरज कर वर्षा कर रहे हैं। आज मयूर अपने पंखों को फैलाकर नृत्य कर रहे हैं। मटमैले जल से भरी नदियाँ बड़ी तेजी से समुद्राभिमुख बह रही हैं।

आज विन्ध्याचल के वन हरी घासों तथा वृक्षों के हरे पत्तों से लोगों के मन को मोह लेते हैं। बलुआही वनस्थली में बैठी हुई बड़े-बड़े नेत्रों वाली मृगपंक्ति लोगों के मन को मोह लेती हैं। वर्षा के मटमैले तथा तेजी से टेढ़े-मेढ़े बहते फनी को देखकर मेढक सर्प के भय से भयभीत हो जाते हैं। नाचते हुए मयूरों के बर्ह को देखकर भौंरे उन्हें नीलकमल समझ लेते हैं। वनैले हाथियों के कपाल से इस समय दावाग्नि चूने लगती है और उन पर भौंरें टूट पड़ते हैं।

रमणियों के कमर पर्यन्त लटकने वाले तथा सुगन्धित फूलों से सजाए गए केशों, हारों से युक्त स्तनमण्डल तथा मदिरा की सुगन्धित से युक्त मुखमण्डल को देखकर कामी पुरुषों की कामाग्नि उद्दीप्त हो जाती है। इस ऋतु में बहती हुई नदियाँ, बरसते हुए मेघ, चिंघाड़ते हुए हाथी, चमकते हुए वनान्त, दुःखी प्रवासी, नाचते हुए मयूर छिपते हुए बन्दर समूह, इन्द्रधनुष से समलंकृत आकाश, विद्युत जल के भार से झुके हुए मेघ तथा सुवर्णमणि मेखला से अलंकृत रमणियाँ केसर, कदम्ब और केतकी की माला से अपने केशों को सजाती हैं और अपने कानों को ककुभ के पुष्पों से सजाती हैं।

सम्पूर्ण वन में कदम्ब और केतकी के पुष्प विकसित हो जाते हैं। सारा वन जूही की कलियों, मौलश्री तथा मालती के पुष्पों से भर जाता है। रमणियाँ अपने स्तनों को मोती की मालाओं तथा नितम्बों को महीन रेशमी साड़ी से सजाती हैं। वनों के पुष्प विकसित हो जाते हैं और सारा वातावरण सुगन्धित हो जाता है। बरसते हुए मेघों को देखकर लगता है कि मेघ अपनी वर्षा से विन्ध्याचल की तपन शान्त करना चाहते हैं।

तृतीय सर्ग —शरद् ऋतु

शरद् ऋतु एक नववधू के समान है। विकसित काश ही उसके उजले वस्त्र हैं, खिले कमल उसके मुखमण्डल हैं, उन्मत्त हंसों का कलरव ही नुपूर ध्वनि है। इन काशों से पृथ्वी,

चाँदनी से रातें, मालती पुष्पों से उपवन, हंसों से नदियों के जल, कुमुदों से सरोवर तथा पुष्पों के भार से झुके हुए सप्तछद के वृक्षों से वनप्रदेश उजले बन गए हैं। नदियों में मछलियाँ तथा उजले पक्षी दिखाई देने लगते हैं। मेघ जल से रहित होने के कारण उजले दिखाई देते हैं। आकाश नीला-नीला दिखाई देता है और खेतों में धान पकने लगते हैं।

सभी को नेत्रों के आनन्द देने वाले चन्द्रमा की किरणें प्रोषित पतिकाओं के अंगों को जलाने का काम करता है। अब ठंडी-ठंडी हवा चलने लगी है। जलाशयों के तट पर मस्त हंसों के जोड़े विहार करने लगे हैं और सरोवरों में नील एवं श्वेत कमल सुशोभित हो रहे हैं। अब हंसों की बोली में मिठास आ गई है और छितवन के पुष्प विकसित हो गए हैं। प्रातःकाल में ओस कणों को बिखेरने वाली शीतल मन्द वायु सभी के मन में उत्कण्ठा पैदा कर देती है।

इस ऋतु में रमणियाँ अपने घुंघराले काले केशों को नवमालती के पुष्पों से सजाती हैं और सुवर्ण निर्मित कुण्डलों से मण्डित कानों को नीलकमलों से सजाती हैं। कुमुद पुष्पों के संसर्ग से हवा ठंडी हो गई है और मेघों से रहित दिशाएँ मनोहर लगने लग जाती हैं। जल स्वच्छ हो गया है, पृथ्वी सूख गई है, तारों से आकाश भर गया है और चाँदनी स्वच्छ हो गई है।

शरद् ऋतु में सुरत सुख का अनुभव करने वाली रमणियाँ जब अपनी प्यारी सखियों से मिलती हैं तो एक-दूसरे को रात्रि में अनुभूत समस्त रमणसुख को कह डालती हैं। प्रातःकाल होते ही कमल तो सूर्य की किरणों के संस्पर्श से विकसित हो जाता है और चन्द्रमा के विप्रयोग कष्ट के कारण कुमुदिनी संकुचित हो जाती है। परदेशी पुरुषों को नीलकमल को देखकर अपनी प्रियतमा की आँखों की, हंसों की ध्वनि को सुनकर प्रियतमा की मेखला ध्वनि की, दुपहरिया के पुष्पों को देखकर प्रियतमा के अधर के सौन्दर्य की याद आ जाती है और उनकी आँखों से आँसू बहने लग जाते हैं। यह शरद् ऋतु एक नायिका के समान विकसित कमल ही जिसका मुखमण्डल है, नीलकमल ही जिसके नेत्र हैं, खिले आकाश ही जिसके श्वेत वस्त्र हैं तथा कुमुद पुष्प ही जिसकी मनोज्ञ कान्ति है।

चतुर्थ सर्ग – हेमन्त ऋतु

नवीन अंकुरों से मनोहर लगने वाला, जिसमें लोघ्र के पुष्प विकसित हो गए हैं, धान पक गए हैं तथा कमल विलीन हो गए हैं, इस प्रकार का तुषारपात करने वाला हेमन्त ऋतु का काल आ गया है। इस समय अधिक धानों से खेत भर जाते हैं, वे मृगियों के समूह से समलंकृत हैं तथा मनोहर क्रौंच निनाद कर रहे हैं। सरोवरों में नीलकमल विकसित हो रहे हैं और उनमें मदमत्त हंस बैठे हुए हैं। उनके जल अत्यन्त शीतल हैं और अपनी शोभा से लोगों के मन को आकृष्ट कर रहे हैं। सूखे हुए सुन्दर मार्ग को देखकर अपने हृदय में पतियों को धारण करने वाली प्रोषित पतिकाएँ उनके आने की बाट जोहने लगी हैं।

ठण्डी हवाओं के झोकों से पीली बनी हुई प्रियंगु लता पतिविप्रयुक्ता कामिनी के समान सुशोभित होती है। पुष्पासव पान के कारण सुगन्धित मुख वाले, अपने निःश्वास वायु से अंगों को सुगन्धित करने वाले तथा अपनी प्रियतमाओं के साथ अपने अंगों को सटाकर सोने वाले कामी पुरुष इस समय सुखपूर्वक सोते हैं। कामनियाँ प्रातःकाल में बाल सूर्य की धूप में बैठकर तथा हाथ में दर्पण लेकर अपने होठों को रंगती हैं तथा हाथ से ओष्ठ के दन्तक्षतभाग को खींचकर देखती हैं। बहुत अधिक सुरतश्रम करने से श्रान्त, रात्रि में बहुत अधिक जगने के कारण लाल-लाल नेत्रों वाली तथा खुले हुए केश जिनके कन्धों पर गिर पड़े हैं – इस प्रकार की रमणियाँ बाल सूर्य की धूप में सो रही हैं।

कुछ रमणियाँ अपने काले घुंघराले केशों से रात्रि में केशों में सजायी हुई सुगन्धित पुष्पों की माला को उतारकर अपने बालों को सँवार रही हैं। नखक्षत से युक्त अंगों वाली तथा लटकते अलकों से ढकी आँख वाली अन्य रमणी प्रियतम से उपभुक्त अपने शरीर को देख-देखकर प्रसन्न होती हैं और अपने अधरों को सजाकर चोली पहनने लगी है। दीर्घकाल तक सुरतकेलि करने के कारण श्रान्त होकर जिनका शरीर शिथिल हो गया है, जिनके जांघों और स्तनों पर रोमांच हो रहा है, इस प्रकार की अन्य रमणियाँ अपने शरीर पर तेल मलवा रही हैं। इस प्रकार का हेमन्त काल अनेक गुणों से मनोहर रमणियों के मन को आकृष्ट करने वाला तथा क्रौंच पक्षियों के निनाद से युक्त है।

पंचम सर्ग—शिशिर ऋतु

शिशिर ऋतु में धान पक जाते हैं और इक्षु प्ररूढ हो जाते हैं। क्रौंच पक्षियों का निनाद सुनाई पड़ने लगता है और रमणियों को प्रिय इस ऋतु में काम का आवेग बढ़ जाता है। लोग घरों की खिड़कियों को बन्द रखते हैं तथा अग्नि और सूर्य की धूप का सेवन करते हैं। इस ऋतु में रमणियाँ चन्दन एवं चाँदनी का सेवन नहीं करती हैं। इस समय ठण्डी हवा अच्छी नहीं लगती। लोग हिमपात के कारण शीतल बनी हुई चन्द्रमा की किरणों से और अधिक ठण्डी बनी हुई और चमकते तारे ही जिनके भूषण हैं — उन रात्रियों का सेवन नहीं करते हैं। जिन मदमाती रमणियों ने अपराध करने पर अपने पतियों को बहुत अधिक डाँटा था, वे जब काँपते हुए तथा भयभीत होकर उनके साथ सम्भोग की इच्छा से आते हुए अपने पतियों को देखती हैं तो उनके अपराधों को भूलकर उनके साथ सम्भोग करती हैं।

जिन नवयुवतियों के साथ उनके रमणों ने लम्बी रातों में निर्दयतापूर्वक रमण किया है, वे प्रातःकाल श्रान्त जांघों वाली होने के कारण धीरे-धीरे चलती हैं। मनोहर चोलियों से अपने स्तनों को कसने वाली, रंगीन साड़ी पहनने वाली तथा पुष्पों से अपने स्तनों को कसने वाली रमणियाँ मानो शिशिर ऋतु का शृंगार करती हैं। इन दिनों कामी पुरुष केसर के रंग से रंगे स्तनों वाली तथा जिनकी जवानी की गर्मी का सेवन सुखपूर्वक किया जा सकता है, उन रमणियों को अपनी छाती से लगाकर ठण्ड की परवाह किये बिना ही सोते हैं। इस ऋतु में कामनियाँ सुगन्धित तथा निःश्वास वायु से जिनमें पड़े हुए नीलकमल काँपते हैं, इस प्रकार की मनोहर तथा कामवासना को जगाने वाली एवं मदमस्त बना देने वाली मदिरा को रात में अपने पतियों के साथ प्रसन्नतापूर्वक पीती हैं।

जिसका मदराग समाप्त हो गया है तथा पति के आलिंगन करने के कारण जिसके स्तन का अग्रभाग कड़ा हो गया है, ऐसी कोई रमणी प्रातः काल प्रियतम से उपभुक्त अपनी देह को देखती हुई तथा हँसती हुई अपनी शय्यागृह से निकलकर दूसरे गृह में प्रवेश कर रही है। आज सुवर्ण निर्मित कमल के समान कान्ति वाली तथा कन्धों पर गिरे बालों वाली रमणियों

को प्रातःकाल में देखकर लगता है कि प्रत्येक गृह में लक्ष्मी आ बसी है। इस प्रकार यह शिशिर काल कामदर्प को बढ़ाने वाला, सुरकेलि में संलग्न करने वाला है, किन्तु प्रियजन विप्रयुक्तों के चित्त को संतप्त करने वाला है।

षष्ठ सर्ग—ऋतुराज वसन्त

वसन्त ऋतु एक योद्धा के समान है, जिसका विकसित आम्रमंजरी ही तीक्ष्ण बाण है, भ्रमर पंक्ति ही धनुष की डोरी है और वह कामी पुरुषों के मन का भेदन करने का कार्य करता है। इस ऋतु में वृक्षों के पुष्प विकसित हो जाते हैं, जलाशयों में कमल विकसित हो जाते हैं, स्त्रियों में काम का आवेग बढ़ जाता है, वायु सुगन्ध से भर जाती है, दिन मनोहर लगता है तथा सायंकाल सुखद लगता है। इस तरह इस ऋतु में सभी चीजें अच्छी लगती हैं। थोड़ी ओस पड़ने से रातें ठण्डी हो जाती हैं, चम्पा के पुष्प विकसित हो जाते हैं और इस समय रमणियाँ अपने स्तनों को फूलों के मनोहर हार से सजाती हैं।

यह वसन्त ऋतु बावड़ी के जल, रमणियों की मणिमेखला, चन्द्रमा की चाँदनी, मदमस्त रमणियों तथा विकसित आम्र के वृक्षों के सौभाग्य को प्रदान करता है। इस ऋतु में रमणियाँ अपने नितम्ब मण्डल को कुसुम्भ के रंग में रंगे रेशमी वस्त्रों से तथा कुकुभ के रंग से रंगे पतले वस्त्रों से स्तनमण्डल को अलंकृत करती हैं। इस समय वे अपने कानों को नवीन कर्णिकार पुष्पों से सजाती हैं। आजकल रमणियाँ अपने कामावेश के कारण शिथिल अंगों को अपने समीपवर्ती प्रियतमों के समक्ष प्रदर्शित करके कामाकुल हो जाती हैं। कामदेव रमणियों के दुबले, पीले, अलसाये तथा बार—बार जंभाई लेने वाले अंगों को सौन्दर्य से परिपूर्ण कर देता है।

इस समय दिन में लोग वृक्षों की छाया चाहते हैं और रात्रि में चाँदनी, सुखपूर्वक सोने के लिए वे छत पर जाते हैं और शीतल शरीर वाली कान्ता का गाढ़ालिंगन करते हैं। इन दिनों कामदेव मदमाती रमणियों के नेत्रों में चंचलता, गालों में पीलापन, स्तनों में कठोरता, कमर में गहराई तथा जंघों में मोटापा बनकर स्थिर रहता है। कामदेव रमणियों के अंगों को

निद्रा एवं आलस्य से युक्त बना देता है, उनके वाक्यों को कुछ आलस्ययुक्त तथा चितवन को तिरछी बना देता है। लोग इस समय मोटे कपड़ों को त्यागकर लाक्षारस रंजित एवं सुगन्धित पतले कपड़ों को धारण करते हैं आम्रमंजरी के रस का पान करके मदमत्त नर—कोकिल अपनी प्रियतमा का चुम्बन करता है, कमल पर बैठा हुआ यह भौरा भी अपनी प्रियतमा की चाटुकारिता कर रहा है।

लाल—कौपलों के गुच्छों से झुके हुए तथा सुन्दर मंजरियों से युक्त शाखा वाले आम्रवृक्ष जब पवन के झोकों से झूमते हैं तो उन्हें देखकर रमणियों का हृदय भी झूम उठता है। पल्लवों से युक्त लाल पुष्प समूह को धारण करने वाले अशोकवृक्ष, देखने वाली नवयुवतियों के हृदय को दुखी बना देते हैं। प्रियतमा के मुख की कान्ति के समान कान्ति वाली, नई—नई निकली हुई कुरबक वृक्ष की मंजरियों की उत्तम शोभा को देखकर किसका मन कामाकुल नहीं होगा? पवन के झोकों से झूमती हुई जलती हुई आग के समान कान्तिवाले, फूलों से झुके हुए पलाश वन से आवृत्त पृथ्वी इस समय लाल साड़ी पहनी हुई रमणी के समान सुशोभित होती है।

कोयल अपनी मधुरवाणी से प्रेमियों को मारे जा रही है। इस समय कोयल की वाणी और भौरों के गुंजन को सुनकर सती नारियों का हृदय भी अधीर हो उठता है। इस ऋतु की वायु कोयल की आवाज और आम्रमंजरी की सुगन्ध को दूर—दूर तक फैलाती हुई लोगों के अन्तःकरण को उन्मत्त बना देती है। नवयुवतियों की मुस्कान के समान मनोहर कुन्द पुष्प की पंक्ति मुनियों के भी मन को विवश बना देती है। लटकने वाली सुवर्ण मेखला को धारण करने वाली तथा कामावेश के कारण शिथिल शरीर वाली रमणियाँ युवकों के अन्तःकरण को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं।

पुष्पित वृक्षों तथा भौरों के गुंजन से युक्त पर्वत को देखकर सभी का मन उत्कण्ठित हो जाता है। पुष्पित आम्रवृक्षों को देखकर अपनी कान्ता से वियुक्त परदेशी पुरुष जोर—जोर से रोने लगते हैं। इस ऋतु में हार आदि से अलंकृत गौरवर्ण की सुन्दरियों को देखकर मुनियों का मन भी बेकाबू हो जाता है। आसव की गन्ध से महकता हुआ सुन्दरियों का कमल के समान मुख, लोघ्र जैसी लाल—आँखें, कुरबुक पुष्प से अलंकृत उसके केशपाश, ये सब के सब

कामोद्दीपन का काम किया करते हैं। विकसित आम्रवृक्षों में निवास करने वाली वासन्ती वायु कोयल की कूक तथा भौरों के गुंजन के साथ मिलकर मानवती रमणियों के मान को तोड़ देने का काम करती हैं। इस समय सायंकाल की मनोज्ञता, चन्द्रमा की स्वच्छ चाँदनी, कोयल की ध्वनि तथा वायु की सुगन्धित ये सबके सब काम के वेग को बढ़ाने वाले होते हैं।

ऋतुसंहार का वैशिष्ट्य

यह कालिदास की प्रथम कृति है। इसमें ग्रीष्म से आरम्भ करके वसन्त तक छह ऋतुओं का शृंगारमय वर्णन है। इसमें कुल 144 पद्य हैं। कालिदास की अन्य कृतियों के समान इसमें परिष्करण नहीं है। इससे कुछ विद्वान् इसकी प्रामाणिकता (कालिदास की रचना होने) पर सन्देह व्यक्त करते हैं, किन्तु बहुसंख्यक विद्वानों का मत है कि यह उनका तरुण प्रयास था। अतएव उच्चाशयता तथा अभिव्यक्ति की चारुता का इसमें अभाव है। रचना की प्रौढ़ि न होने पर भी ऋतुसंहार का विशिष्ट महत्त्व है, क्योंकि संस्कृत भाषा में ऋतुओं के सर्वाङ्गपूर्ण सौम्यवर्णन पर यह एकमात्र काव्य है।

ऋतुसंहार काव्य का वक्ता कवि निबद्ध है। वह अपनी प्रेयसी के समक्ष सभी ऋतुओं का सुन्दर ढंग से वर्णन करता है। इस काव्य में सम्भोग शृंगार रस की प्रधानता है। यद्यपि कवि ने अधिक श्लोकों का निबन्धन उपजाति छन्द में किया है। इसके अतिरिक्त वसन्ततिलका, मालिनी तथा शार्दूलविक्रीडित छन्दों का भी इस काव्य में सन्निवेश किया जाता है।

प्रेमी-प्रेमिका के विलास की दृष्टि से ऋतुओं का हृदयहारी वर्णन कवि ने किया है। इसका आरम्भ ग्रीष्म की प्रचण्डता के वर्णन से और अन्त वसन्त के मादक सौन्दर्य के चित्रण से हुआ है। वसन्त के आने पर कवि की दृष्टि में सभी पदार्थ सुन्दरतर हो जाते हैं —

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं

स्त्रियः सकामः पवनः सुगन्धिः।

सुखाः प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः

सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते ।। ऋतु. 6.2

इस काव्य की भाषा सरल और स्वाभाविक प्रवाह से पूर्ण है। कवि ने अनुप्रासयुक्त पद विन्यास किया है। पद्यों में मुक्तक काव्य की छटा है, यद्यपि वे नायक के द्वारा नायिका को सम्बोधित होने के कारण परस्पर बँधे हुए हैं। सरलता और सहजगम्य होने के कारण मल्लिनाथ जैसे टीकाकार ने इस पर टीका नहीं लिखी। कवि के तरुण प्रयास के कारण इसमें कामवृत्ति का आदर्शोन्मुख परिष्कार भी नहीं है। सम्भवतः इसीलिए समीक्षकों ने इस काव्य के उद्धरण काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नहीं दिये हैं। फिर भी इसमें कल्पनाशक्ति और पदशय्या के चमत्कारी उदाहरण मिलते हैं।

शिशिर वर्णन में कवि कहते हैं कि इस ऋतु में अब न तो किसी को चन्द्रमा की किरणों से शीतल किया हुआ चन्दन का लेप अच्छा लगता है, न शरद् की चन्द्रमा के समान उजली छतें अच्छी हैं और न घनी ओस से शीतल वायु ही किसी को भाता है —

च चन्दनं चन्द्रमरीचिश्रीतलं

न हर्म्यपृष्ठं शरदिन्दुनिर्मलम् ।

न वायवः सान्द्रतुषारशीतला

जनस्य चित्तं रमयन्ति साम्प्रतम् ।। ऋतु. 5.3

ऋतुसंहार में मानव और प्रकृति दोनों का चित्रण उनके उद्दीपक रूप में हुआ है। शरद् ऋतु के वर्णन में कालिदास ने रूपकों का विपुल प्रयोग किया है तथा प्रकृति की उपमा मानव से और मानव की उपमा प्रकृति से की है, जैसे —

चंचन्मनोज्ञ—शफरी—रसनाकलापाः

पर्यन्तसंस्थित सिताण्डजपंक्तिहाराः ।

नद्योविशालपुलिनान्त—नितम्बबिम्बा

मदं प्रयान्ति समदाः प्रमदा इवाद्य ।। ऋतु 3.3

अर्थात् शरद् ऋतु में नदियाँ उसी प्रकार धीमे-धीमे बह रही हैं जैसे कमरधनी और माला पहने हुए बड़े नितम्बों वाली कामनियाँ जा रही हों, उछलती हुई शफरी मछलियाँ उन

नदियों की कमरधनी हैं, तट पर बैठे श्वेत पक्षियों की पंक्तियाँ मालाएँ हैं तथा ऊँचे-ऊँचे रेतीले टीले उनके नितम्ब हैं। शरद्-वर्णन के आरम्भ और अन्त दोनों स्थलों पर कवि ने कामिनी का रूपक दिया है।

रम्य प्रदोषसमयः स्फुटचन्द्रभासः

पुंस्कोकिलस्य विरुतं पवनः सुगन्धिः।

मत्तालियूथविरुतं निशि सीधुपानं

सर्वं रसायनमिदं कुसुमायुधस्य ॥ ऋतु. 6.35

ऋतुराज वसन्त में कामदेव के रसायन ये बताये गए हैं – मनोहर सायंकाल की बेला, स्वच्छ चाँदनी, नर कोयल की कूजन ध्वनि, सुगन्धित वायु, मदमत्त भौरों की गुंजन ध्वनि तथा रात्रि में मदिरा का सेवन।

संक्षेप में महाकवि कालिदास की प्रथम कृति ऋतुसंहार में वर्णित छह ऋतुओं का वर्णन अत्यन्त हृदयग्राही एवं अद्वितीय है।

मेघदूत

यह कालिदास की प्रसिद्ध रचना है, जिसे प्रबन्धात्मकता के कारण परम्परा से खण्डकाव्य कहा जाता है। आधुनिक समीक्षक इसे गीतिकाव्य का प्रथम महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ कहते हैं। मन्दाक्रान्ता छन्द में रचित केवल 115 पद्यों की यह लघुकाव्य कृति दो भागों में विभक्त है – पूर्वमेघ (63 पद्य) तथा उत्तरमेघ (52 पद्य) मेघदूत के श्लोकों की संख्या के विषय में बहुत मतभेद है। टीकाकार मल्लिनाथ ने 121 पद्यों की व्याख्या की है, किन्तु छह पद्यों को उन्होंने प्रक्षिप्त मानकर 115 पद्यों को ही प्रामाणिक कहा है। विभिन्न संस्करणों में 108 से लेकर 127 श्लोक तक मिलते हैं।

मेघदूत के संस्करणों का देश-विदेश में बाहुल्य है। विल्सन ने 1813 ई. में इसका अंग्रेजी पद्यानुवाद अनेक विदेशी भाषाओं के समानान्तर उद्धरणों के साथ कलकत्ता से प्रकाशित किया था। निर्णयसागर प्रेस से इसका मल्लिनाथ की टीका के साथ सुन्दर संस्करण 1877 ई.

में प्रकाशित हुआ था। मेघदूत के साथ सुन्दर संस्करण 1877 ई. में प्रकाशित हुआ था। मेघदूत पर प्रायः 50 प्राचीन टीकाएँ मिलती हैं। अनेक भारतीय तथा विदेशी भाषाओं में इसके गद्य-पद्यानुवाद प्रकाशित हैं। 'माघे मेघे गतं वयः' का आभाणक भी इसके विषय में प्रसिद्ध है। कालिदास की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना यही है, जिसमें उनकी प्रतिभा शिखर तक पहुँची है।

पूर्वमेघ-संक्षिप्त कथानक

प्रिया के प्रति अन्धप्रेम होने के कारण अपने कर्तव्य से प्रमाद करने वाला यक्ष यक्षेश्वर कुबेर द्वारा शापित के रूप में वर्ष भर के लिए अलकापुरी से निकाला जाता है। बेचारे ने विन्ध्याचल में रामगिरि पर डेरा डाला और वहीं आश्रम में रहने लगा। एक दिन उसे आषाढ़ मास के आरम्भ में पहाड़ की चोटी पर उमड़ा हुआ बादल दिखाई दिया, तत्काल उसका हृदय भर आता है। मेघ के दिखाई देने पर सुखी मनुष्य का भी चित्त डगमगा जाता है, फिर उसका तो कहना ही क्या, जो प्रिया को गले लगाना चाहता है, किन्तु दूर पड़ा हुआ है। यक्ष ने फिर मिलने की आशा में वियोग के दिनों को गिनती हुई अपनी प्रिया को मेघ द्वारा कुशल समाचार पहुँचाना चाहा। अतएव पुष्पादिक से मेघ का स्वागत करके प्रार्थना करता है — हे भाई! सन्तप्तों के तुम ही एकमात्र सहारे हो, तुम्हें उत्तर दिशा की ओर जाना है, वहाँ अलकापुरी में जाकर एक छोटा-सा सन्देश मेरी प्रिया को पहुँचा देना।

देखो, कैसी मन्द-मन्द पवन चल रही है, चातक पक्षी तुम्हारी बाईं ओर होकर बोल रहा है, बगुलों की पंक्तियाँ आकाश में उड़ रही हैं और साथ ही बाम्बी से यह इन्द्रधनुष भी प्रकट हो गया है। ये सब तुम्हारी यात्रा के लिए शुभ शकुन है, किन्तु मैं सन्देश कहूँ और तुम प्रस्थित हो, इससे पूर्व मैं तुम्हें मार्ग बता देना चाहता हूँ —

ग्रामीण युवतियों की भोली भाली आनन्द भरी आँखों से पिये जाते हुए तुम माल को पार करके आम्रकूट पहुँचना। वहाँ से कुछ परे तुम्हें विन्ध्याचल की ऊँची-नीची तलहटी में विभिन्न धाराएँ बनाकर बहती हुई रेवा नदी मिलेगी। वहाँ से तुम दशार्ण देश को जाना, जहाँ जामुन के वन पके हुए फलों से काले बने होंगे। उसकी राजधानी विदिशा में प्रवेश करके तुम प्रिया के

भ्रूभंगयुक्त मुख की तरह चंचलतरंगों वाली वेत्रवती का जल पीना और नीचैः नाम वाले पर्वत पर विश्राम लेना। वहाँ से चलकर यद्यपि तुम्हारे लिए मार्ग कुछ टेढ़ा पड़ेगा, तो भी उज्जयिनी जाये बिना न रहना, क्योंकि यह एक सुन्दर नगरी है, मानो स्वर्ग की ही एक टुकड़ी भूमि पर लायी गई हो। यदि वहाँ अटारियों पर रहने वाली ललनाओं की बिजली की चमक से भीत एवं चंचल चितवनों का स्वाद नहीं लोगे तो तुम्हारी आँखें एक महान् लाभ से वंचित ही रहेंगी।

अतः निर्विन्ध्या को पार करके तुम अवन्ति देश में प्रविष्ट होना और फिर तुम उज्जयिनी पहुँच जाओगे। वहाँ बाजार में विक्रयार्थ सजाकर रखे हुए हीरे—पन्ने मोती आदि के ढेर के ढेर देखकर तुम्हें ऐसा प्रतीत होगा मानो समुद्र में अब पानी के अतिरिक्त और कुछ रहा ही नहीं। पास ही में महाकाल शिव का मंदिर है। वहाँ तुम शिवजी की सायंकालीन पूजा के समय जाना, जिससे कि गर्जकर तुम नगाड़े का काम दे सको। वह रात उज्जयिनी में बिताकर प्रातः फिर उड़ पड़ना और गम्भीरा नदी को पार करके देवगिरि को जाना। वहाँ स्कन्द रहते हैं। पुष्प मेघ बनकर उन पर फूलों की वर्षा करना। तदनन्तर तुम चर्मण्वती नदी प्राप्त करोगे। उससे परे दशपुर आएगा, जहाँ की स्त्रियाँ अपने सौन्दर्य के लिए प्रख्यात हैं।

वहाँ से तुम कुरुक्षेत्र पहुँचोगे, जहाँ अर्जुन ने क्षत्रियों के ऊपर इस तरह बाण बरसाये थे, जिस प्रकार तुम कमलों पर बौछार बरसाते हो। वहाँ सरस्वती का जल पीना और आगे कनखल चले जाना, जहाँ परमपावनी गंगा मैदान में बहने के लिए हिमालय से उतरती है। उसका भी जल पीकर तुम आगे बढ़ोगे तो तुम हिमालय पहुँच जाओगे।

वहाँ हिमालय पर देवदारु वृक्षों के घने वन के वन मिलेंगे। कहीं कस्तूरी मृगों की सुगन्धि आती रहेगी और कहीं शरभ तुम्हारी गर्जना सुनकर तुमसे टक्कर लेने के लिए आकाश में उछलेंगे। वहाँ तुम्हें मीठे स्वर में गाती हुई किन्नरियाँ भी दिखाई देंगी। वायु से भरे हुए बाँस अपनी बाँसुरी बजा रहे होंगे, तो तुम भी गरजकर मृदंग का काम करना। इस तरह हिमालय की सब विशेषताओं को देखते—देखते चलो, तब विश्राम करने के लिए तुम उसकी किसी चोटी पर बैठ जाना। फिर वहाँ से उत्तर की ओर चलकर क्रौंचरन्ध्र से तुम कैलाश पहुँच जाओगे,

जहाँ शिवजी रहते हैं। उस पर्वत की गोद में बसी हुई अलकापुरी को तुम उसके ऊँचे-ऊँचे प्रासादों से तत्काल पहचान लोगे।

उत्तर मेघ संक्षिप्त कथासार

यहाँ यक्ष मेघ को संबोधित करते हुए कहता है कि भैया मेघ अलकापुरी के प्रासादों का क्या वर्णन करूँ। उन्हें तुम अपनी तरह ही आकाश से बातें करते हुए पाओगे। उनके फर्श मणियों के हैं और दीवारें विविध चित्रों से सज्जित एवं रत्नों से जड़ित हैं। वहाँ ऐसी ऐसी सुन्दरियाँ हैं जो तुमने कभी देखी ही नहीं होंगी। वृक्ष बारह मास फलते रहते हैं। प्रत्येक साँझ नित्यप्रति चाँदनी से उज्ज्वल हुई रहती है। वहाँ आँसू गिरते हैं तो आनन्द में ही, ताप होता है तो काम का ही और कलह होता है तो प्रेम का ही। वहाँ यौवन ही एकमात्र अवस्था है, बुढ़ापा नहीं। गृहों में सब प्रकार की विभूतियाँ और सुख-सामग्री नित्य उपस्थित रहती हैं। वसन-भूषण आदि जिस वस्तु की आवश्यकता पड़ती है उसे कल्पवृक्ष तत्काल पूरी कर देता है। अभिप्राय यह है कि वहाँ सर्वत्र प्रेम और आनन्द का साम्राज्य है।

इसी नगरी में कुबेर के भवन के उत्तर की ओर मेरा गृह है जिसका विविध रत्नजड़ित बहिर्द्वार तुम्हें दूर से ही इन्द्रधनुष सा चमकता हुआ दृष्टिगोचर होगा। उसके भीतर एकमन्दार वृक्ष है जिसे मेरी प्रिया ने पाल रखा है। पास ही एक बावड़ी है, जिसकी सीढियाँ मरकत-मणियों से निर्मित हैं और जिसके एक किनारे पर तुम्हारे जैसा ही एक क्रीड़ा पर्वत है। उद्यान में एक रक्ताशोक और एक बकुल वृक्ष है। इन सब चिह्नों तथा द्वार पर चित्रित शंख और पद्म से मेरी अनुपस्थिति के कारण सूने पड़े हुए मेरे घर को तुम तत्काल पहचान लोगे।

भीतर तुम्हें युवतियों में ब्रह्मा की आदि सृष्टि-सी एक सुन्दरी दिखाई देगी, जो शरीर से दुबली, कमर से पतली और स्तनों से झुकी हुई होगी और जिसकी आँखें तो डरी हुई हिरनियों की तरह चंचल होंगी, किन्तु चाल नितम्ब-भार के कारण अलसाई-सी होगी, उसे तुम मेरी पत्नी समझना। यह चक्रवाकी की तरह अकेली है, क्योंकि उसका सहचर मैं दूर पड़ा हुआ हूँ। मेरे वियोग के दुःख में बेचारी तुषारपात से मारी हुई पद्मिनी की तरह कुछ की कुछ

हो गई होगी। उसे तुम कभी तो मेरा चित्र बनाने का विफल प्रयत्न करती हुई पाओगे और कभी गोद में वीणा रखकर मेरे नाम की गीतिका द्वारा व्यर्थ मनोविनोद में लगी हुई देखोगे। कभी वह मैना से बात करती होगी – ओ मीठा बोलने वाली, क्या तुम्हें भी कभी अपने स्वामी की याद आती है? उनके लिए तू बड़ी प्यारी थी। कभी वह वियोग के शेष महीनों को देहली पर रखे हुए पुष्पों से गिनती होगी।

हे मेघ! तुम पहले तो, मैं तुम्हारे पति का मित्र हूँ – इस प्रकार अपना परिचय देना और तदनन्तर मेरा यह संदेश कहना – “प्रिये! मैं प्रियंगु लताओं में तुम्हारे शरीर की, भयतीत हुई मुख-सौन्दर्य की, मयूरों के पुच्छों में तुम्हारे केशपाश की और नदियों की तरंगों में तुम्हारे भ्रू-विलास की कल्पना करता रहता हूँ, किन्तु बड़ा दुःख है कि उनमें से किसी में भी तुम्हारे अंगों की समता नहीं मिलती। देखो हृदय में कितनी ही आशाएँ रखे हुए मैं भी तो अकेला इन वियोग की घड़ियों को किसी तरह काट रहा हूँ। अतः ओ सजनि, तुम निराश मत होना। भला सोचो तो सही कि निरन्तर सुख ही सुख या दुःख ही दुःख क्या कभी किसी को मिला है? भाग्य का चक्र कभी तो ऊपर चला जाता है और कभी नीचे आ जाता है। अब मेरे शाप के समाप्त होने के लिए केवल चार महीने शेष हैं, इन्हे आँख मीचकर सह लो और फिर हम दोनों शरद् की चाँदनी रातों में वियोग के कारण बढ़ी हुई उन-उन इच्छाओं को अच्छी तरह पूरी कर लेंगे।

यह सन्देश देकर अन्त में यक्ष मेघ से बोला – “भैया, यह मेरा कार्य चाहे मित्रता के नाते बोलो चाहे मुझ दुःखी के प्रति दया के नाते बोलो – किसी तरह कर करा के बाद को, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो चले जाना। ईश्वर करे तुम्हारा मेरी तरह बिजली से कभी वियोग न हो, यही मेरी तुम्हारे लिए कामना है। अच्छा जाओ, नमस्कार।”

मेघदूत का उद्गम

कुमार सम्भव और रघुवंश की तरह मेघदूत किसी पौराणिक अथवा ऐतिहासिक आधार पर टिका हुआ नहीं है। यह तो पूर्णतया कल्पना प्रसूत ही है। मेघ को दूत बनाकर यक्ष की

पत्नी को संदेश भेजने की बात संस्कृत साहित्य में बिल्कुल नई है। कुछ आलोचकों का विचार है कि यह ग्रन्थ कालिदास के व्यक्तिगत जीवन में घटी हुई किसी वियोग घटना पर आधारित है। सम्भवतः किसी कारणवश कवि को अपनी प्रिया से बिछुड़ना पड़ा हो और वियोग की यह आपबीती वेदना ही मेघदूत के रूप में अभिव्यक्त हुई हो। प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ मेघदूत की टीका में “सीतां प्रति रामस्य हनुमत्संदेशं मनसि निधाय मेघदूतसंदेशं कविः कृतवानित्याहुः” कहकर वाल्मीकि रामायण में आई हुई राम का हनुमान् द्वारा सीता को संदेश पहुँचाने वाली घटना को मेघदूत का बीज बतलाते हैं और ‘आहुः’ कहकर यह भी द्योतित करते हैं कि उनके समय में मेघदूत विषयक यह धारणा बहुप्रचलित थी।

इसमें संदेह नहीं कि मेघदूत में ‘जनक तनयास्नानपुण्योदकेषु’ ‘रामगिर्याश्रमेषु’ ‘रघुपतिपदैरंकितम्’ ‘दशमुखोच्छवसितप्रस्थसन्धेः’ ‘इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा’ इत्यादि पंक्तियों पर राम के कथानक की छाप अवश्य पड़ी हुई है। साथ ही मेघदूत तथा रामायण का वर्षा ऋतु वर्णन और कतिपय अन्यान्य बातें भी बहुत कुछ समान ही हैं। सम्भव है कि कालिदास को वाल्मीकि से थोड़ी बहुत भाव प्रेरणा मिली हो, जैसे कि रघुवंशादि में भी मिली थी, किन्तु निर्माण की दृष्टि से मेघदूत की सारी वस्तुएँ कालिदास की अपनी ही हैं, जिसमें इस ग्रन्थ की मौलिकता पर कोई आपत्ति नहीं की जानी चाहिए। निस्सन्देह दूतकाव्यों की परम्परा चलाने का आदि श्रेय कालिदास को ही है।

मेघदूत की लोकप्रियता

अपने असीमित गुणों के कारण मेघदूत बहुत अधिक लोकप्रिय बना। इससे परवर्ती अनेक कवियों ने भाव-प्रेरणा ली और इसी के अनुकरण पर कितने ही दूत काव्यों की रचना हुई। 8वीं शताब्दी में प्रसिद्ध जैन कवि जिनसेन ने मेघदूत के प्रत्येक पद्य के प्रत्येक पाद को समस्यापूर्ति के रूप में लेकर जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ का पार्श्वभ्युदयनामक जीवन चरित्र लिखा। निदर्शन के रूप में प्रथम पद्य के प्रथम पाद की समस्यापूर्ति इस तरह है —

श्रीमन्मूर्त्या मरकतमयस्तम्भलक्ष्मीं वहन्त्या

योगैकाग्रस्तिमिततरया तस्थिवांसं निदध्यौ ।

पार्श्वं दैत्यो नाभसि विहरन् बद्धैवैरेण दग्धः

कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः ।।

बारहवीं शताब्दी में धोयी कवि ने 'पवनदूत' रचा, तत्पश्चात् नेमिदूत, कोकिलदूत, हंस दूत, शीलदूत, उद्धवदूत आदि दूतकाव्यों की प्रथा—सी चल पड़ी। हिन्दी में ब्रजभाषा और खड़ी बोली को मिलाकर मेघदूत के छः पद्यानुवाद बन चुके हैं और एक तो उनमें सचित्र भी है।

भारत के बाहरी देशों पर भी मेघदूत का बड़ा प्रभाव पड़ा। जर्मन कवि शिलर ने अपने मेरियो स्टूअर्ट नाटक में कालिदास के अनुसार ही मेघ द्वारा संदेश भेजने की कल्पना की है। जर्मन विद्वान् श्वेटज ने मेघदूत का जर्मन गद्य में और प्रो. मैक्समूलर ने जर्मन पद्य में अनुवाद किया। अमेरिका के प्रसिद्ध संस्कृत अनुवादक आर्थर राइडर ने मेघदूत का अंग्रेजी में बड़ा अच्छा पद्यानुवाद किया है। डॉ. बेक्ख ने इसको तिब्बती भाषा में अनूदित किया। इससे यह बात अच्छी तरह प्रमाणित हो जाती है कि प्राचीन विद्वानों ने मेघदूत को जो गौरव प्रदान किया, उसे सभी आधुनिक विद्वान् भी भली भाँति निभा रहे हैं।

मेघदूत पर टीकाएँ

मेघदूत पर कुल मिलाकर इस समय 40 से अधिक टीकाएँ मिलती हैं। टीकाकारों में प्रसिद्ध ये हैं — वल्लभ, निरुक्तकार, मल्लिनाथ, सारोद्धारिणी, सरस्वती तीर्थ, सुमतिविजय और महिमसिंह गणि। कालक्रमानुसार सर्वप्रथम टीकाकार वल्लभ (7वीं शताब्दी) ही है। शेष टीकाएँ उनके बाद की हैं। तदनन्तर निरुक्तकार तथा मल्लिनाथ हैं। मल्लिनाथ की टीका सर्वप्रसिद्ध है।

पूर्वमेघ में आए हुए भौगोलिक शब्द वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

1. रामगिरि (पद्य—1) रामटेक पर्वत (मध्य प्रदेश)

2. कैलास (पद्य-11) तिब्बत में मानसरोवर के पश्चिमोत्तर की ओर हिमालय की 20226 फीट ऊँची चोटी
3. माल (पद्य-16) माल्डा रतनपुर के पास (मध्य प्रदेश)
4. आम्रकूट (पद्य-17) मध्यप्रदेश में अमरकण्टक (3498 फीट ऊँची)
5. विन्ध्य (पद्य-19) विन्ध्याचल पर्वत
6. दशार्ण (पद्य-23) पूर्वी मालवा राजधानी विदिशा
7. विदिशा (पद्य-24) भिलसा या बिसनागर (पूर्वी मालवा में)
8. वेत्रवती (पद्य 24) बेतवा नदी (मालवा में)
9. नीचैर्गिरि (पद्य-25) भिलसा के पास एक पर्वत (संभवतः उदयगिरि)
10. वननदी (पद्य-26) संभवतः वेस नदी (मालवा में) जो भिलसा के निकट बेतवा में मिल जाती है।
11. मानस (पद्य-27) मानसरोवर झील (तिब्बत में)
12. उज्जयिनी (पद्य-27) उज्जैन (मालवा में)
13. निर्विन्ध्या (पद्य-28) विन्ध्यपर्वत से निकलने वाली पार्वती नदी
14. रेवा (पद्य-29) नर्मदा नदी
15. सिन्धु (पद्य-29) काली सिन्धु (चम्बल की सहायक नदी)
16. अवन्ति (पद्य-30) पश्चिमी मालवा का भाग, राजधानी उज्जयिनी
17. सिप्रा (पद्य-31) उज्जयिनी से होकर मालवा में बहने वाली नदी।
18. गन्धवती (पद्य-35) एक छोटी नदी जो वर्तमान गन्धवती घाट के समीप सिप्रा में मिलती है।
19. गम्भीरा (पद्य-42) उज्जैन जिले की एक नदी जो सिप्रा में जा मिलती है।
20. देवगिरि (पद्य-44) देवगढ़ (मन्दसौर और उज्जयिनी के मध्य)
21. चर्मण्वती (पद्य-47) मालवा में चम्बल नदी, यमुना की सहायक नदी
22. दशपुर (पद्य-49) मन्सौर (मध्यप्रदेश)

23. कुरुक्षेत्र (पद्य-50) हरियाणा में थानेश्वर के पास
24. ब्रह्मावर्त (पद्य-50) दिल्ली के पूर्वोत्तरवर्ती प्रदेश
25. सरस्वती (पद्य-51) एक नदी जो अब लुप्त है
26. जाह्नवी (पद्य-51) गंगा का नाम
27. कनखल (पद्य-52) हरिद्वार के पास का तीर्थ
28. यमुना (पद्य-53) जमुना नदी
29. हिमालय (पद्य-54) सुप्रसिद्ध हिमालय पर्वत
30. क्रौंचरन्ध्र (पद्य-59) नीतिमाणा दर्रा

मेघदूत का वैशिष्ट्य – प्रकृति वर्णन

कालिदास का मेघदूत मानव-प्रकृति तथा बाह्य मानवेतर प्रकृति के चित्रण का अपूर्व संगम स्थल है। संख्या की दृष्टि से बाह्य प्रकृति के वर्णन वाले पद्य ही यहाँ अधिक हैं। यह प्रकृति की मानवीय भावनाओं और अनुभूतियों से पूर्ण एक नायिका के रूप में, जिसमें अपने हाव-भाव और प्रणय-विलास के द्वारा सभी रसिकों को आकृष्ट करने की क्षमता है। यहाँ मेघ एक अचेतन दूतमात्र के रूप में ही चित्रित नहीं है, अपितु वह एक कर्मनिष्ठ, विश्वसनीय, स्नेहपूर्ण तथा अवसर के अनुसार काम करने वाला रसिक अनुज है।

वह क्लान्त होने पर पर्वतों पर विश्राम करता है और प्यास लगने पर नदियों का जल पीता है –

खिन्न खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र

क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां कोपभुज्य ॥ पूर्वमेघ 13

यह नदियों से क्रीड़ा करता है –

पास्यसि स्वादुतस्मात् सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि। पूर्वमेघ 26

वह उज्जयिनी की रमणियों से आँखें मिलाता है –

लोलापांगैर्यदि न रमसे लोचनैर्वचितोऽसि। पूर्व. 29

महाकाल की आरती के समय यह गरजता है —

कुर्वन् सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीयाम् । पूर्व .38

वेश्याएँ उस पर कटाक्षपात करती हैं और कहीं कहीं अभिसारिकाओं को रात्रि में मार्ग दिखाता है, किन्तु गर्जन को रोके रखता है —

सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वीम् । पूर्व .41

इसी प्रकार शिव-पार्वती के विहार स्थल में सघन बनकर सीढ़ी का काम भी यह करता है —

सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाग्रयायी । पूर्व .64

वही मेघ 'उत्तर मेघ' में यक्षप्रिया को सन्देश सुनाते समय भावुक हो जाता है, कभी-कभी उसे आँसू भी चलने लगते हैं —

त्वामाप्यस्रं वनजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यम् । उत्तर .35

यह छिपकर यक्षप्रिया को धीरतापूर्वक सन्देश भी सुनाने लगता है —

वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः । उत्तर .40

इस प्रकार प्रकृति का एक महत्त्वपूर्ण उपादान मेघ भी विशिष्ट व्यक्तित्व से सम्पन्न बनाया गया है।

कालिदास ने प्रकृति को सर्वत्र मानवोचित सुख-दुख के भावों से सम्पन्न माना है। मेघ से पर्वत का मिलन बहुत दिनों पर होता है। इसलिए समागम के समय पर्वत उष्ण अश्रुजल छोड़कर अपने प्रेम की अभिव्यक्ति करता है —

काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य

स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुंचतो वाष्पमुष्णम् । पूर्व .12

प्रकृति के सभी उपादानों के साथ कालिदास का रागात्मक सम्बन्ध है। ये उपादान हैं — गिरि, वन, उपवन, नदी, निर्झर, पुष्प, लता, वृक्ष, पशु, पक्षी आदि। पूर्वमेघ का विपुलांश बाह्य प्रकृति के चित्रण में लगा है, क्योंकि रामगिरि से अलका तक प्राकृतिक सौन्दर्य के

अनेकानेक उपादान वर्तमान हैं। यह बात अवश्य है कि कालिदास सौम्य प्रकृति के उपासक हैं। अतः उन्हें कहीं भी प्रकृति का भयावह या रुक्ष रूप नहीं दिखता।

वर्षा के आरम्भ में मेघों का उमड़ना, मन्द पवन का संचरण, चातकों का बोलना, हंसों का पंक्तिबद्ध होकर उड़ना, नदियों की क्षीणता, इन्द्रधनुष का दृश्य, मालक्षेत्र में जुते हुए खेतों की सोंधी सुगन्ध इत्यादि का वर्णन पूर्वमेघ में अत्यधिक मनोयोग से कवि ने किया है। उत्तर मेघ में भी अलका की प्राकृतिक सुषमा के वर्णन के प्रसंग में सदा सभी वस्तुओं के सुलभ होने की कल्पना कवि ने की है, जिससे छहों ऋतुओं के पदार्थों का उपयोग वहाँ की सुन्दरियाँ करती हैं —

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं

नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतानामानने श्रीः।

चूडापाशे नवकुरवकं चारु कर्णे शिरीषं

सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्॥ उत्तर .2

अलका की सुन्दरियों के हाथ में शरद् ऋतु का लीलाकमल, केशों में ताजे कुन्द के फूलों का ग्रन्थन (हेमन्त का पुष्प), मुख पर शिशिर ऋतु में खिलने वाले लोध्र पुष्प का पराग लगाने से पाण्डुता, जूड़ों में वसन्तु ऋतु में खिलने वाले कुरवक पुष्प की सजावट, कानों में ग्रीष्मकालीन शिरीष के पुष्पों का आभूषण तथा मांग में वर्षाकालीन कदम्ब पुष्प का प्रयोग सदा होता रहता है।

मेघदूत का भावपक्ष

कालिदास ने मेघदूत में मनोभावों की सुमधुर अभिव्यक्ति की है, जो भाषा—सौन्दर्य के द्वारा अत्यन्त हृदयावर्जक रूप ले लेती है। कवि ने इस काव्य के प्रत्येक वाक्य को रस से पूर्ण बनाया है। कुबेर के शाप से पीड़ित यक्ष का प्रेम ही यहाँ विप्रलम्भ शृङ्गार रस बनकर व्यक्त हुआ है। सहृदय पाठक इसकी पंक्तियों में आत्म चित्रण पाकर यक्ष की भावनाओं में बह जाते हैं। जिस मेघ को यक्ष अपना सन्देश पहुँचाने के लिए अलकापुरी भेजता है, उसे भी वह भावों

से भर देता है। वह मेघ अपनी विद्युत रूपी भार्या के साथ यत्र तत्र विलास करेगा, किन्तु अपने काम पर भी ध्यान रखेगा, क्योंकि मित्र का काम उसे अवश्य करना है —

तां कस्यांचिद् भवनवलभौ सुप्त पारावतायां

नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः ।

दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं

मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ पूर्व. 42

भावों की मार्मिकता की दृष्टि से उत्तर मेघ महत्वपूर्ण है। उसमें यक्षप्रिया की विरह दशा का नहीं, अपितु यक्ष की अपनी दशा का भी मार्मिक निरूपण है। यक्षप्रिया की दीनावस्था अवश्य ही मेघ को रुला देगी —

सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती

शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद् दुःखदुःखेन गात्रम् ।

त्वामाप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं

प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥ उत्तर .33

अर्थात् अत्यधिक दुःख से शय्या के मध्य में पड़े हुए, आभूषण—विहीन, कोमल शरीर को धारण करने वाली वह अबला तुमसे भी नवीन जलरूपी आँसू गिरवाएगी। प्रायः द्रवीभूत हृदय वाले सभी लोग दयालु स्वभाव के होते हैं।

यक्ष की अपनी दशा भी अत्यन्त मार्मिक है। वियोग में वह रूठी हुई प्रियतमा का चित्र धातुओं के रंगों से शिलातल पर बनाकर अपने को उसके चरणों में गिराना चाहता है, इसी समय आँसुओं से उसकी दृष्टि लुप्त हो जाती है। आँखे भर जाने से वह चित्र में भी प्रिया का समागम नहीं पा सकता है, विधाता कितना क्रूर है —

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया

मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।

अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे

क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ॥ उत्तर. 45

मेघदूत का कलापक्ष

मेघदूत का बहिरङ्ग संगीतात्मक सौन्दर्य से जटिल है। छन्द का चयन, भाषा का सौष्ठव एवं पदशय्या की दृष्टि से यह संस्कृत साहित्य का अद्भुत रत्न है। मेघदूत के भाव सौन्दर्य से कलात्मक सौन्दर्य में कहीं भी न्यूनता नहीं है। शब्दों का विन्यास ऐसा लगता है कि शब्द किसी वाक्य में लुढ़कते चले आ रहे हों, उन्हें एक निश्चित स्थान मिल गया, जहाँ से वे विस्थापित नहीं हो सकते भाषा की सहजता का उदाहरण है —

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां

ज्ञानानि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः। पूर्व. 5

प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर ही समुचित शोभा से अन्वित है, यहाँ अन्वय में कोई कठिनाई नहीं।

उत्तरमेघ के आरम्भ में कवि ने अलकापुरी के प्रासादों की तुलना मेघ से विस्तृत उपादानों का निर्देश देते हुए की है —

विद्युत्पन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः

संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।

अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रलिहाग्राः

प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र नैस्तैविशेषैः॥ उत्तर 1

हे मेघ, यदि तुम विद्युत से युक्त हो तो अलका के प्रासाद सुन्दर स्त्रियों से विभूषित हैं। तुम्हारे पास इन्द्रधनुष है, तो उनमें भी चित्र अंकित हैं। तुम्हारे पास मधुर गम्भीर गर्जन है तो वहाँ भी संगीत के लिए मृदंग बजते हैं। तुम्हारे भीतर जल भरा है तो उन प्रासादों में मणिमय फर्श जल के समान ही स्वच्छ है। तुम ऊँचे हो तो वे प्रासाद भी गगनचुम्बी हैं। अतएव सारी विशेषताओं के साथ तुम्हारी तुलना के लिए वे समर्थ हैं।

इसी प्रकार कालिदास ने अलंकारों का भी सहज—स्वाभाविक विन्यास किया है, कहीं प्रयत्नपूर्वक अलंकार नहीं रखे हैं। उपमा, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का

औचित्यपूर्ण प्रयोग मेघदूत में भी है। उपमा पर तो कवि का असामान्य अधिकार है। यहाँ भी अनेक उपमाओं के प्रयोग प्राप्य हैं —

बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः (पूर्व . 15)
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेष विस्तार पाण्डुः (पूर्व. 18)
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णा
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य (पूर्व. 20)
सम्भ्रमङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि (पूर्व. 26)
एकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् (पूर्व. 50)
दूरी भूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम् (उत्तर 23)
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम् (उत्तर. 23)

उत्प्रेक्षा के निम्नांकित प्रयोग बहुत सुन्दर हैं —

श्यामः पादो बलिनियमनाभयुद्यतस्येव विष्णोः (पूर्व. 61)
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः (पूर्व. 62)

इसी प्रकार समासोक्ति (नेत्रा नीताः 2.8), दीपक (आलोके ते 2.25) काव्यलिङ्ग (तस्मिन् काले 2.37) परिसंख्या (आनन्दोत्थं 2.4) निदर्शना (नूनं तस्याः 2.24) आदि अलंकारों का सहज निवेश काव्य के कलापक्ष को पुष्ट करता है।

मेघदूत के सुभाषित

अर्थान्तरन्यास के विपुल प्रयोग कवि के सुभाषितों में देखे जा सकते हैं, जिससे उनके जीवन दर्शन पर भी आलोक पड़ता है। ये सुभाषित बहुधा उनके प्रेमी पण्डितों के द्वारा उद्धृत किये जाते हैं। यहाँ प्रमुख उदाहरण दिये गए हैं —

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः। (पूर्व. 3)
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु। (पूर्व. 5)

यांचा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा । (पूर्व. 6)
 आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां (पूर्व. 9)
 न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
 प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्यैः (पूर्व. 17)
 सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु (पूर्व. 19)
 रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय (पूर्व. 21)
 स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु (पूर्व. 30)
 मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थं कृत्याः (पूर्व. 40)
 ज्ञातस्वादो विवृत्तजघनां को विहातुं समर्थः (पूर्व. 43)
 आपन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् (पूर्व. 55)
 के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः (पूर्व. 56)
 वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति (उ. 4)
 प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा (उ. 33)
 कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः संगमात् किञ्चिदूनः (उ. 40)
 कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
 नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण (उ. 49)
 प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव (उ. 54)

वास्तव में मेघदूत कालिदास का अत्यन्त लोकप्रिय काव्य है जिसके विषय में प्राचीन पण्डितों की धारणा थी —

माघे मेघे गतं वयः ।

अर्थात् माघ की शास्त्रीयता और मेघदूत की भावप्रवणता के अनुशीलन में पूरी आयु बीत गई ।

मेघदूत की भाव व्यंजना से प्रभावित होकर जर्मन महाकवि गेटे ने भावुक हृदय से कहा था —

“मेघदूत एक ऐसा दूत है, जिसे अपनी हृदयस्वामिनी के पास कौन नहीं भेजना चाहेगा? ऐसे ग्रन्थ से परिचय होना जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना होती है।”

मेघदूत के विषय में कीथ की उक्ति –

“मेघदूत के मार्ग वर्णन की उज्ज्वलता और शोकाकुल तथा विरहिणी यक्षी के चित्रण के कारुण्य की जितनी प्रशंसा की जाये, उतनी ही कम होगी।”

(ख) गीतिकाव्य

खण्डकाव्य की अपेक्षा गीतिकाव्य में कथानक का आधार नहीं होता। उसमें एक छोटे से दृश्य का भावात्मक चित्रण होता है। कवि के हृदय के भाव संगीत की लय के साथ सरल और मधुर भाषा में अभिव्यक्त होते हैं उसमें ऐसे छन्द का प्रयोग होता है जो संगीत के स्वरों में सजाया जा सकता है। गीतों की यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद में उषा के मनोरम दृश्य को देखकर आनन्दमग्न कवि गा उठता है। उसके अन्तर के भाव उसमें अभिव्यक्त हुए थे। इसी प्रकार के अन्य सूक्त ऋग्वेद में मिलते हैं, जिनमें मानव के सुख-दुःखात्मक या रागात्मक भावों का प्रदर्शन हुआ है। द्यूतकार का गीत, रात्रिगीत तथा मण्डूक से सम्बद्ध गीत इसी प्रकार के हैं। इन गीतों में प्रायः वियोग, भक्ति एवं शृंगार के गीत हैं। इन गीतों को गाकर व्यक्ति आनन्दमग्न हो जाता है। इस प्रकार के काव्यों में मुख्य रूप से गीतगोविन्द, चौरपंचाशिका तथा स्तोत्र काव्य आ जाते हैं।

1. जयदेव का गीतगोविन्द

12वीं शताब्दी ई० के उत्तरार्ध में बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन की राजसभा में कई कवि तथा विद्वान् रहते थे जैसे— उमापतिधर, गोवर्धन, शरणदेव, धोयी तथा जयदेव । इनका उल्लेख जयदेव ने अपने गीतगोविन्द (1/4) में किया है। इन सभासद् विद्वानों में जयदेव की ख्याति गीतगोविन्द के कारण सबसे अधिक है। इनका जन्म बंगाल के केन्दुबिल्व ग्राम में हुआ

था। इनके पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम रामादेवी या राधा देवी था। (श्रीभोजदेवप्रभवस्य रामादेवीसुतश्रीजयदेवकस्य, गीत.12/11) इनकी पत्नी पद्मावती भी संगीतज्ञ थीं तथा जयदेव के गान पर तालानुसार नृत्य करती थीं। मिथिला और उत्कल के विद्वानों ने अपने क्षेत्रों में इनकी स्थिति बतायी है। किंवदन्ती है कि भगवान् जगन्नाथ की कृपा से इनका जीवन बचा था। इनके भक्तों ने इनकी अलौकिक जीवन-लीलाओं का वर्णन किया है।

‘गीतगोविन्द’ संस्कृत भाषा का श्रेष्ठ गीतिकाव्य है। इसमें 12 सर्ग हैं जो 24 प्रबन्धों में विभक्त हैं। इनमें मुख्यतः ताल और लय से सम्बद्ध गीत हैं जिनमें अन्त्यानुप्रास (तुकबन्दी) और ध्रुवपद (एक ही पंक्ति या पदसमूह की आवृत्ति) भी है। यह जयदेव की एकमात्र उपलब्ध रचना है जिसने कवि को अद्भुत कीर्ति प्रदान की। इसका कथानक राधा-कृष्ण के बीच हास परिहास और गोपियों से कृष्ण की रासक्रीड़ा से सम्बद्ध है। इसका संकेत कवि ने प्रथम पद में ही दिया है। (राधामाधवयोर्ययन्ति यमुनाकूले रहःकेलयः)। इसके 12 सर्गों में क्रमशः श्रीकृष्ण की गोपियों के साथ रासक्रीड़ा, राधा का विषाद, कृष्ण के लिए व्याकुलता, उपालम्भ, कृष्ण की राधा के लिए उत्कण्ठा, राधा की सखी के द्वारा राधा के विरहसन्ताप का वर्णन, कृष्ण का आगमन, राधा का कोप-प्रकाशन, कृष्ण का संगीत और राधा से मिलन का निरूपण है। इस काव्य के गीत राधा, दूती और कृष्ण के द्वारा गाये गये हैं। ये गीत रस और भाव से पूर्ण हैं। प्रत्येक गीत के अन्त में जयदेव का नाम है। इन गीतों को कथा-सूत्र में बाँधने के लिए वर्णनात्मक पद्य भी हैं। ये पाठ्य पद्य हैं जिन्हें सस्वर पढ़ा जाता है। इस प्रकार ‘गीतगोविन्द’ में गेय और पाठ्य अंशों का समन्वय है।

इसके प्रथम सर्ग के आरम्भ में ‘दशावतारस्तोत्र’ है जो इस काव्य को धार्मिक रूप प्रदान करता है। इसका गान पूर्वभारत में शुभ अवसरों पर बहुत प्रचलित है। इसकी प्रथम कड़ी में मीनावतार की प्रार्थना है —

प्रलय-पयोधि-जले धृतवानसि वेदम्।

विहित-वहित्र-चरित्रमखेदम्।

केशव ! धृतमीनशरीर ! जय जगदीश हरे ॥१॥

प्रथम गीत (दशावतारस्तुति) के बाद के सभी गीत शृंगार-प्रवण हैं । जयदेव को भक्तकवि या शृंगारी कवि मानने का प्रश्न बहुधा विवेचित हुआ है । श्रीकृष्ण की रासलीला और प्रणय-व्यापार के कारण इस शृंगार-प्रधान कहा गया है तो दूसरी ओर इसे आध्यात्मिक रूप देने वाले भी हैं ।

कृष्ण को ब्रह्म और गोपियों को जीवात्मा मानकर राधा-कृष्ण के मिलन को जीव और ब्रह्म के मिलन के रूप में भी दिखाया गया है । फिर भी गीतगोविन्द के मौलिक रूप में जो अभिसार, नखशिख-वर्णन, शारीरिक सौन्दर्य, उद्दाम कामवासना, परस्त्री-गमन का वर्णन है, वह शृंगार के ही उपयुक्त है । राधा-कृष्ण की भक्ति का आवरण देकर शृंगार को ही प्रधान बनाया गया है । जयदेव ने अपने युग में प्रचलित उत्सवों के अवसर पर मन्दिरों या देव-यात्राओं में कृष्णलीला से सम्बद्ध गाये जाने वाले गीतों का अनुकरण करके उसे साहित्यिक भाषा में नृत्य गीत समन्वित काव्य के रूप में ढाला है । कृष्णभक्तों के बीच सभी गातों से इनके गीत उत्कृष्ट होने के कारण, ये बहुत लोकप्रिय हुए ।

स्वरूप- 'गीतगोविन्द' संस्कृत भाषा में एक नूतन साहित्य-प्रकार को लेकर आया । विगत दो सौ वर्षों में यूरोप में भी यह बहुत प्रशंसित तथा लोकप्रिय हुआ है । युरोपीय विद्वानों ने इसे अपने-अपने ढंग से साहित्य-प्रकार में रखा है । सर विलियम जोन्स ने इसे ग्राम्य नाटक (Pastoral Drama), लासेन ने गीतिनाटक (Lyric Drama), फॉन श्रोएडर ने परिष्कृत यात्रा (Refined yatra) कहा है । पिशेल ने इसे संगीत-नाटक (Melo-Drama) नाम देना उचित समझा है । इसमें वस्तुतः अभिनयात्मक कथोपकथन हैं किन्तु इसी से यह नाटक की श्रेणी में नहीं आता । जयदेव ने इसे सर्गों में विभक्त करके प्रबन्ध-काव्य का ही रूप दिया था । यह बिल्कुल नये रूप का संगीत-प्रधान काव्य है और गीतिकाव्यों का शिरोमणि है ।

'गीतगोविन्द' की रचना का स्वरूप और उद्देश्य जयदेव ने निम्नाङ्कित पद्य में स्पष्ट कर दिया है —

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो, यदि विलासकलासु कुतूहलम् ।

मधुरकोमलकान्तपदावलीं, शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम् ॥ (1.3)

अर्थात् हरि-कीर्तन के साथ रासलीला की रमणीयता, कोमल-कान्त-पदावली का माधुर्य ये दोनों जयदेव की वाणी के अमर उपादान हैं । जयदेव ने ललित पदों का सर्वाधिक मनोरम सन्निवेश किया है, भावों से उनके पद परिपूर्ण हैं अर्थात् साहित्य के दोनों पक्ष (कला और भाव) उनकी कविता में उत्कर्ष पर पहुँचे हुए हैं। पद्यों में अनुप्रास ही नहीं, अन्त्यानुप्रास (तुकबन्दी) भी है जो अपभ्रंशकाव्य का प्रभाव है। इस पद्य में सखी राधा को कृष्ण के साथ विहार के लिए प्रेरणा दे रही है कि वसन्त ऋतु में गोपियों के साथ कृष्ण विहार कर रहे हैं; यहाँ समस्त पदावली से अभिव्यक्त वसन्त की मादकता राधा को अनुप्राणित करती है —

ललित-लवङ्ग-लता-परिशीलन-कोमल-मलय-समीरे ।

मधुकर-निकर-करम्बित-कोकिल-कूजित-कुञ्ज-कुटीरे ॥1॥

विहरति हरिरिह सरसवसन्ते ।

नृत्यति युवतिजनेन समं सखि, विरहिजनस्य दुरन्ते ॥2॥

(सर्ग-1, प्रबन्ध-3)

एक अन्य गीत में सखी राधा को उसी प्रकार कृष्ण के साथ प्रणय-क्रीडा के लिए उत्साह प्रदान कर रही है कि अभिसार में देर न करो। इस गीत (एकताली ताल, गुर्जरी राग) की संगीतात्मकता के कारण इसका बहुधा उद्धरण दिया जाता है —

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेशम् ।

न कुरु नितम्बिनि गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम् ॥

धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली ।

गोपी-पीन-पयोधरा-मर्दन-चंचल-करयुग-शाली ॥ (ध्रुवम)

(सर्ग-5, प्रबन्ध-11)

अपनी कविता की कमनीयता पर कवि को स्वाभिमान है। तभी तो अन्त में उसने कहा है कि वैदग्धपूर्ण वाणी के समक्ष जगत् के सभी मधुर पदार्थ फीके हैं चाहे द्राक्षासव (मदिरा) हो, शर्करा हो, अंगूर हो, अमृत हो, या दूध, आम या अधर—सुधारस ही क्यों न हो

साध्वी माध्वीकचिन्ता न भवति भवतः शर्करे कर्कशासि

द्राक्षे द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत मृतमसि क्षीर नीरं रसस्ते ।

माकन्द क्रन्द कान्ताधर धर न तुलां गच्छ यच्छन्ति भावं

यावच्छृङ्गारसारं शुभमिव जयदेवस्य वैदग्ध्यवाचः ॥ (12/12)

शब्द और अर्थ दोनों की कोमलता जयदेव की कविता की विशिष्टता है। शास्त्रीय दृष्टि से पांचाली रीति और माधुर्य गुण का उत्कृष्ट निवेश इसमें हुआ है। कृष्ण की रासक्रीडा गोपियों के साथ होती है, इसका अत्यन्त मनोरम चित्रण कवि की लेखनी से उद्भूत होता है (गीत०, सर्ग—1, प्रबन्ध—4)

चन्दन—चर्चित—नील—कलेवर—पीत—वसन—वनमाली ।

केलि—चलन्मणि—कुण्डल—मण्डित—गण्डयुगः स्मितशाली ॥2॥

यह तो कृष्ण का रूप हुआ, अब उनकी क्रीडाएँ देखें —

श्लिष्यति कामपि, चुम्बति कामपि, कामपि रमयति रामाम् ।

पश्यति सस्मित—चारुतरामपरामनुगच्छति वामाम् ॥8॥

राधा के शरीर का वर्णन करते हुए कवि ने उसे अप्सराओं का निवास बना दिया है। उसके विविध अवयवों में मदालसा, इन्दुमती, मनोरमा, रम्भा, कलावती और चन्द्रलेखा के नाम श्लेष द्वारा रखे गये हैं; वह पृथ्वी में स्वर्ग—युवतियों का समूह ही है —

दृशौ तव मदालसे, वदनमिन्दुसंदीपकं

गतिर्जनमनोरमा, विजितरम्भमुरुद्वयम् ।

रतिस्तव कलावती, रुचिरचित्रलेखे भुवा

वहो विबुध—यौवतं वहसि तन्वि पृथ्वीगता ॥ (10/7)

भाषा की परिशुद्धि का ध्यान जयदेव बहुत अधिक रखते हैं (सन्दर्भशुद्धिं गिरां जानीते जयदेव एव 1/4)। उनकी कविता में एक ही साथ रस, माधुर्य, संगीत और मोहकता भी है। पदलालित्य और उद्दाम काम-वर्णन के कारण कवि के दोष तिरोहित हो जाते हैं क्योंकि किसी को ध्यान नहीं रहता कि कल्पनाशक्ति और रसानुभूति की वह ऊँचाई उनमें नहीं है जो कालिदास या अमरुक जैसे कवियों में है। भावों के वर्णन में मौलिक प्रतिभा उनमें नहीं है, प्रायः प्राचीन कवियों का अनुकरण ही है।

जयदेव की रचना का बाह्य पक्ष इतना सुन्दर है कि उन्हें बहुत लोकप्रियता मिली। उनके जन्मस्थान 'केन्दुली' में आज भी उनके भक्त उनकी स्मृति में पौष शुक्ल सप्तमी को उत्सव मनाते हैं तथा रातभर उनके गीतों का गान करते हैं। 1292 ई० के एक अभिलेख में उनका एक पद्य उद्धृत है, 1499 ई० में उत्कल के राजा प्रतापरुद्रदेव ने आज्ञा दी थी कि नर्तक और वैष्णव गायक केवल जयदेव के ही गीत सीखें। मूल के सौन्दर्य को विकृत करने वाले (सर विलियम जोन्स कृत) अनुवाद को पढ़कर ही जर्मन कवि गेटे जयदेव पर मुग्ध हो गये थे। वैष्णव सन्त चैतन्य महाप्रभु (1486–1527 ई०) इनके गीतों का गान और श्रवण करते थे। गीतगोविन्द पर प्रायः 35 संस्कृत टीकाएँ हैं जैसे— कुम्भकर्ण (1563 ई०), शंकरमिश्र (1759 ई०), वनमालीभट्ट आदि की। मैसूर-नरेश चिक्कदेवराय (1672–1704 ई०) ने इसके अनुकरण पर 'गीतगोपाल' काव्य लिखा था। भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त विदेशी भाषाओं में भी इसके रूपान्तर हुए हैं। अंग्रेजी कवि सर एडविन आर्नल्ड ने (बुद्ध के जीवन पर 'Light of Asia' काव्य के लेखक) गीतगोविन्द का अंग्रेजी पद्यानुवाद 'द सॉंग सेलेस्टियल (The Song Celestial)' के नाम से किया है। रूकर्ट ने इसका जर्मन अनुवाद किया है। देलबर्ग ने भी इसका जर्मन अनुवाद कुछ मर्यादारहित रूप में किया था जिससे गेटे—कवि क्षुब्ध थे तथा स्वयं इसका अनुवाद करना चाहते थे। गीतगोविन्द के अनुकरण पर संस्कृत में अनेक काव्य लिखे गये। हिन्दी कवियों ने भी इसका अनुकरण किया।

गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती

जयदेव के समकालिक तथा बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन (राज्यकाल 1180—1206 ई०) के सभापण्डित गोवर्धनाचार्य ने हाल की 'गाथा—सप्तशती' के अनुकरण पर शृंगार—रस के मुक्तक पद्यों के संग्रह 'आर्या—सप्तशती' की रचना की। इसमें आर्या—छन्द में 700 पद्य हैं। जयदेव ने गोवर्धन के विषय में कहा था कि उत्कृष्ट शृंगार—रस से पूर्ण विषय की रचना में आचार्य गोवर्धन का प्रतिस्पर्धी कोई नहीं है (शृंगारोत्तर—सत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धनस्पर्धी कोऽपि न विश्रुतः)। इस सप्तशती में परिच्छेदों का नाम 'व्रज्या' रखा गया है। पद्य वर्णानुक्रम से सजाये गये हैं।

इस रचना में प्राकृत 'गाथा—सप्तशती' की प्रेरणा मानते हुए कवि कहते हैं कि वाणी का नैसर्गिक प्रवाह तो प्राकृत में ही होता है, संस्कृत में उसे लाना बलात्कार है। कालिन्दी का प्रवाह सदा नीचे की ओर होता है, उसे आकाश में पहुँचाना हठ ही तो है ? शृंगार के विविध रूपों को लघुकाय 'आर्या' छन्द में कुशलतापूर्वक भरना गोवर्धन की विशिष्टता है। इसमें नगर सुन्दरियों तथा ग्राम—वधूटियों के मनोरम हाव—भाव चित्रित हैं। नायक और नायिका के प्रेमोपालम्भ का यह रूप देखें —

सा सर्वथैव रक्ता रागं गुंजेव न तु मुखे वहति ।

वचनपटोस्तव रागः केवलमास्ये शुकस्येव ॥

नायिका नायक में पूर्णतः अनुरक्त है किन्तु अपने अनुराग को वह मुख से प्रकट नहीं करती है ; वह उस लाल गुंजाफल के समान है जो मुख को छोड़ सर्वत्र लाल—ही—लाल है। दूसरी ओर नायक केवल बोलने में चतुर हैं, केवल मुख से प्रेम का ज्ञापन करता है; वह उस हरे तोते के समान है जिसका केवल मुख ही लाल होता है।

इसी प्रकार एक विरहिणी की तुलना श्लेष द्वारा अपभ्रंश भाषा से की गयी है —

न सवर्णो न च रूपं न संस्क्रिया कापि नैव सा प्रकृतिः ।

बाला त्वद्विरहादपि जातापभ्रंशभाषेव ॥

गोवर्धन ने नारी-हृदय के सूक्ष्म भावों के निरूपण में बहुत सफलता पायी है। संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं में कामिनियों के हृदय में उठने वाले भावों को उन्होंने अङ्कित किया है।

बिल्हण की चौरपंचाशिका

ऐतिहासिक महाकाव्य 'विक्रमाङ्कदेवचरित' के लेखक कश्मीरी कवि बिल्हण-कृत 'चौरपंचाशिका' वसन्ततिलका छन्द में रचित पचास पद्यों का काव्य है जिसका प्रत्येक पद्य 'अद्यापि' शब्द से आरम्भ होता है। इन पद्यों में किसी राजकुमारी के साथ अपनी प्रच्छन्न प्रणयलीला का कवि ने प्रभावशाली और मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। कवि ने यह निर्देश दिया है कि अभी भी (जब कि उसे मृत्युदण्ड दिया जाने वाला है) उसे अपनी प्रियतमा के दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप आदि की स्मृति बनी हुई है। जैसे —

अद्यापि तां भुजलतार्पितकण्ठपाशां

वक्षःस्थलं मम पिधाय पयोधराभ्याम्।

ईषन्निमीलित-सलील-विलोचनान्तां

पश्यामि मुग्धवदनां वदनं पिबन्तीम्॥

अर्थात् मेरे गले में अपनी भुजलता का बन्धन डालकर अपने दोनों स्तनों से मेरे वक्षस्थल को ढंक कर कुछ मुँदे हुए विलास पूर्ण नेत्र-प्रान्तवाली तथा मेरे मुख को उत्कण्ठा से एकटक देखती हुई प्रियतमा को अभी भी मैं देख रहा हूँ। इसी प्रकार सभी पद्यों में कवि प्रियतमा राजकुमारी की लीलाओं की स्मृति में लीन होकर श्रोताओं को द्रवित कर देता है। एक अन्य पद्य में भारतीय शिष्टाचार और विश्वास की ध्वनि मिलती है जिसमें कवि कहता है—

अद्यापि तन्मनसि सम्परिवर्तते मे

रात्रौ मयि क्षुतवति क्षितिपालपुत्र्या।

जीवेति मंगलवचः परिहृत्य कोपात् ।

कर्णे कृतं कनकपत्रमनालपन्त्या॥

अर्थात् आज भी मेरे मन में वह दृश्य घूम रहा है जब रात्रि में मेरे छींकने पर राजपुत्री ने 'शतं जीव' इस मंगलवचन का क्रोध के कारण उच्चारण न करके केवल अपने कान से उतार कर कनकपत्र को मेरे कान में लगा दिया था। स्वर्ण जीवनरक्षक है, इस विश्वास से उसने कान पर स्वर्ण रखकर उक्त आशीर्वाद दे दिया, उसे बोलना नहीं पड़ा।

इस काव्य के दो संस्करण (दक्षिण तथा उत्तर भारतीय) मिलते हैं जिनमें बहुत अन्तर है। यह इसकी लोकप्रियता का परिचायक है। बिल्हण ने अपने महाकाव्य के अन्त में जो आत्मकथा लिखी है उससे यह प्रकाश नहीं पड़ता कि किसी राजकुमारी से उन्होंने प्रेम और विवाह किया हो। सामान्य रूप से बिल्हण की काव्यशैली इसमें मिलती है किन्तु यही इसके बिल्हण-कृत होने का प्रमाण नहीं हो सकता। सम्भव है जयदेव के द्वारा प्रसन्नराघव में (यस्याश्चौरश्चिकुरनिकरः) निर्दिष्ट चौरकवि इसके रचयिता हों, फिर भी यह कल्पित कथानक काव्यात्मक होने के कारण बहुत मार्मिक है। टीकाकारों ने इसकी नायिका की पहचान करने का प्रयास भी किया है। अठारहवीं शताब्दी में भारतचन्द्र ने 'विद्यासुन्दर' काव्य के द्वारा इसके कथानक की पृष्ठभूमि दी है। तदनुसार विद्या के साथ प्रणय करने के कारण वीरसिंह ने चौरपल्ली के राजकुमार सुन्दर को मृत्युदण्ड दिया और इस काव्य के द्वारा सुन्दर ने कालिका की प्रार्थना की। अन्त में मृत्युदण्ड न देकर राजा ने विद्या से उसका विवाह कर दिया। यह बात टीकाकार रामतर्कवागीश (1798 ई०) ने भी कही है।

7.4 अपनी प्रगति जांचिए

1. ऋतुसंहार किसकी रचना है?
2. मेघदूत को कितने भागों में बाँटा गया है?
3. ऋतुसंहार में सर्वप्रथम किस ऋतु का वर्णन है?
4. यक्ष कहाँ पर निवास कर रहा है?
5. मेघदूत पर कितनी टीकाएँ प्राप्त होती हैं?

6. मेघ हरियाणा राज्य के किस क्षेत्र से गुजरता है?
7. जयदेव के प्रसिद्ध गीतिकाव्य का नाम बताइए।
8. आर्यासप्तशती किसकी रचना है?
9. बिल्हण का गीतिकाव्य कौन सा प्रसिद्ध है?
10. चौरपंचाशिका में कुल कितने पद्य हैं?

7.5 सारांश

संस्कृत भाषा में कुछ ऐसे छोटे-छोटे काव्य मिलते हैं, जिनका विषय शृंगार, नीति, भक्ति एवं वैराग्य आदि होते हैं और जिनमें आत्माभिव्यंजना की प्रधानता होती है, विषय वर्णन की नहीं। इन काव्यों को पाश्चात्य विद्वानों ने गीतिकाव्य या लिरिक कहा है। जीवन के किसी एक ही मार्मिक पक्ष का इसमें निरूपण होता है, किन्तु साधारणीकरण इतनी शीघ्रता से होता है कि श्रोता तत्काल आनन्दलोक में चला जाता है। ऐसे काव्य खण्डकाव्यों में महाकवि कालिदास रचित मेघदूत और ऋतुसंहार का स्थान सर्वोपरि है। इनके ये काव्य परवर्ती कवियों के लिए आदर्श बन गए और इन्हीं के अनुकरण पर अनेक दूतकाव्यों की रचना हुई। इनकी रचना मेघदूत तो अद्भुत और अद्वितीय रचना है। गीतिकाव्यों में कवि जयदेव द्वारा रचित राधा-कृष्ण एवं गोपियों के हास परिहास एवं रासलीला युक्त गीत गोविन्द उत्कृष्ट रचना हैं। गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती भी श्रेष्ठ शृंगार रस का उदाहरण है तथा कवि बिल्हण की चौरपंचाशिका नामक लघुकृति भी प्रभावशाली एवं मर्मस्पर्शी है।

7.6 मुख्य शब्दावली

1. गीतिकाव्य (Lyrical Poetry) शोक, प्रेम आदि मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति करने वाली गीत प्रधान कविता।
2. खण्डकाव्य — खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च। साहित्य. 6.239

3. ऋतु (ऋ + तु + कित्) ऋतुएँ, मौसम
4. संहार (सम् + ह + घञ्) साथ-साथ लाना, संचय करना या विनाश।
5. आर्यासप्तशती – आर्या छन्द में लिखे 700 श्लोक
6. चौरपंचाशिका – एक चोर द्वारा लिखित 50 श्लोक

7.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. कालिदास की
2. दो भागों में – पूर्वमेघ, उत्तरमेघ
3. ग्रीष्म ऋतु का
4. रामगिरि पर्वत पर
5. 40 से अधिक
6. कुरुक्षेत्र से
7. गीतगोविन्द
8. गोवर्धनाचार्य की
9. चौरपंचाशिका
10. पचास पद्य

7.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. खण्ड काव्य और गीतिकाव्य की आपस में तुलना कीजिए।
2. ऋतुसंहार में वर्णित सभी ऋतुओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
3. ऋतुसंहार का काव्य वैशिष्ट्य प्रतिपादित कीजिए।
4. मेघदूत के दोनों (पूर्वमेघ, उत्तरमेघ) भागों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
5. मेघदूत में आए मुख्य भौगोलिक स्थानों के आधुनिक नाम बताइए।

6. कालिदास द्वारा रचित मेघदूत के कलापक्ष का विवेचन कीजिए।
7. मेघदूत में प्रकृति चित्रण पर टिप्पणी लिखिए।
8. गीत गोविन्द पर एक टिप्पणी लिखिए।
9. आर्या सप्तशती पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए।
- 1.0. चौरपंचाशिका पर एक टिप्पणी लिखिए।

7.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. ऋतुसंहारम् — कालिदास, व्याख्याकार शिवप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
2. मेघदूतम् — कालिदास, संपादक डॉ. संसार चन्द्र, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास — वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास — डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्बा भारती अकेडमी, वाराणसी।

अध्याय—8

अन्य काव्य विधाएँ (मुक्तक काव्य, स्तोत्र काव्य एवं चम्पूकाव्य)

अध्याय की रूपरेखा

- 8.1 अध्याय के उद्देश्य
- 8.2 परिचय
- 8.3 मुक्तक काव्य, स्तोत्र काव्य एवं चम्पूकाव्य
- 8.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्न
- 8.5 सारांश
- 8.6 मुख्य शब्दावली
- 8.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर
- 8.8 अभ्यास हेतु प्रश्न
- 8.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

8.1 अध्याय के उद्देश्य

- मुक्तक काव्य विषयक अवधारणा को प्रस्तुत कर सकेंगे।
- भर्तृहरि रचित शतकत्रय से परिचित हो सकेंगे।
- भर्तृहरि द्वारा प्रतिपादित जीवनोपयोगी नीतियों को समझ पायेंगे।
- अमरुशतक और भल्लटशतक की समीक्षा कर पाएंगे।
- पण्डित जगन्नाथ कृत भामिनीविलास का विश्लेषण कर पाएंगे।
- स्तोत्र काव्य विषयक अवधारणा को समझ पाएंगे।
- शिवमहिम्नः स्तोत्र एवं शिवताण्डवस्तोत्र की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- सूर्यशतक तथा चण्डीशतक से परिचित हो पाएंगे।

- चम्पूकाव्य विषय अवधारणा को प्रस्तुत कर सकेंगे।
- नलचम्पू, रामायणचम्पू, भारत चम्पू से परिचित हो सकेंगे।
- अन्य अनेक चम्पूकाव्यों का विश्लेषण कर पाएंगे।

8.2 परिचय

महाकाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य या प्रबन्धकाव्यों में एक पद्य दूसरे पद्य से संबंधित होता है, लेकिन मुक्तक काव्यों में प्रत्येक पद्य स्वतन्त्र होता है। संस्कृत साहित्य में ऐसे अनेक सुभाषित संग्रह प्राप्त होते हैं, जिनमें प्रत्येक श्लोक में अलग-अलग विषय प्रतिपादित किए गए हैं। भर्तृहरि रचित शतकत्रय (नीतिशतक, शृंगारशतक, वैराग्यशतक) इनमें सर्वप्रमुख हैं। इसके साथ-साथ अमरुशतक, भल्लटशतक, घटकर्पूर काव्य तथा पण्डितराज जगन्नाथ कृत भामिनीविलास भी प्रसिद्ध मुक्तक काव्य हैं।

शृंगारप्रधान गीतिकाव्य के व्यापक वर्ग से भिन्न धार्मिक गीतिकाव्यों का वर्ग है, जिसे स्तोत्रकाव्य कहा जाता है। प्रचार-प्रसार की दृष्टि से इस वर्ग का अधिक महत्त्व है। सामान्य जनों तथा भक्तों के बीच स्तोत्रों की लोकप्रियता भाषा के बन्धन को तोड़ देती है। संस्कृत न जानने वाले भी स्तोत्रों का पाठ और गान करते हैं। स्तोत्रकाव्य में भक्ति और वैराग्य दोनों विषयों का ग्रहण होता है। वैराग्य वाले स्तोत्र संसार की असारता तथा भगवद्भजन का महत्त्व दिखाते हैं, जैसा कि उपर्युक्त भामिनीविलास के अन्तिम खण्ड शान्तविलास के पद्यों में तथा भर्तृहरि के वैराग्यशतक के पद्यों में है। पुष्पदन्त का शिवमहिम्नः स्तोत्र, रावणकृत शिवताण्डवस्तोत्र, मयूर भट्ट का सूर्यशतक, बाणभट्ट का चण्डीशतक, शंकराचार्य के विभिन्न स्तोत्र तथा पण्डितराज जगन्नाथकृत कई स्तोत्र काव्य बहुत प्रसिद्ध हैं।

गद्य और पद्य का मिश्रण होने से चम्पूकाव्य संस्कृत लेखकों के आकर्षण का विषय रहा है, कवियों को गद्य-पद्य दोनों में लेखन कौशल दिखाने का अवसर इसी में मिलता है। अतएव सूचीपत्रों में 250 से अधिक चम्पूकाव्यों के लिखे जाने की सूचना है। चम्पूकाव्यों के विषय जीवन-चरित, यात्रावर्णन, युद्ध वर्णन, विवाह, भक्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन, सत्य घटनाओं पर

आश्रित हैं तो कुछ सर्वथा पौराणिक या काल्पनिक हैं। इस प्रकार उपरोक्त काव्यविधाओं की तरंगिणी सदा प्रवाहित रही है।

8.3 मुक्तक काव्य, स्तोत्र काव्य एवं चम्पूकाव्य

(क) मुक्तक काव्य

प्रबन्ध काव्य, खण्डकाव्य और गीतिकाव्य में प्रत्येक पद का अपने से पहले और अपने से बाद के श्लोक से संबंध होता है। उस प्रसंग में ही उसका अर्थ स्पष्ट और सार्थक होता है परन्तु संस्कृत में अनेक कवियों ने ऐसे श्लोकों की रचना की है, जो अपने में पूर्ण और सार्थक हैं। ऐसे श्लोकों को मुक्तक काव्य कहा जाता है। प्राचीन समय के काव्यशास्त्र के आचार्य मुक्तक श्लोकों को श्रेष्ठ काव्य की कोटि में नहीं रखते थे, परन्तु ध्वनिवादी आनन्दवर्धन ने उनसे अभिव्यक्त ध्वनि अथवा व्यंग्य अर्थ को महत्त्व देते हुए उन्हें उत्तम काव्य माना है। संस्कृत साहित्य में ऐसे अनेक सुभाषित संग्रह प्राप्त होते हैं, जिनमें इन मुक्तक श्लोकों को एकत्र किया गया है। कुछ कवियों ने स्वतंत्र रूप से ऐसे मुक्तक श्लोकों से युक्त रचनाएं की हैं। ये श्लोक विभिन्न रसों को अभिव्यक्त करने वाले सरस भी हैं, इनमें उपदेशात्मक नीति वचन भी हैं —

भर्तृहरि रचित शतकत्रय

भर्तृहरि के नाम से तीन शतक — नीति शतक, शृंगार शतक और वैराग्य शतक प्राप्त होते हैं। भर्तृहरि कौन थे? इस विषय में बड़ा ही मतभेद है। भारतीय परम्परा के अनुसार ये राजा विक्रमादित्य के अग्रज थे। अपनी रानी पिंगला के द्वारा किये गए विश्वासघात के कारण ये वैरागी हो गए और अपने छोटे भाई विक्रम को राजगद्दी सौंप कर ये वन में चले गए। इनके द्वारा लिखे गए तीनों शतक इनके जीवन वृत्त से सम्बद्ध बताये जाते हैं। इस किंवदन्ति के अनुसार इनका समय ई. पूर्व प्रथम शताब्दी कहा जा सकता है। भर्तृहरि के नाम से ही एक व्याकरणदर्शन ग्रन्थ वाक्यपदीय प्राप्त होता है। चीनी यात्री इत्सिंग ने वैयाकरण भर्तृहरि का

मृत्युकाल 651 ई. में बतलाया है। इसी भर्तृहरि को वाक्यपदीय एवं तीनों शतकों का लेखक कीथ आदि पाश्चात्य विद्वानों ने कहा है।

इत्सिंग के अनुसार भर्तृहरि बौद्ध थे, किन्तु यह मान्यता असंगत है। वाक्यपदीय तथा नीतिशतक के मंगलाचरण (अनादिनिधनं ब्रह्म तथा नमः शान्ताय तेजसे) से प्रतीत होता है कि भर्तृहरि शैव या वेदान्तोक्त ब्रह्मोपासक थे। इनके तीनों शतकों में या वाक्यपदीय में भी कोई ऐसा प्रसंग नहीं है जो इन्हें बौद्ध सिद्ध कर सके। अतएव इत्सिंग को कोई भ्रम हुआ होगा या किसी अन्य ग्रन्थकार के विषय में उसने यह सूचना दी होगी। अतः इस कवि का काल 650 ई. से पहले प्रथम शताब्दी ई. पूर्व तक माना जा सकता है।

1. भर्तृहरि का नीतिशतक

भर्तृहरि ने नीतिशतक में जीवन उपयोगी सभी विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है। इनकी ये सुभाषितें आज भी सत्य है :—

बोद्धारो मत्सरग्रस्ता प्रभवः स्मयदूषिताः।

अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम्॥2॥

अर्थात् विद्वान् ईर्ष्याग्रस्त हैं तथा नृपवृन्द गर्व में मत्त हैं और अन्य साधारण लोग अज्ञान में दबे हुए हैं। अतः सुभाषित कवि के हृदय में ही दबा रहता है। कवि के सुभाषित वचनों का कोई भी व्यक्ति सच्चा पारखी नहीं है।

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरामाराध्यते विशेषज्ञः।

ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि तं नरं न रंजयति॥3॥

इस विश्व में तीन तरह के प्राणी हैं — अज्ञ, विशेषज्ञ और मूर्ख। इनमें अज्ञ (जानकारी रहित) को आसानी से समझाया जा सकता है तथा विशेषज्ञ को सुखपूर्वक समझाया जा सकता है, किन्तु मूर्ख व्यक्ति को ब्रह्मासम अतिचतुर व्यक्ति भी नहीं समझा सकता।

(i) मूर्खनिन्दा

भर्तृहरि ने नीतिशतक के प्रारम्भिक श्लोकों में मूर्ख, अड़ियल व्यक्तियों की खुलकर आलोचना की है। मूर्ख व्यक्ति को समझाना, जिस पर वह मोहित हो गया है, उससे उसका ध्यान हटाना असम्भव बताया है। अतः साफ—साफ कह दिया है कि —

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ।

न मूर्ख जनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ॥14

अर्थात् दुर्गम पहाड़ों पर, पर्वतों पर वनचरों के साथ रहना अच्छा है, किन्तु मूर्खों के साथ इन्द्र की सभा में भी रहना अच्छा नहीं है।

शक्यो वारयितु जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो

नागेन्द्र निशितांकुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ ।

व्याधिभैषजसंग्रहैश्च विविधर्मन्त्रप्रयोगैविषं

सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ॥11

अर्थात् अग्नि का जल से, धूप का छाते से, मदोन्मत्त हाथी का अंकुश से, बैल व गधे आदि का डण्डे से, रोगों का औषधियों से और विष का मन्त्रादि प्रयोगों द्वारा निवारण हो जाता है। इस तरह शास्त्रों में अनेक प्रकार के विकारों की औषधियाँ वर्णित हैं, किन्तु मूर्खता की शास्त्रों में कोई औषधि नहीं बताई गई है।

फिर भी भर्तृहरि ने अज्ञानता को ढकने का उपाय बताया है और वो मार्ग है, विद्वानों की सभा में चुप रहना और ध्यान से उनकी बातें सुनना —

स्वायत्तेकान्तगुणं विधात्रा विनिर्मितम् छादनमज्ञतायाः ।

विशेषतः सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ॥14

भर्तृहरि ने आत्ममंथन करके बताया कि पहले मैं भी मूर्ख ही था —

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदन्धः समभवम्

तदा सर्वतोऽस्मीत्यभदवलिप्तं मम मनः ।

यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतम्

तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ।।8

अर्थात् जब मुझे थोड़ा-सा ज्ञान था तो मैं हाथी के समान मदांध होकर अपने मन में ज्ञानी होने का गर्व करने लगा और समझने लगा कि मैं सर्वज्ञ हूँ, मेरे जैसा कोई नहीं है। लेकिन जब मैं विद्वानों से, ज्ञानीजनों से तथा सत्संगति से कुछ ज्ञान प्राप्त कर पाया, तब मुझे यथार्थ का ज्ञान हुआ और मेरा वह मद ज्वर (बुखार) के समान उतर गया और मैंने माना कि मैं तो निपट मूर्ख हूँ।

(ii) सत्संगति का महत्त्व

भर्तृहरि ने कहा है कि हमें मित्रता बहुत सोचविचार करके ही करनी चाहिए। हमें यह ज्ञान होना चाहिए कि एक बूंद जब तपते हुए लोहे पर पड़ती है तो उसका नामोनिशान भी नहीं रहता, वह तुरन्त भाप बन जाती है, यही गति उनकी होती है जो दुष्टों की संगति में गिर गए हैं। सामान्य लोगों से मित्रता कमल पर स्थित बूंद के समान होती है जबकि श्रेष्ठ व्यक्तियों से की गई मित्रता स्वाति नक्षत्र में गिरी सीपी में बूंद के समान मोती बन जाती है —

सन्तप्ताऽयसि संस्थितस्य पयसो नामाऽपि न ज्ञायते

मुक्ताकार तया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ।

स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते

प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते ।।68

दुष्टों की मित्रता और सज्जनों की मित्रता छाया (परछाई) के समान है। दुष्टों की मित्रता दिन के पूर्वार्द्ध की छाया के समान है जो प्रारम्भ में ज्यादा लम्बी होती है और बाद में कम होते-होते समाप्त हो जाती है, जबकि सज्जनों की मित्रता दिन के उत्तरार्द्ध की परछाई के समान प्रारम्भ में कम होती है और बाद में बढ़ती जाती है —

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण लघ्वी पुरा वृद्धिमति च पश्चात् ।

दिस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ।।60

अतः हमें सच्चे मित्रों की ही खोज करनी चाहिए, क्योंकि श्रेष्ठ मित्र हमें पाप से बचाता है, हमें हितकार्यों में लगाता है, प्रेरित करता है, हमारे गुप्त रहस्यों को छिपाता है और गुणों

को प्रकट करता है, तथा संकटकाल में हमें अकेला नहीं छोड़ता और जरूरत पड़ने पर हमारी सहायता भी करता है —

पापान्निवारयति योजयते हिताय

गुह्यं निगूहति गुणान्प्रकटीकरोति ।

आपद्गतं च न जहाति ददाति काले

सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ।।73

और इन सच्चे मित्रों की संगति मनुष्य का क्या भला नहीं करती? अर्थात् सत्संगति के तो अनगिनत लाभ ही लाभ हैं। यह सत्संगति बुद्धि की जड़ता को हरने वाली है, वाणी में सत्यता लाती है, हमारी प्रतिष्ठा में वृद्धि करती है, मान बढ़ाती है, पापों को हरती है, मन को प्रसन्न करती है और दसों दिशाओं में हमारा यश फैलाती है —

जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यं

मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।

चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम्

सत्संगति कथय किन्न करोति पुसांम् ।।19

(iii) दुष्टों की पहचान और उनसे दूरी में ही बचाव संभव

भर्तृहरि के अनुसार संसार में ऐसे सज्जन भी हैं जो निःस्वार्थ भाव से सदैव दूसरों की भलाई में ही लगे रहते हैं। मध्यम श्रेणी के कुछ ऐसे भी पुरुष हैं जो अपने स्वार्थ की रक्षा करते हुए दूसरों के हित साधन में लगे रहते हैं और कुछ मनुष्य रूपी राक्षस हैं जो अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए दूसरों को हानि पहुँचाते हैं परन्तु जो सदैव निरर्थक ही (बिना स्वार्थसिद्धि) दूसरों के हितों का नाश किया करते हैं, वे कौन हैं? यह मैं भी नहीं जानता —

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये

सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाऽविरोधेन ये ।

तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये

ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ।।55

इसलिए ऐसे दुर्जनों से दूरी में ही हमारा बचाव है। यदि यह दुर्जन विद्वान् भी हो तो भी उसे त्याग देना चाहिए। क्या मणि से सुशोभित विषधर में भयंकरता नहीं होती? बल्कि यह तो ज्यादा खतरनाक होता है —

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन् ।

मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयंकरः ।।52

जो व्यक्ति अपने मधुर और अमृतमयी उपदेशों से दुष्टों को सन्मार्ग की ओर ले जाना चाहता है या वह कमलनाल के तन्तुओं से हाथी को बांधना चाहता है अथवा सिरस (सरसों) की पुष्प पंखुड़ी से अति कठोर हीरे में छेद करना चाहता है और समुद्र के खारे पानी को शहद की बूंद से मीठा करना चाहता है— ऐसा होना असंभव है। कहने का अर्थ यह है कि जैसे उपर्युक्त तीनों कार्य असंभव हैं, वैसे ही दुष्ट को सज्जन बनाना भी असंभव ही है —

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते

छेतुं वज्रमणिशिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यति ।

माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते

नेतुं वाञ्छति यः खलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः ।।7

(iv) विद्या महिमा

भर्तृहरि ने नीति शतक में विद्या—महिमा व्यक्त करने वाले कई श्लोक लिखे हैं और विद्याहीन मनुष्य को पशु के समान बताया है —

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्

विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः ।

विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता

विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः ।।18

अर्थात् विद्या ही मनुष्य का श्रेष्ठ रूप और गुप्त धन है। विद्या ही भोग, यश और सुख की दात्री है। विद्या गुरुओं की भी गुरु है। विदेश में विद्या ही बन्धुस्वरूप है। विद्या ही परम देवता है। विद्या ही राजा द्वारा पूजित है। अतः विद्या विहीन मनुष्य पशुवत् है।

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि शं पुष्पाति यत्सर्वदा—
उप्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम् ।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं
येषां तान्प्रति मानमुज्झत! नृपाः कस्तैः सह स्पर्द्धते ॥

अर्थात् जिनके पास विद्यारूपी गुप्त धन है, उसे चोर भी नहीं चुरा सकता और सदैव कल्याण की ही वृद्धि करता है। याचकों (शिष्यों) को देते रहने पर भी जो बढ़ता ही रहता है। महाप्रलय में भी जिसका नाश नहीं होता। ऐसा धन जिसके पास है, ऐसे विद्वानों का तो सदैव सम्मान करना चाहिए। हे राजाओ! अभिमानवश तुम उनकी अनदेखी मत करो, क्योंकि उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता।

येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥12

अर्थात् जिनमें न विद्या है, न तप करने की आदत है, न दान देने की प्रवृत्ति है, न शुद्ध आचरण (शील) है, न गुण है और न धार्मिक प्रवृत्ति है। ऐसे मनुष्य पृथ्वी पर भार स्वरूप हैं, और मृग रूपी अर्थात् पशु रूप में इस पृथ्वी पर विचरण करते हैं।

(v) धन महिमा

भर्तृहरि ने जीवन में धन को भी परमावश्यक बताया है। धन के बिना समाज में हमारी क्या स्थिति हो जाती है, देखिये —

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः क्षणेन

सोऽप्यन्य एव भवतीति विचित्रमेतत् ।।39

वही इन्द्रियाँ हैं, वही नाम है, वही काम है वही अंकुठित बुद्धि है। वही वाणी है, सब कुछ तो वही है, लेकिन जब मनुष्य धन की ऊष्मा से रहित हो जाता है, तब क्षण मात्र में क्या से क्या हो जाता है, वह सब के लिए पराया या अनजान सा हो जाता है। धन की कैसी विचित्र महिमा है?

यस्यास्ति वित्तं सः नरः कुलीनः, सः पण्डितः सः श्रुतवान् गुणज्ञः ।

सः एव वक्ता सः च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रूयन्ति ।।41

अर्थात् जिस व्यक्ति के पास धन है, वही कुलीन है, वही पण्डित है, वही विद्वान् एवं गुणी है। वही श्रेष्ठ वक्ता और वही दर्शनीय है। वास्तव में सभी गुण धन में ही आश्रित हैं।

यहाँ भर्तृहरि ने धन की अपार महिमा का वर्णन किया है। इसके साथ-साथ कमाए गए धन का सदुपयोग करने की भी शिक्षा दी है —

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।

यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ।।40

अर्थात् धन की तीन गतियाँ बताई गई हैं — दान, भोग एवं नाश। जो मनुष्य न धन का दान करता है और न उसका भोग करता है, तो वह धन नाश को प्राप्त हो जाता है।

(vi) महान् व्यक्ति की पहचान

भर्तृहरि ने नीतिशतक में महान् व्यक्ति की पहचान अनेक श्लोकों में कराई है। महात्माओं की प्रकृति (स्वभाव) कैसी होती है? सज्जनों का कठोर व्रत क्या है? महात्माओं का मन कैसा होता है? किन लक्षणों से युक्त व्यक्ति सज्जन कहलाने का अधिकारी है? इस सज्जनों के कर्म कैसे होते हैं? परोपकारियों का स्वभाव कैसा बताया गया है? धीर पुरुष अपने न्यायपथ से विचलित क्यों नहीं होते? इन सभी प्रश्नों के उत्तर भर्तृहरि ने बहुत सरलता से दिये हैं —

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।

यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ।।63

अर्थात् विपत्ति काल में धैर्य, उन्नति में क्षमा, सभा में चतुरता, वाणी में वाक्पटुता, युद्ध में शौर्य, यश प्राप्ति में अभिरुचि, वेदाध्ययन में तत्परता — ये श्रेष्ठ गुण महान् व्यक्तियों के स्वभाव में ही होते हैं।

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते संभ्रमविधिः

प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं नाप्युपकृतेः।

अनुत्सेको लक्ष्म्यां नभिभवगन्धाः परकथा

सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ।।65

अर्थात् गुप्त दान करना, घर आए अतिथि का सम्मान करना, परोपकार करके चुप रहना, दूसरों के द्वारा किए गए उपकार को समाज में कहना, धन-वैभव पाकर भी गर्व न करना और दूसरों की कथा (चुगली) की चर्चा में अरुचि रखना भाव लाना आदि। सज्जन पुरुषों को तलवार की धार पर चलने के समान यह कठोर व्रत किसने बतलाया है?

सम्पत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम्।

आपत्सु च महाशैलशिलासंघातकर्कशम् ।।66

अर्थात् महात्माओं का मन, सम्पत्ति के प्राप्त होने पर कमल के सदृश कोमल अर्थात् अत्यन्त दयार्द्र हुआ करता है और विपत्ति के समय पर्वतीय चट्टान के समान कठोर हुआ करता है।

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः

सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम्।

मान्यान्यमानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रख्यापय प्रश्रयं

कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु पापों दयामेतत्सतां चेष्टितम् ।।76

लोभ का त्याग, क्षमा का वरण, अहंकार रहित, पापों से दूरी, सत्य भाषण, सन्मार्ग का वरण, विद्वानों की सेवा, बड़ों का आदर, शत्रुओं के संग भी विनय-नम्रता, यश की रक्षा, दीन-दुखियों पर दया — इन लक्षणों से युक्त व्यक्ति ही सज्जन कहलाने का अधिकारी है।

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः

त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।

परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं

निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ।।77

अर्थात् जिनका मन, वचन और शरीर पुण्य रूपी अमृत से परिपूर्ण है। जो परोपकार द्वारा तीनों लोकों को प्रसन्न करने वाले हैं, दूसरों के अल्प गुणों को पर्वताकार मानकर प्रसन्न रहने वाले हैं, ऐसे सज्जन कितने हैं ?

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः नवाम्बुभिर्दूरविलंबिनो घनाः ।।

अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ।।78

अर्थात् फलों के लद जाने पर वृक्ष झुक जाते हैं, जल से भरे होने से बादल पृथ्वी पर झुकते हैं, समृद्धि पाकर सत्पुरुष विनम्र हो जाते हैं। यह झुकना या नम्र होना परोपकारियों का स्वभावगत गुण होता है।

निन्दन्तु नीतिनिपुणाः यदि वा स्तुवन्तु

लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा

न्याय्यार्थः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।83

अर्थात् नीतिनिपुण व्यक्ति निंदा करें या स्तुति, लक्ष्मी प्राप्त हो या पास की भी चली जाए, मृत्यु आज हो अथवा युगों के अन्त में, लेकिन धीर पुरुष सत्य मार्ग से कभी विचलित नहीं होते।

(vii) सुख—दुःख

जीवन में सुख—दुःख का आना—जाना लगा रहता है। बहुत कम लोग इनको बिना विचलित हुए सहन कर जाते हैं, लेकिन ज्यादातर व्यक्ति दुःख आते ही इतने घबरा जाते हैं कि जरा से दुःख को भी पर्वत समान समझ कर तथा उसे नित्य (हमेशा रहने वाला) मानकर दिन रात बड़े कष्ट से बिताते हैं और अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं। ऐसे लोगों के लिए भर्तृहरि का उपदेश है —

छिन्नोऽपि रोहति तरु क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः ।

इति विमृशन्तः संतः संतप्यन्ते न ते दुःखेषु ॥74

अर्थात् जैसे वृक्ष के कट जाने पर भी वह पुनः बढ़ने लगता है, क्षीण हुआ चन्द्रमा भी पुनः बढ़ता जाता है, ऐसा जानकर सज्जन पुरुष विपत्ति काल में दुःखी नहीं होते ।

पातितोऽपि कराघातैरुत्पतत्येव कन्दुकः ।

प्रायेण साधुवृत्तीनामस्थायिन्यो विपत्तयः ॥ 79

अर्थात् हाथ से पृथ्वी पर पटक दिये जाने पर भी गेंद शीघ्र ही ऊपर आ जाती है । इसी प्रकार साधु भी विपत्तिकाल में शीघ्र ही उभर जाते हैं ।

क्वचित्पृथ्वीशय्यः क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः

क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।

क्वचित्कन्धाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो

मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःख न च सुखम् ॥81

अर्थात् किसी कार्य सिद्धि में लगा मनस्वी पुरुष सुख और दुःख की कभी परवाह नहीं करता । तभी तो वह बिछौने के अभाव में भूमि पर ही शयन कर लेता है और कभी मिल जाए तो पलंग पर भी सो जाता है । कभी कंद—मूल—फल खाकर ही पेट को तृप्त कर लेता है तो कभी धान का भात भी ग्रहण कर लेता है । कभी फटे—पुराने (गुदड़ी के समान) कपड़े पहनकर दिन व्यतीत करता है, तो कभी दिव्य वस्त्र भी धारण कर लेता है । कहने का अर्थ यह है कि वह सुख व दुःख दोनों में ही आनन्दित रहता है और अपने लक्ष्य पर ही एकाग्र रहता है ।

(viii) भाग्य चक्र

भर्तृहरि ने भाग्य की गरिमा का भी कई श्लोकों में वर्णन किया है, लेकिन ये कर्मों को छोड़कर भाग्य पर विश्वास नहीं करते, बल्कि पूर्व समय या पूर्वजन्मों में किये कर्मों को ही भाग्य में रूपान्तरित हुआ बताते हैं —

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ॥

तथापि सुधियां भाव्यं सुविचार्यैव कुर्वता ।। 87

अर्थात् मनुष्य अपने पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार ही सुख-दुःख भोगते हैं और वैसी ही बुद्धि भी हो जाती है। अतः व्यक्ति को चाहिए कि सोच-समझकर ही कार्य करे।

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः सन्ताडितो मस्तके

वाञ्छन् देशमनातपं विधिवशात् तालस्य मूलं गतः ।

तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः

प्रायोगच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः ।। 89

अर्थात् सूर्य के ताप से बचने के लिए गंजा व्यक्ति छाया युक्त स्थान की खोज में चलता हुआ ताड़ के वृक्ष के नीचे जा पहुँचा और उसके ऊपर से एक बड़ा भारी फल गिरने के कारण उसका सिर फट गया। कहने का अभिप्राय है कि भाग्यहीन पुरुष जहाँ कहीं भी जाता है, विपत्तियाँ भी वहीं पहुँच जाती हैं।

पत्र नैव यदा करीरविपटे दोषो वसन्तस्य किम्?

नालूकोऽयवलोकयते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्?

धारा नैव पतति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणम्?

यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः?

अर्थात् यदि करील के वृक्ष पर पत्ते नहीं आए तो इसमें वसन्त ऋतु का भला क्या दोष है? यदि दिन में उल्लू को दिखाई नहीं देता तो इसमें सूर्य का क्या दोष है? यदि पपीहे के मुख में जल वर्षा की बूंदें न गिरें तो उसमें बादलों का क्या दोष है? जो विधाता ने मस्तक पर लिख दिया है, उसको मिटाने वाला कोई नहीं है।

(ix) कर्म कैसे किए जाएं?

जैसा कि उपर्युक्त श्लोकों में भर्तृहरि ने पूर्वकृत कर्मों को भी भाग्य बताया है और भाग्य अर्थात् पूर्वकृत कर्मों के परिणाम से बचना असम्भव भी बताया है। अतः हमें पवित्र मन से पवित्र कर्म ही करने चाहिए। सर्वप्रथम हमें आलस्य को अपना शत्रु और परिश्रम को अपना

मित्र समझना होगा —

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः ।

नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति ॥ 85

अर्थात् मनुष्य के शरीर में रहने वाला आलस्य, उसका सबसे प्रबल शत्रु है, वहीं पुरुषार्थ के समान उसका कोई मित्र नहीं है, जिसके करते रहने से मनुष्य कभी दुःख नहीं पाता ।

भर्तृहरि के अनुसार हमें जो भी कर्म करने हैं, उनके विषय में भली-भाँति विचार विमर्श, तर्क-वितर्क कर लेना चाहिए —

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यजातं,

परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ॥

अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते —

भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥ 98

अर्थात् कोई भी कर्म करने से पूर्व विद्वानों को उसके परिणाम पर भली भाँति विचार कर लेना चाहिए, क्योंकि बिना विचार किए गए कर्म का फल मृत्यु तक हृदय को कष्ट देने वाला होता है और हर समय काँटे के समान वेदना पहुँचाता रहता है ।

भर्तृहरि ने कर्म प्रारम्भ करने वालों को निम्न तीन प्रकार का बताया है —

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः

प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।

विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः

प्रारब्धमुत्तमजनाः न परित्यजन्ति ॥ 24

अर्थात् विघ्न के भय से निम्न कोटि के लोग कोई कार्य प्रारम्भ ही नहीं करते । मध्यम श्रेणी के लोग कार्य आरम्भ तो कर देते हैं, लेकिन जरा सा विघ्न आने पर बीच में ही छोड़ देते हैं । उत्तम श्रेणी के लोग विघ्नों के बार-बार उपस्थित होने पर भी कार्य अधूरा नहीं छोड़ते अर्थात् उसे पूर्ण करके ही छोड़ते हैं ।

अतः अमृतप्राप्ति (सफलता प्राप्ति) तक कार्य से हटना नहीं —

रत्नैर्महाहैस्तुतुष्टुर्न देवाः न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।

सुधां विना न प्रययुर्विरामं न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ।।88

अर्थात् समुद्र मंथन के द्वारा अनमोल रत्न पाकर भी देवगण प्रसन्न नहीं हुए। भयंकर विष भी निकला, लेकिन उससे भी देवता भयभीत नहीं हुए और जब तक अमृत प्राप्त न हो गया, उस कार्य से वे हटे नहीं। कहने का अभिप्राय यह है कि धीर गंभीर विद्वान् पुरुष अभीष्ट की प्राप्ति हुए बिना किसी कार्य को अधूरा नहीं छोड़ते हैं।

2. भर्तृहरि कृत शृंगार शतक

जैसा कि विदित है भर्तृहरि वैरागी होने से पहले एक राजा थे और भोग—विलासमय जीवन जी रहे थे। शृंगार शतक शायद उसी समय रचा गया होगा। इसमें ज्यादातर श्लोक शृंगार रस प्रधान हैं। स्त्रियों के अंग—प्रत्यंग के विवेचन के साथ—साथ उसके वशीकरण तथा विषवत् स्त्रियों का वर्णन भी अनेक श्लोकों में किया है। कामदेव का जादू, जिसके सामने प्रायः सभी हार जाते हैं, यह बात भी निःसंकोच स्वीकार की गई है। वैश्याओं और विश्वासघाती स्त्रियों से दूर रहना भी भर्तृहरि ने समझाया है। नर—नारी प्रेम एकतरफा होगा तो दुःखदायी होगा और दोतरफा प्रेम विरह में भी बरकरार रहता है, यह भी शृंगार शतक में प्रतिपादित किया गया है। संक्षिप्त शृंगार शतक निम्नलिखित है —

(i) स्त्रियों का वशीकरण

स्त्रियाँ पुरुष को अपने बंधन में कैसे बाँध लेती हैं?

स्मितेन भावेन च लज्जया भिया पराङ्मुखैरर्द्धकटाक्षवीक्षणैः ।

वचोभिरीर्ष्याकलहेन लीलया समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः ।।2

अर्थात् स्त्रियाँ अपनी मन्द मुस्कान से, काम विकार को प्रकट करने वाले अपने भाव से, लज्जा से, लोकभय से, मुँह फेर लेने से, कटाक्ष द्वारा, मधुर वचनों से, ईर्ष्या व कलह आदि करके पुरुष को अपने बंधन में बाँध लेती हैं।

स्त्रियाँ अबला नहीं हैं —

नूनं हि ते कविवरा विपरीतवाचो ये नित्यमाहुरबला इति कामिनीनाम् ।।

याभिर्विलोलतर तारकदृष्टिपातैः शक्रादयोऽपि विजितास्त्वबलाः कथं ताः ? ।। 9

अर्थात् कोई सन्देह नहीं कि वे कवि उल्टी बुद्धि के हैं, जो सुन्दरियों को अबला कहते हैं, क्योंकि जिन्होंने अपने चंचल नेत्रों की मार से इन्द्रादि देवों को जीत लिया, फिर वे भला अबला कैसे कही जा सकती हैं?

विषवत् स्त्रियाँ प्रिया कैसे हो सकती है?

स्मृता भवति तापाय दृष्टा चोन्मादकारिणी ।

स्पृष्टा भवति मोहाय सा नाम दयिता कथम् ।।72

भर्तृहरि जी कहते हैं कि जो स्मरण करने मात्र से संताप देने वाली है, देखने पर जो पागल बना देती है, छू लेने पर जो मन में अंग-अंग को छू लेने का मोह उत्पन्न कर देती है, ऐसी विषवत् स्त्री प्रिया कैसे हो सकती है ?

स्त्रियों के कारण लुटा-पिटा व्यक्ति

इह हि मधुरगीतं नृत्यमेतद्रसोऽयं

स्फुरति परिमलोऽसौ स्पर्श एव स्तनानाम् ।

इति हतपरमार्थैरिन्द्रियैर्भ्राम्यमाणः

स्वहितकरणधूर्तैः पंचभिर्वचितोऽस्मि ।। 85

अर्थात् स्त्रियों के मधुर गायन, कामलीला को आमन्त्रण देती आँखें, अमृत से भरे अधर, बदन से फूटती चंदन-केसर की मादक गंध, रोमांचित करने वाले स्तन-ये सब मेरी पंचेन्द्रियों को विकृत कर मेरी साधना की हत्यारी हैं, इन मादक अंगों में भटक जाने के कारण मैं लुट-पिट गया हूँ।

(ii) कामदेव का मायाजाल

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता

साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः ।

अस्मत्कृते च परिशुष्यति काचिदन्या

धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ।।89

अर्थात् कामदेव की कैसी लीला है कि मैं जिसे चाहता हूँ, वह किसी और पर आसक्त है और वह जिस पर आसक्त है, वह किसी अन्य की चाहत रखता है और वह जिस पर आसक्त है, वह बाँहे पसारे मुझे आलिंगन को आमन्त्रित कर रही है। ऐसे कामदेव को तो धिक्कार है, इनको धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार है।

सज्जनता—विवेकशीलता कब तक बरकरार रहती है —

तावन्महत्त्वं पाण्डित्यं कुलीनत्वं विवेकता ।

यावज्ज्वलति नाङ्गेषु हतः पंचेषु पावकः ।।61

पाण्डित्य अर्थात् सज्जनता, कुलीनता, विवेकशीलता का महत्त्व तब तक हृदय में रहता है, जब तक हृदय में पापी कामदेव की ज्वाला नहीं धधक उठती है। कामदेव के बाणों से आहत हो जाने के पश्चात् ये सब नष्ट हो जाते हैं।

कामवासना का प्रभाव मिरगी के रोग जैसा —

न गम्यो मन्त्राणां न च भवति भैषज्यविषयो

न चापि प्रध्वंसं व्रजति विविधैः शान्तिकशतैः ।

भ्रमावेशादङ्गे किमपि विदधद्भङ्गमसकृत्

स्मरायस्मारोऽयं भ्रमयति दृशं घूर्णयति च ।।87

अर्थात् कामवासना रूपी रोग न तो तन्त्र—मन्त्र से ठीक होता है, न ही इसकी कोई औषधि है, न हि शान्ति पाठादि दैविक उपाय करने से इसका समूल नाश हो पाता है। शरीर को तोड़—मरोड़कर नष्ट कर देने वाले, आँखों को घुमा देने वाले, भ्रमित कर देने वाले, इस कामवासना रूपी रोग के समस्त लक्षण मिरगी रोग जैसे हैं।

(ii) वेश्या रूपी ज्वाला

कामवासना पर जिनका नियन्त्रण नहीं रहता तथा एकपत्नीव्रत धर्म से विमुख लोगों का वेश्याएँ लाभ उठाती हैं —

वेश्यासौ मदनज्वाला रुपेन्धनसमेधिता ।

कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ।।92

अर्थात् वेश्या वासनारूपी ऐसी ज्वाला है, जो कामी पुरुषों के रंग—रूप यौवन और धन की आहुतियों से तृप्त होती हैं।

कवि भर्तृहरि ने वेश्याओं को पीकदानतुल्य कहा है —

कश्चुम्बति कुलपुरुषो वेश्याधरपल्लवं मनोज्ञमपि ।

चारभटचौरचेटकवितनटनिष्ठीवनशरावम् ।।90

अर्थात् यत्र तत्र भ्रमण करने वाले राजकर्मचारी, चोर—उचक्के, वेश्याओं के दलाल, नीच, नट और जार आदि जिसमें थूककर चले जाते हों, ऐसी पीकदान जैसी वेश्याओं के समान सुन्दर स्त्री के होंठ चाहे कितने भी रसीले क्यों न हों, तब भी कोई विवेकशील व्यक्ति उसे चूमना नहीं चाहेगा।

(iv) स्त्रियों का मादकचित्रण कवियों की कल्पना

वैसे तो भर्तृहरि ने शृंगार शतक में कामिनीयों का चित्रण अत्यन्त शृंगार रस प्रधान किया है और अनेक उपमाएँ देकर ऐसे श्लोकों की रचना की है जो अश्लील कहे जा सकते हैं, लेकिन भर्तृहरि ने शृंगार शतक में ही यह स्पष्ट कर दिया है ये सभी उपमाएँ कवियों की कल्पनाएँ हैं, सत्य नहीं हैं —

सत्यत्वे न शशाङ्क एव वदनीभूतो न चेन्दीवर

द्वन्द्वं लोचनतां गतं न कनकैरप्यङ्गयष्टिः कृता ।।

किन्त्वेवं कविभिः प्रतारितमनस्तत्त्वं विजानन्नपि

त्वङ्मांसास्थिमयं वपुर्मृगदृशां मन्दो जनः सेवते ।।76

अर्थात् न तो चाँद प्रत्यक्ष में आकर किसी सुन्दरी का मुखड़ा बना, न ही कमलों ने नेत्रों का स्थान लिया और न ही उसकी देह स्वर्ण नामक धातु से बनी, फिर भी कवियों के बहकावे

में आकर साधारण बुद्धि के लोग यह जानते हुए भी कि वह हाड़ मांस और रक्त से बनी है, उसी से चिपटे रहते हैं और भोगकर सुख मानते हैं।

कामिनियों की अदाएँ, उनकी स्वाभाविक क्रियाएँ हैं —

लीलावतीनां सहजा विलासास्त एव मूढस्य हृदि स्फुरन्ति ।

रागो नलिन्या हि निसर्गसिद्धस्तत्र भ्रमत्येव वृथा षडङ्घ्रिः ॥74

अर्थात् तरुणियों का मुस्कराना और नयन मटकाकर बातें करना ये स्वाभाविक क्रियाएँ हैं। मूर्ख समझते हैं कि वे उन्हें ही देखकर ऐसा कर रही हैं। कमल पुष्प स्वाभाविक रूप से रक्तिम होता है और मूर्ख भौंरा समझता है कि वह उसे देखकर लज्जा से लाल हुआ है।

(v) सच्चा प्रेम

भर्तृहरि ने शृंगार शतक के अन्त में यह स्पष्ट कर दिया है कि सच्चा प्रेम तभी होता है, जब दोनों के मन मिले हों, फिर चाहे संयोग हो या वियोग —

विरहेऽपि संगमः खलु परस्परं संगतं मनो येषाम् ।

हृदयमपि विघटितं चेत्सङ्गी विरहं विशेषयति ॥99

अर्थात् जिनके मन आपस में मिले हों, वे जुदा होकर भी साथ-साथ रहते हैं और जिनसे मन न मिले हों, वे साथ-साथ रहने पर भी जुदा रहते हैं।

3. भर्तृहरि का वैराग्य शतक

इस शतक में कवि ने जीवन की सत्यता दिखाने का सफल प्रयास किया है —

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ॥

कालो न यातो वयमेव याताः तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ॥12

अर्थात् भोगों को हमने नहीं भोगा, बल्कि भोगों ने ही हमें भोग लिया, हमने तप को नहीं तपा, बल्कि तपों ने हमें तपा लिया। काल नहीं बीता, अपितु हम ही बीत गए। तृष्णा बूढ़ी नहीं हुई, बल्कि हम ही बूढ़े हो गए।

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं

तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः ।

शेषं व्याधिवियोगदुःख सहितंसेवादिभिर्नीयते

जीवे वारितरंगचंचलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ।।85

अर्थात् पुराणों और श्रुतियों में मनुष्य की आयु सौ वर्ष मानी गई है, उसमें से आधी उम्र तो रात को सोने में गुजर जाती है, बाकी में से एक भाग बचपन में और एक भाग बुढ़ापे में गुजर जाता है। शेष जो एक भाग बचता है वह रोग, वियोग, पराई चाकरी, शोक और हानि और क्लेशों में बीत जाता है। जल की तरंग जैसे चंचल जीवन में सुख कहाँ है?

इसलिए —

यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावच्च दूरे जरा

यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।

आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यं प्रयत्नो महान्

संदीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ।। 70

जब तक यह देह स्वस्थ है, जब तब बुढ़ापा दूर है, इन्द्रियाँ भी सही ढंग से कार्य कर रही हैं और आयु भी नहीं ढली। ज्ञानी व समझदार व्यक्ति को चाहिए कि इस काल में अपनी भलाई का साधन करें। घर में आग लगने पर कुआँ खोदने चलें तो क्या लाभ ?

सबसे पहले मन को इस तरह समझाओ —

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा

प्रसादं किं नेतुं विशसि हृदयक्लेशकलितम् ।

प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वयमुदितचिन्तामणिगणो

विविक्तः सङ्कल्पः किमभिलषितं पुष्यति न ते ।। 30

हे मन् तू दिन—प्रतिदिन दूसरे के दिल को अनेक प्रकार से प्रसन्न करने का प्रयास क्यों कर रहा है? अपने भीतर झांकने की कोशिश क्यों नहीं करता? जब तू अन्तर्मुखी होकर

अपने में स्थित रहेगा तो बिना प्रयत्न के ही सभी अभीष्टों को देने वाले परमात्मा का स्वयं तेरे हृदय में प्रगाट्य होगा तो क्या उस समय वह तेरी अभिलाषा पूर्ण नहीं कर सकेगा?

जब हमारा मन वैरागी हो जाएगा तो हर वस्तु में सन्तुष्टि पाएगा —

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः

सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः ।

स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला

मनसि च परितुष्टे कोर्थवान् को दरिद्रः ॥ 48

हे राजन! हम वृक्ष की छाल के वस्त्र धारण करके सन्तुष्ट हैं, तुम रेशमी तथा कीमती वस्त्र धारण करके सन्तुष्ट हो। सन्तोष तो हम दोनों का बराबर का है? इसमें विशेष क्या है? अर्थात् कुछ नहीं, परन्तु जिसकी बड़ी-बड़ी इच्छाएँ हैं, वह धनी होकर भी दरिद्र होगा और जिसका मन तृप्त होगा, वह दरिद्र होकर भी धनी कहलाएगा। अब आप ही बताओ, हममें से कौन धनी है और कौन निर्धन?

इस प्रकार भर्तृहरि के इन शतकों में प्रांजल, ललित और प्रवाहपूर्ण काव्यशैली मिलती है। अपनी अनुभूतियों को कवि ने कलात्मक रीति से प्रस्तुत किया है। भाव और भाषा का मनोहर सामंजस्य कवि की लोकप्रियता का कारण है। इनके अनेक पद्य और वाक्यांश लोकोक्तियों के रूप में प्रचलित हैं। कोई व्यक्ति इन शतकों में सम्पूर्ण जीवन दर्शन की झलक ले सकता है तथा शान्ति-सन्तोष एवं शक्ति सम्पन्न जीवन बिता सकता है। आदर्शवाद को अनुप्राणित करने वाले भर्तृहरि वस्तुतः संस्कृत साहित्य एवं भारतीय जीवन-दर्शन के अनुपम रत्न हैं।

अमरुशतक

इस शतक के रचयिता अमरु या अमरुक नाम के राजा माने जाते हैं। यह प्रसिद्ध है कि मण्डनमिश्र की पत्नी शारदा के कामशास्त्रविषयक प्रश्नों का उत्तर देने के लिए स्वयं शंकराचार्य मृत राजा अमरुक के शरीर में प्रवेश कर गए थे। उन्होंने ही इस शतक की रचना

कर डाली। इस शतक का सर्वप्रथम उल्लेख आनन्दवर्धन (850 ई.) ने किया था। इससे स्पष्ट है कि इसकी रचना आठवीं शताब्दी के लगभग हो चुकी थी।

इस शतक में 100—150 श्लोक प्राप्त होते हैं। सम्भवतः बाद के कुछ कवियों ने अपने श्लोक भी इसमें जोड़ दिए हों, जिससे यह शतक डेढ़ शतक के लगभग बन गया। इसमें शृंगामय श्लोकों का संग्रह है। प्रियतम के दूर चले जाने पर मानवती नायिका के अनुराग और विरह वेदना का चित्रण कवि ने अत्यन्त स्वाभाविक ढंग से किया है, परन्तु उनका वह मान प्रियतम के लौट आने पर तुरन्त ही समाप्त हो जाता है और वह उत्सुकता और हर्ष में मिलने के लिए बेचैन हो उठती है।

नायिकाओं की विविध अवस्थाओं का इसके पद्यों में भावपूर्ण वर्णन है। निम्नांकित पद्य में रूठी हुई प्रौढ़ाधीरा नायिका को उसकी सहेली मान त्याग का उपदेश दे रही है —

लिखन्नास्ते भूमिं बहिरवनतः प्राणदयितो

निराहाराः सख्यः सततरुदितोच्छूननयनाः ।

परित्यक्तं सर्वं हसितपठितं पंजरशुकै

स्तवावस्था चेयं विसृज कठिने! मानमधुना ॥ 7

अर्थात् तुम्हारा प्राणप्रिय (पति) घर के बाहर सिर झुकाए हुए बहुत देर से जमीन कुरेदता हुआ बैठा है, भीतर सखियों ने खाना—पीना छोड़ रखा है, उनकी आँखें लगातार रोते रहने से सूज गयी हैं, अब तो पिंजरे के सुग्गों (तोतों) ने भी हँसना और पढ़ना छोड़ दिया है, तुम्हारी अपनी दशा भी ऐसी हो गयी है, अरी कठोर हृदयशाली, अब तो अपना मान (रूठना) छोड़ दे।

संभोग शृंगार का मर्यादित निरूपण इस पद्य में है, जिसे नई किन्तु चतुर वधू के सन्दर्भ में दिया गया है —

दम्पत्योर्निशि जल्पतोर्गृहशुकेनाकर्णितं यद् वचः

तत्प्रातर्गुरुसंनिधौ निगदतः श्रुत्वैव तारं वधूः ।

कर्णालम्बितपद्मरागशकलं विन्यस्य चञ्चाः पुरो

ग्रीडार्ता प्रकरोति दाडिमफलव्याजेन वाग्बन्धनम् ।।16

अर्थात् रात को पति-पत्नी जो रस चर्चा करते रहे थे, उसे घर के सुग्गे (तोता) ने सुन लिया था। जब उस सुग्गे ने प्रातःकाल गुरुजनों के समीप ऊँचे स्वर में उसे दुहराना आरम्भ किया तो बहु ने लज्जित होकर उसकी चोंच में अपने कान में लटके हुए पद्मरागमणि के टुकड़े को अनार के दाने के बहाने डाल दिया, जिससे सुग्गे का मुँह बन्द हो जाए।

प्रश्नोत्तर के रूप में निम्नांकित पद्य में मध्या धीरा नायिका के उत्तर अपने उस प्रियतम के प्रश्नों के लिए दिए गए हैं, जो उसे मनाने का प्रयास धैर्यपूर्वक कर रहा है –

बाले, नाथ, विमुंच मानिनि रुषं रोषान्मया किं कृतं
खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति भवान् स्वेऽपराधा मयि
तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा, कस्याग्रतो रुद्यते
नन्वेतन्मम, का तवास्मि, दयिता, नास्मीत्यतो रुद्यते ।।57

हे प्रिये, हाँ नाथ, मानिनि तुम क्रोध छोड़ दो, क्रोध करके मैं कर ही क्या सकी? मेरे हृदय में खेद तो उत्पन्न किया, आपका तो इसमें कोई अपराध नहीं है, सारे अपराध तो मेरे ही हैं, तब तुम सिसक-सिसक कर क्यों रो रही हो? मैं किसके सामने रो रही हूँ? मेरे ही सामने, मैं आपकी होती कौन हूँ? प्राणप्रिया हो, यही तो मैं नहीं हूँ, इसलिए रो रही हूँ।

अमरु की भाषा सरल है। भावों के अनुकूल प्रचलित शब्दों का प्रयोग तथा समास रहित मधुर पदावली की संयोजना अत्यन्त आकर्षण को उत्पन्न करते हैं। कवि ने यद्यपि अनेक छन्दों का प्रयोग किया है, परन्तु शार्दूलविक्रीडितम् उनका प्रिय छन्द है। इस शतक पर प्रायः 14 टीकाएं प्राप्त हुई हैं जिनमें अर्जुनवर्मदेव की टीका प्राचीनतम और श्रेष्ठ है। ये टीकाकार मालवनरेश भोज के वंशज थे। संस्कृत काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में इसके पद्य विपुल रूप से उद्धृत हैं – विशेष रूप से काव्य भेद, नायिका भेद और अलंकारों के उदाहरणों के रूप में।

भल्लटशतक

कश्मीरी कवि भल्लट की रचना 'भल्लटशतक' अन्योक्तिपूर्ण नीतिमूलक पद्यों का संग्रह है। इनके पद्यों का उद्धरण सर्वप्रथम आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक में मिलता है। पुनः क्षेमेन्द्र,

अभिनवगुप्त और मम्मट ने भी इनके उद्धरण दिए हैं। अतः भल्लट का समय नवम शताब्दी ई. का उत्तरार्द्ध और दशम शताब्दी का प्रथम चरण माना जा सकता है।

भल्लटशतक में अन्योक्ति का आधार लेकर तत्कालीन समाज के उच्च वर्ग के अयोग्य व्यक्तियों पर व्यंग्य किया गया है, जो सरल शैली में होने के कारण सुबोध और हृदयावर्जक है, जैसे –

पातः पूष्णो भवति महंते नोपतापाय यस्मात्।

कालेनास्तं क इह न ययुर्यान्ति यास्यन्ति चान्ये ।

एतावत्तु व्यथयतितरां लोकबाह्यैस्तमोभि

स्तस्मिन्नेव प्रकृतिमहति व्योम्नि लब्धोऽवकाशः ॥

अर्थात् सूर्य का अस्त होना बड़े ही कष्ट की बात है, क्योंकि काल आने पर कौन इस संसार से नहीं गया है? दूसरे भी जा रहे हैं, भविष्य में भी जाएंगे। किन्तु दुःख तो इस बात का है कि सूर्य के जाते ही इस लोक से बाहर के अन्धकारों ने विशाल आकाश पर अधिकार जमा लिया। (कवि ने अवन्तिवर्मा का महनीय राज्यकाल देखा था, किन्तु अब क्षुद्र लोगों के हाथों में सत्ता आ गई थी। इसी का वर्णन यहाँ किया गया है।)

इसमें कहीं-कहीं शृंगारपूर्ण पद्य भी हैं, जैसे वर्षा ऋतु में किसी विरहिणी के द्वारा विद्युत को दिया गया यह उपालम्भ –

वाता वान्तु कदम्बरेणुशबला नृत्यन्तु सर्पद्विषः

सोत्साहा नववारिभारगुरवो मुंचन्तु नादं घनाः ॥

मग्नां कान्तवियोगदुःखदहने मां वीक्ष्य दीनाननां

विद्युत! किं स्फुरसि त्वमप्यकरुणे स्त्रीत्वेऽपि तुल्ये सति ॥97

अर्थात् कदम्ब के पराग से मिले हुए पवन भले ही चलें, साँपों के शत्रु मोर भी नाचा करें और नये जल के भार से भारी-भरकम उत्साही मेघ भी गर्जन करते रहें, परन्तु हे निष्ठुर बिजली! अपने प्रियतम के वियोग की दुःखाग्नि में जलती हुई म्लानमुखी मुझे देखकर, समान

नारी—रूप होने पर भी, तुम चमककर मुझे क्यों चिढ़ा रही हो? विजातीय लोगों का चिढ़ाना सह्य है किन्तु सजातीय भी चिढ़ाये यह कैसे सहन हो सकता है?

घटर्कपर काव्य

यह कुल 22 पद्यों का काव्य है अन्त्यानुप्रासयुक्त ललित पदावली से युक्त इस काव्य में एक युवति की विरह वेदना का वर्णन है। उसका पति प्रवास में है। पति के पास वह अपना सन्देश मेघ के द्वारा भेजती है। इस ग्रन्थ का कथानक मेघदूत से उल्टा है। इसकी आठ टीकाएँ मिलती हैं, जिनसे इसकी क्लिष्टता तथा प्रसिद्धि का परिचय मिलता है। इसके लेखक का नाम अज्ञात है, किन्तु इसके शीर्षक का नाम इसका अन्तिम पद्य है, जिसमें लेखक का कथन है कि जो कवि मुझे यमक अलंकार के प्रयोग में जीत लेगा, उसके लिए वह घड़े के टुकड़े (घट कर्पर) में जल ले आएगा —

भावानुरक्त वनिता सुरतैः शपेय —

मालम्ब्य चाम्बुतृषितः करकोशपेयम् ।

जीयेम येन कविना यमकैः परेण

तस्मै वहेयमुदकं घटकर्परेण ।।22

घटकर्पर का नाम विक्रमादित्य के नवरत्नों में लिया गया है। संभव है, काव्य के लेखक का कोई अन्य नाम हो, जो उक्त पद्य के कारण 'घट कर्पर' के रूप में प्रसिद्ध हो गए और उसे ही नवरत्न की परम्परा में रखा गया।

पण्डितराज जगन्नाथ

महान् काव्यशास्त्री और संस्कृत भाषा के उत्कृष्ट कवि पण्डितराज जगन्नाथ 17वीं शताब्दी ई. के सर्वाधिक चर्चित साहित्यकार हैं। ये आन्ध्रप्रदेश के तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम पेरु भट्ट और माता का नाम लक्ष्मी था। जगन्नाथ ने अपने सर्वविद्याकुशल पिता से ही शास्त्रों का अध्ययन किया था। मुगल नरेश शाहजहाँ ने अपने बड़े पुत्र दाराशिकोह को

संस्कृत शिक्षा के लिए इन्हें नियुक्त किया तथा पण्डितराज की उपाधि दी। यद्यपि ये क्रमशः कई राजाओं के आश्रय में रहे थे — जहाँगीर, उदयपुर के राणा जगत सिंह, कामरूपेश्वर प्राणनारायण और शाहजहाँ, किन्तु इनका अधिक समय शाहजहाँ के दरबार में ही बीता। संस्कृत के प्रौढ़ ग्रन्थों और स्तोत्रकाव्यों के अतिरिक्त अपने आश्रयदाता नरेशों की भी इन्होंने प्रशस्तियाँ लिखीं। इनका जीवन काल 1590 ई. से 1670 ई. तक माना गया है।

इनकी रचनाओं के कई वर्ग हैं —

- क) काव्यशास्त्रीय — रसगंगाधर, चित्रमीमांसा खण्डन
- ख) स्तोत्र— गंगालहरी, अमृतलहरी, लक्ष्मीलहरी, करुणा लहरी
- ग) व्याकरण — प्रौढ़मनोरमाखण्डन
- घ) मुक्तक संग्रह — भामिनी विलास
- ङ) प्रशस्तिकाव्य — आसफविलास, प्राणाभरण, जगदाभरण

संस्कृत साहित्य में प्रौढ़ समीक्षा तथा उत्तमकाव्य रचना की दृष्टि से पण्डित राज जगन्नाथ अमर हैं। इनके कवित्व के विषय में एक प्रशस्ति है —

कवयति पण्डितराजे कवयन्त्यन्येऽपि विद्वांसः।

नृत्यति पिनाकपाणौ नृत्यन्त्यन्ये भूतवेतालाः॥

अर्थात् पण्डितराज के समक्ष अन्य कवियों का कवित्व प्रकट करना वैसा ही है, जैसे नटराज शिव के समक्ष भूत-वेतालों का नृत्य करना।

भामिनीविलास

यह ग्रन्थ पण्डितराज जगन्नाथ के स्फुट (मुक्तक) पद्यों का संग्रह है, जिसे कवि ने अपने पद्यरत्नों की रक्षा के लिए मंजूषा के रूप में रचा। इसके चार भाग (विलास) हैं — अन्योक्ति या प्रास्ताविक, शृंगार, करुणा तथा शान्त विलास। इस ग्रन्थ के विविध संस्करणों में पद्यों की भिन्नता है। भामिनीविलास के प्रथम भाग अन्योक्तिविलास में सिंह, हंस, कमल,

मधुकर, चंदन, मेघ, समुद्र आदि 34 पदार्थों को लेकर सुन्दर तथा भावपूर्ण अन्योक्तियाँ दी गई हैं। निम्नलिखित पद्य में कोकिल की अन्योक्ति के रूप में धैर्य का उपदेश है –

तावत्कोकिल विरसान् यापय दिवसान् वनान्तरे निवसन् ।

यावन्मिलदलिमालः कोऽपि रसालः समुल्लसति ।।

हे कोकिल! इसी वन के अन्दर धैर्यपूर्वक रहकर अपने दैन्यमय (दीनतापूर्ण) दिनों को तुम तब तक बिताओ, जब तक कि भ्रमर समूह से घिरा कोई रसालवृक्ष मंजरियों से भर न जाये।

शृंगार विलास में शृंगार के सम्भोग तथा विप्रलम्भ दोनों पक्षों का मार्मिक वर्णन हैं इसमें जगन्नाथ के 'भामिनि' शब्द का उल्लेख प्रथम पद्य में ही है –

उपचीयत एव कापि शोभा, परितो भामिनि ते मुखस्य नित्यम् ।

कुछ लोगों ने कवि की पत्नी का नाम भामिनी माना है। निम्न पद्य में प्रियतमा के दुर्वार आकर्षण का निरूपण कवि करता है, जिसे दर्शन का गम्भीर अध्ययन भी हटा नहीं पाता –

उपनिषदः परिपीता गीतापि च हन्त मतिपथं नीता ।

तदपि न हा विधुवदना मानससदनाद्बहिर्याति ।। 2.38

इसमें विशेषोक्ति अलंकार का सुन्दर प्रयोग है। करुणविलास में कवि ने प्रियतमा के दिवंगत होने की दशा में जगत् की करुणस्थिति का चित्रण किया है। अनुमान होता है कि ये भाव कवि के अपने जीवन से सम्बद्ध हैं। निम्न पद्य में कवि ने अपनी कविता से प्रियतमा की तुलना की है –

निर्दूषणा गुणवती रसभावपूर्णा

सालङ्कृतिः श्रवणकोमलवर्णराजिः ।

सा मामकीनकवितेव मनोऽभिरामा

रामा कदापि हृदयान्मम नापयाति ।। 3.6

इस विलास में कवि की कारुणिक दशा मार्मिक रूप से प्रकट हुई है – गीत आदि सारे विषय विस्मृत हो गए, विद्याएँ भी विमुख हो गयीं, केवल वह हरिणाक्षी ही हृदय से निकल

नहीं रही (3.3) हे सुन्दरि, तुम्हारे जो विलास मेरे मन में काव्य बनकर प्रकट होते हैं, उनके अभाव में अब मनोहारिणी कविता कैसे निकलेगी?

शान्तविलास भक्ति प्रधान खण्डकाव्य है, जिसमें मुख्यतः भगवान् कृष्ण के प्रति कवि के भावपूर्ण मनोरम पद्य हैं। कृष्ण के मुखचन्द्र के प्रति अपने मन को चकोर बनाने की कामना प्रथम पद्य में की गई है —

विशालविषयावलीमलयलग्नदावानल

प्रसृत्वर शिखावली विकलितं मदीयं मनः ।

अमन्दमिलदिन्दिरे निखिलमाधुरीमन्दिरे

मुकुन्दमुखचन्दिरे चिरमिदं चकोरायताम् ॥ 4.1

अपनी भक्ति के निष्कर्ष के रूप में वे कहते हैं कि सभी योनियों में भ्रमण करते हुए नाना विषयों का सेवन करने पर भी 'कृष्ण' इन दो अक्षरों में जो माधुर्य मिला, वह कहीं सुलभ नहीं था। अपने रसगंगाधर में जिस उत्तमोत्तम काव्य का निर्देश कवि ने किया है, उसका उदाहरण भामिनीविलास के प्रत्येक पद्य में प्राप्त होता है। सभी पद्य ऊपर से अनुप्रास युक्त पद लालित्य से भरे हैं, उनका अर्थगत चमत्कार और व्यंजना तो अतिरिक्त वैशिष्ट्य है।

(ख) स्तोत्र काव्य

भक्तिभाव में लीन होकर किसी एक इष्टदेव की स्तुति में लिखे गए गीतिकाव्य स्तोत्र काव्य कहलाते हैं। भक्त अपने पूज्य देवता अथवा तत्संबंधी तीर्थ स्थान का गुणगान करते हुए भक्ति में तल्लीन होकर जो कुछ गाता है, वही स्तोत्र बन जाता है। ऋग्वेद के समय से स्तोत्र काव्य की परम्परा चली आ रही है। वैदिक ऋषियों ने एक देव की स्तुति में भावविभोर होकर जो सूक्त रचे, वे भी स्तोत्र काव्य के प्रारम्भिक रूप कहे जा सकते हैं।

इनमें प्रमुख स्तोत्र 'स्तोत्र संग्रह' के रूप में प्राप्त होते हैं। इनमें प्रमुख पुष्पदन्त कवि का शिवमहिम्नः स्तोत्र है। इसमें शिव की महिमा शिखरिणी छन्द में प्रस्तुत की गई है। इसी प्रकार रावण के नाम से प्रसिद्ध पंचचामर छन्द में आबद्ध शिवताण्डवस्तोत्र अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसी प्रकार बाणभट्ट ने स्वयं चण्डी देवी की स्तुति में चण्डीशतक की रचना की, तो उसी के

समकालीन मयूर भट्ट ने सूर्यशतक नामक श्लोक समूह सूर्य की स्तुति करते हुए बनाया। दोनों के ही काव्यों में स्रग्धरा छन्द का प्रयोग किया गया है। प्रसिद्ध दार्शनिक, वेदान्त के प्रवर्तक शंकराचार्य स्वयं भक्त भी थे, उन्होंने भजगोविन्दम् और सौन्दर्यलहरी नाम के दो स्तोत्रों की रचना की। ये अपने भाव प्राचुर्य, सतत प्रवाह और संगीतमयता के कारण भक्तजनों में अत्यन्त प्रिय हैं। पण्डितराज जगन्नाथ द्वारा भी विविध स्तोत्र काव्यों की रचना की गई।

3. पुष्पदन्त का शिवमहिम्नः स्तोत्र

मुख्यतः शिखरिणी छन्द में रचित भगवान शिव की महिमा का वर्णन करने वाला यह स्तोत्र शिवभक्तों के बीच बहुत ही लोकप्रिय है। वर्तमान प्रति में यद्यपि 40 पद्य मिलते हैं, किन्तु इसके व्याख्याकार मधुसूदन सरस्वती (16वीं शताब्दी ई. के प्रसिद्धवेदान्ती विद्वान्) ने केवल आदिम 32 पद्यों पर ही टीका की है। नर्मदा तट पर स्थित अमरेश्वर महादेव के मन्दिर की दीवार पर इसके 31 पद्य ही उत्कीर्ण हैं, इस अभिलेख का काल 1063 है। स्पष्टतः यही इसका मूल पाठ है।

इसमें दार्शनिक उत्कर्ष के साथ शिव की पौराणिक गाथाओं का भी समावेश है। अनेक शास्त्रों के अन्तिम लक्ष्य शिव हैं, इसे निम्न पद्य में दिखाया गया है —

त्रयी साङ्ख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति

प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां

नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

इसके लेखक पुष्पदन्त कश्मीरी कवि थे, जिनका आवीर्भाव काल 9वीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है, यद्यपि कुछ लोग इन्हें 400 ई. का भी स्वीकार करते हैं।

2. रावणकृत शिवताण्डवस्तोत्र

पुरातन मान्यता है कि शिवभक्त रावण ने कैलाश पर्वत ही उठा लिया था और जब पूरे पर्वत को ही लंका ले जाने को उद्यत हुआ, उस समय वह अपनी शक्ति पर पूर्ण अहंकार भाव

में था। महादेव को उसका यह अहंकार पसंद नहीं आया तो भगवान् शिव ने अपने पैर के अंगूठे से तनिक—सा जो दबाया तो कैलाश वहीं अवस्थित हो गया। शिव के अनन्य भक्त रावण का हाथ दब गया और वह आर्त्तनाद कर उठा — ‘शंकर, शंकर ...’ अर्थात् क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए और स्तुति करने लग गया, जो कालान्तर में शिव ताण्डवस्तोत्र कहलाया।

इस स्तोत्र की भाषा अनुपम और जटिल है। यह पंचचामर छन्द में आबद्ध है। इसकी अनुप्रास और समासबहुल भाषा संगीतमय ध्वनि और प्रवाह के कारण यह स्तोत्र काव्य, शिवभक्तों में प्रचलित और अत्यन्त लोकप्रिय है।

जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले

गलेऽवलम्ब्य लम्बितां भुजङ्गतुङ्गमालिकाम्।

डमड्डमड्डमड्डमनिनादवड्डमर्वयं

चकार चण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम् ।।1

3. मयूरभट्ट का सूर्यशतक

सातवीं शताब्दी ई. के पूर्वार्ध में आविर्भूत तथा बाणभट्ट के निकट संबंधी मयूरभट्ट के विषय में किंवदन्ती है (जिसे मम्मट ने समर्थन दिया है) कि सूर्य की महिमा 100 पद्यों में वर्णन करके इन्होंने अपने असाध्य रोग का निवारण किया था। यह स्तुति स्रग्धरा छन्द में अपनी ओजस्विता के कारण प्रसिद्ध है। इस छन्द का प्रथम स्तोत्र काव्य यही है। अनुप्रास युक्त पदावली में कवि ने सूर्य के विभिन्न अंगों और साधनों का वर्णन किया है। इसका आरम्भ इस प्रकार हुआ है —

जम्भारातीभकुम्भोद्भवमिव दधतःसान्द्रसिन्दूररेणुं

रक्ताः सिक्ता इवौघैरुदयगिरितटीधातुधाराद्रवस्य।

आयान्त्या तुल्यकालं कमलवनरुचेवारुणा वो विभूत्यै

भूयासुर्भासयन्तो भुवनमभिनवा भानवो भानवीयाः ।।1

4. बाणभट्ट का चण्डीशतक

बाणभट्ट ने मयूरभट्ट की शैली में ही भगवती दुर्गा की स्तुति 'चण्डीशतक' में की है। इसमें भी स्रग्धरा छन्द के 100 पद्य हैं। अनुप्रासमय शब्द विन्यास, दीर्घ समास, क्लिष्ट श्लेष तथा जटिल वाक्य रचना दोनों शतकों में समान रूप से मिलती है। अपनी दीर्घता के कारण ये शतक भक्तों में लोकप्रिय नहीं हुए, किन्तु वाक्य के निकष के रूप में इन्हें पर्याप्त प्रसिद्धि मिली। कहा जाता है कि सूर्यशतक और चण्डीशतक की रचनाएँ कवियों द्वारा परस्पर शाप दिये जाने के कारण हुई थीं। जो भी हो, दोनों की समानता, समकालिकता तथा प्रतिस्पर्धी के रूप में शैली का प्रयोग इस किंवदन्ती का कारण होगा। चण्डीशतक का एक पद्य देखें, जिसमें अन्य साधनों के विफल होने पर देवी की अमोघ सहायता वर्णित है —

विद्राणे रुद्रवृन्दे सवितरि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रे
जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुति त्यक्तवैरे कुबेरे ।
वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुषं पौरुषोपघ्ननिघ्नं
निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी ।।

5. शंकराचार्य के स्तोत्र

अद्वैत वेदान्त के प्रवर्तक शंकराचार्य के नाम से संस्कृत में कई स्तोत्र मिलते हैं, जिनमें कुछ उनकी परम्परा के शंकराचार्यों के द्वारा लिखे गए।

कुछ ही स्तोत्र आदिशंकराचार्य के द्वारा रचित हैं, जैसे — शिवापराधक्षमापणस्तोत्र, देव्यपराधक्षमापणस्तोत्र, चर्पटपंजरिकास्तोत्र, आनन्दलहरी, अम्बाष्टक आदि। शंकराचार्य ने निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति के लिए सगुण ब्रह्म के अनेक रूपों (शिव, दुर्गा, गणेश, हनुमान् आदि) की स्तुतियाँ की हैं। इन स्तोत्रों की ललित पदावली, सरल शैली और गहन भक्ति महत्त्व रखती है। देवी के प्रति निम्नलिखित निवेदन शंकराचार्य की रचना का प्रतिनिधित्व करता है —

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः ।

परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः ।

मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे ।

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ।।

(देव्यपराधक्षमापणस्तोत्र, 3)

शंकराचार्य की 'चर्पटपंजरिका' में संसार के असार आकर्षणों से दूर रहकर गोविन्द के प्रति आसक्ति पर बल दिया गया है, इसे 'भज गोविन्दम्' भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें भक्ति और वैराग्य का महत्त्व दिखाया गया है —

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते ।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।

इह संसारे खलुदुस्तारे, कृपयापारे पाहि मुरारे ।। भज गोविन्दम् ।।

उनके वेदान्तविषयक स्तोत्र भी बहुत प्रसिद्ध हैं, जैसे — परब्रह्मस्तोत्रम्, निर्वाणषट्कम्, साधनपंचकम्, कौपीनपंचकम्, द्वादशपंजरिका इत्यादि ।

6. पण्डितराज जगन्नाथकृत् विविध स्तोत्र

पण्डितराज जगन्नाथ ने विभिन्न देव-देवियों की स्तुति अपनी लहरियों के द्वारा की है। लघुकाय होने पर भी ये लहरियाँ पण्डितराज की अद्भुत शैली एवं निश्छल हृदय की अभिव्यक्ति के कारण संस्कृत साहित्य में महत्त्व रखती हैं। उन्होंने कुल पाँच लहरियाँ लिखीं —

- (1) अमृतलहरी — यह दस पद्यों का गीतिकाव्य है जिसमें भगवती यमुना की स्तुति है।
- (2) सुधालहरी — इसमें भगवान् सूर्य की स्तुति स्रग्धरा छन्द के 30 पद्यों में है।
- (3) करुणा लहरी — इसमें शिखरिणी छन्द के 41 पद्यों में भगवती लक्ष्मी की स्तुति की गई है।
- (4) करुणा लहरी — यह विष्णु की स्तुति से सम्बद्ध, कवि की विनम्रता का परिचय देने वाली स्तुति है, जिसमें जगन्नाथ ने आर्तभाव से विष्णु को पुकारा है। इसके विविध संस्करणों में पद्य संख्या अलग-अलग है — 43 या 53 या 60

- (5) गंगालहरी – यह शिखरिणी छन्द के 52 पद्यों में भगवती गंगा की स्तुति है तथा संस्कृत जगत् में बहुत प्रसिद्ध है।

(ग) चम्पूकाव्य

प्रायः कथा साहित्य गद्य में लिखा जाता है और भावात्मक सरस काव्य पद्यमय श्लोकों में लिखा जाता है। कुछ कवियों ने गद्य और पद्य दोनों को मिलाकर काव्य की रचना प्रारम्भ की और इसे चम्पूकाव्य नाम दिया गया –

गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते। (साहित्यदर्पण 6.336)

अर्थात् गद्य-पद्य मिश्रित काव्य को चम्पू कहा जाता है।

कथा साहित्य में भी गद्य और पद्य को मिला दिया गया है, परन्तु उन कथाओं और चम्पू में कुछ मौलिक भिन्नताएँ हैं। चम्पू काव्य की एक विधा है। इसमें कवि अलंकृत शैली का प्रयोग करते हुए महाकाव्य अथवा गद्यकाव्य के समान यथोचित रस का परिपाक करता है। इसका उद्देश्य नीतिकथाओं के समान केवल नीति की शिक्षा देना नहीं होता। इसमें काव्यत्व मुख्य होता है। गद्यकाव्य का सा सौंदर्य और लालित्य होता है और महाकाव्य के समान अलंकार तथा व्यंजना से परिपूर्ण पद्य और श्लोक भी होते हैं। लोकथाओं के समान केवल चमत्कार प्रस्तुत करना ही इसका उद्देश्य नहीं होता। इस प्रकार चम्पू एक प्रकार का काव्य ही है, जिसमें गद्यकाव्य और पद्यकाव्य दोनों का सौन्दर्य होता है।

गद्यकाव्य के समान चम्पूकाव्य का विभाजन भी उच्छवासों में किया जाता है। नीचे कुछ महत्त्वपूर्ण चम्पूकाव्यों का परिचय दिया जा रहा है –

1. त्रिविक्रमभट्ट कृत चम्पूकाव्य

त्रिविक्रमभट्ट ने दो चम्पूकाव्यों की रचना की है – नलचम्पू और मदालसाचम्पू। इनकी रचना त्रिविक्रमभट्ट ने दसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में की। ये राष्ट्रकूट राजा इन्द्रराज की राजसभा में सम्मानित कवि थे।

मदालसाचम्पू — इस चम्पूकाव्य में कुवल्याश्व और मदालसा की प्रणय-कथा का वर्णन है। कुवल्याश्व का मदालसा से विवाह तो सम्पन्न हो गया किन्तु कुछ समय पश्चात् उनका वियोग हो गया। अन्त में मदालसा से पुनर्मिलन भी हो गया। यह रचना कथानक के विकास और रोचकता की दृष्टि से उत्तम होने के कारण लोकप्रिय रही है। यद्यपि कला की दृष्टि से यह चम्पूकाव्य इतना उत्कृष्ट नहीं है।

नलचम्पू — इसमें नल और दमयन्ती की कथा का वर्णन सात उच्छ्वासों में किया गया है। कोई-कोई विद्वान इसे 'नल दमयन्ती कथा' नाम भी देते हैं। यह ग्रन्थ अपूर्ण है, क्योंकि देवताओं का संवाद लेकर नल दमयन्ती के प्रासाद में पहुँचता है और दोनों परस्पर प्रेमासक्त हो जाते हैं — यहीं तक की कथा है, दोनों के विवाह तक की भी कथा नहीं है। इस चम्पूकाव्य में संभगश्लेष के सुन्दर प्रयोग हैं। मंगलाचरण के चतुर्थ पद्य में वाणी की तुलना गृहस्थ स्त्रियों से करते हुए श्लेष का सुमधुर प्रयोग किया है —

प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यो नानाश्लेषविचक्षणाः ।

भवन्ति कस्यचित्पुण्यैर्मुखे वाचो गृहे स्त्रियः ॥ नल. 1.4

कवि ने कहा है संभगश्लेष के प्रयोग से वाणी कुछ कठिन हो जाती है, किन्तु इससे उद्विग्न नहीं होना चाहिए, कवि किसी एक रस को लेकर नहीं चलता। रामायण की कथा की प्रशंसा में विरोधाभास का श्लेषानुप्राणित प्रयोग श्लाघ्य रूप से इन्होंने किया है —

सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला ।

नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा ॥ नल. 1.11

रामायण की कथा में खर और दूषण राक्षस तो हैं, किन्तु कथा में प्रखरता तथा दूषण नहीं हैं। इसी प्रकार श्लेष द्वारा कुकवियों की तुलना बालकों से की गई है —

अप्रगल्भाः पदन्यासे जननीरागहेतवः ।

सन्त्येके बहुलालापाः कवयो बालका इव ॥ नल. 1.6

कुकवि पदन्यास में अप्रगल्भ (अनिपुण) हैं, बालक पैरों को ठीक से नहीं रख पाते, कुकवि मनुष्यों में काव्य के प्रति वैराग्य उत्पन्न कर देते हैं, (जननीराग) तो बालक अपनी

जननी के राग (आकर्षण) के कारण हैं, कुकवि बहुत बकवास करते हैं। (बहुल आलाप) तो बालक बहुत लार पीते रहते हैं। (बहु + लाला + पाः) इसमें श्लेषोपमा का सुन्दर प्रयोग है।

नलचम्पू में श्लेष भी सरल और सहज हैं, भाषा-शैली की सरलता भी हृदयावर्जक है। कवि ने एक स्थल पर (6.1) प्रातः काल का वर्णन करते हुए रात्रि के काले अन्धकार और प्रातःकाल के प्रकाश की तुलना क्रमशः यमुना और गंगा के जल से की है, उदयगिरि दोनों का संगम स्थल है। इस उपमा के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर समीक्षकों ने त्रिविक्रम को 'यामुनत्रिविक्रम' की उपाधि दी थी –

उदयगिरिगतायां प्राक्प्रभापाण्डुताया –

मनुसरति निशीथे शृंगमस्ताचलस्य ।

जयति किमपि तेजः साम्प्रतं व्योम मध्ये

सलिलमिव विभिन्नं जाह्नवं यामुनं च ॥

2. सोमदेवकृत यशस्तिलकचम्पू

जैन कवि सोमदेवसूरि ने इस चम्पूकाव्य की रचना 959 ई. में की थी। इसके समकालिक पुष्पदन्त ने इसी विषय पर (राजा यशोधर के जीवनवृत्त पर) अपभ्रंश काव्य 'जसहरचरित' लिखा था। यशस्तिलक चम्पू में आठ उच्छ्वास हैं, जिनमें प्रथम पाँच में तो यशोधर के आठ जन्मों की कथाएँ हैं, शेष तीन में जैनधर्म के सामान्य उपदेश हैं। अवन्ति नरेश यशोधर की कथा के अनुसार वह अपनी कपटी रानी की गतिविधियों से अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं और अन्त में जैन धर्म को स्वीकार कर लेते हैं। कथानक की संयोजना सुन्दर है तथा उसे सुरुचिपूर्ण शैली में लिखा गया है। इसमें कवि के गहन अध्ययन, प्रकाण्ड पाण्डित्य, भाषा पर पूर्ण अधिकार और काव्यक्षेत्र में नवीन प्रयोग करने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। उदाहरणार्थ निम्न श्लोक में उनकी शैली की सुन्दरता के दर्शन होते हैं –

सरित्सरोवारिधिवापिकासु निमज्जनोन्मज्जनमात्रमेव

पुण्याय चेत्तर्हि जले चराणां स्वर्गः पुरास्यादितरेषु पश्चात् ॥

इसके अतिरिक्त सोमदेव ने अपनी रचना के प्रारम्भ में अपने पूर्ववर्ती अनेक कवियों के विषय में उपयोगी जानकारी दी है, यद्यपि आज उन कवियों की रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

3. हरिश्चन्द्रकृत जीवन्धर चम्पू

गुणभद्ररचित उत्तरपुराण (रचनाकाल 897 ई.) में वर्णित जीवन्धर कथा को हरिश्चन्द्र ने चम्पू के रूप में लिखा है। इस चम्पू पर माघ तथा वाक्पति का पुष्कल प्रभाव है। जैन धर्म के सिद्धान्तों को सरल रूप में रखने में कवि को यहाँ सफलता मिली है। भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से इसका प्रकाशन 1958 ई. में हुआ था।

4. भोजकृत रामायण चम्पू

धारा नरेश भोजदेव (1005—1054 ई.) ने रामायण की कथा पर आश्रित इस चम्पूकाव्य (रामायण चम्पू या चम्पूरामायण) को किष्किंधाकाण्ड तक लिखा था, लक्ष्मणसूरि ने युद्धकाण्ड तक तथा वेंकटराज ने इसमें उत्तरकाण्ड जोड़कर इसे पूरा किया। इस प्रकार यह रचना तीन कवियों के द्वारा पूर्ण हुई।

इसकी कथा का मूल आधार वाल्मीकि रामायण ही है। कथानक के अतिरिक्त भाव, भाषा, गुण—दोष इत्यादि पर भी वाल्मीकि का ही प्रभाव लक्षित होता है। यहाँ तक कि चम्पू की रचना करते हुए कवि ने गद्य की अपेक्षा पद्य का ही अधिक प्रयोग किया है। कवि ने कहीं माघ का अनुकरण किया है तो कहीं कालिदास का। इस प्रकार रामायणचम्पू में वाल्मीकि और कालिदास के अनुकरण पर प्रायः प्रसादगुणमय वैदर्भी रीति का ही प्रयोग है। कलापक्ष के कारण यह उत्कृष्ट चम्पू ग्रन्थों में मान्य है। इसके आरम्भ में वाल्मीकि की प्रशंसा की गई है —

मधुमयभणितीनां मार्गदर्शी महर्षिः।

5. सोड्डल कृत उदयसुन्दरी कथा

गद्य पद्यात्मक होने के कारण इसे चम्पू के अन्तर्गत रखते हैं अन्यथा यह बाणकृत

हर्षचरित के अनुकरण पर लिखी गई है। सोड्ढल कवि गुजरात के कायस्थ थे। इन्होंने गुजरात के शासक चालुक्यराज वत्सराज की प्रेरणा से यह कथा लिखी थी। वत्सराज का राज्यकाल 1026–1060 ई. है, अतः ये 11वीं शताब्दी के लेखक थे। 'उदय सुन्दरीकथा' आठ उच्छ्वासों में विभक्त है। इसमें नागराज कुमारी उदयसुन्दरी तथा प्रतिष्ठान के राजा मलयवाहन के विवाह का वर्णन है। बाण के अनुकरण पर पूर्वकवियों की प्रशस्ति के रूप में सोड्ढल ने भी 25 पद्य दिये हैं। बाण के विषय में इन्होंने लिखा है –

बाणस्य हर्षचरिते निशितामुदीक्ष्य ।

शक्तिं न केऽत्र कवितास्त्रमदं त्यजन्ति ।।

कवि ने इस ग्रन्थ में बाणभट्ट के हर्षचरित का अनुकरण किया है और बाण की शैली को अपनाया है। उदाहरणार्थ –

कमलिनी भुवनान्तरिते रवौ व्यपगतालिकलापशिरोरुहा ।

परिदधे विधवेव सुधाकर द्युतिवितानमिषेण सितांशुकम् ।।

6. अनन्तभट्ट का भारतचम्पू

पन्द्रहवीं शताब्दी में महाभारत की कथा को लेकर अनन्तभट्ट ने भारतचम्पू का निर्माण किया। बारह स्तबकों में महाभारत की कथा का विस्तार से वर्णन किया है। पुरातन और प्रसिद्ध होते हुए भी कवि ने कथानक को अपनी कल्पना और सरल वैदर्भी रीति के प्रयोग से अत्यन्त रोचक बना दिया है। घटनाओं का वर्णन इतना सुन्दर बन गया है कि पाठक का मन इसमें रम जाता है। कहीं-कहीं क्लिष्ट शैली का भी प्रयोग किया है। समग्र रूप में यह चम्पू संस्कृत काव्य जगत् में अत्यन्त प्रिय और प्रसिद्ध रहा है।

महाभारत आश्रित चम्पूकाव्यों में भारत चम्पू श्रेष्ठ रचना है। इसमें 12 स्तबक 1041 पद्य तथा 200 से अधिक गद्यखण्ड हैं। भावों के चित्रण में कवि के चमत्कारी पद्य का एक उदाहरण दिया जाता है –

कन्याकरं मृद्वति पादपद्मं पुष्पन्ति गात्रे पुलकांकुराणि ।

हरे हरे माधव माधवेति हरिस्मृतेरन्यथयां चकार ।। भारत. 3.68

सुभद्रा यतिवेशधारी अर्जुन के पैर दबाती है तो उनके शरीर में रोमांच हो रहे हैं। उस समय अर्जुन 'हरे-हरे' कहकर हरिस्मरण से रोमांच होने का भाव दिखाते हैं। इस प्रकार भावगोपन का सुन्दर प्रकार प्रकट किया गया है।

7. तिरुमलाम्बा की वरदाम्बिकापरिणय चम्पू

विजयनगर नरेश अच्युतराय (शासनकाल 1529-42 ई.) की रानी तिरुमलाम्बा ने अपने पति अच्युतराय तथा वरदाम्बिका के प्रणय तथा परिणय की कथा इस चम्पूकाव्य में वर्णित की है। लेखिका ने वरदाम्बिका के रूप में अपने आपको इसमें रखा है। इसमें पद्यों से अधिक गद्य खण्ड ही हैं। काव्य के आरम्भिक अंश में अच्युतराय के पिता राजा नृसिंह की दक्षिण विजय का विस्तृत वर्णन है। सिंहासनारूढ़ होने पर अच्युतराय ने कात्यायनी देवी के मन्दिर में एक लावण्यवती कन्या वरदाम्बिका को देखा तो वे उस पर मुग्ध हो गए और उसी से विवाह किया। इस लघुकाय कथानक को लेखिका ने कल्पना और प्रतिभा से पल्लवित किया है। वीर, शृंगार, अद्भुत आदि रसों के उद्भावन में लेखिका का कौशल श्लाघनीय है। संस्कृत में स्त्रियों के योगदान का इस चम्पू से परिचय मिलता है। यह ऐतिहासिक वृत्त पर आश्रित है। इसका विभाजन खण्डों में नहीं है, पूरा काव्य एक प्रकरणात्मक है।

8. कर्णपूर कृत आनन्दवृन्दावन चम्पू

यह चम्पूकाव्य भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन 22 स्तबकों में प्रस्तुत करता है। विस्तार तथा काव्यकला के प्रयोग में यह चम्पू काव्यों में अग्रणी है। कृष्ण की बाललीलाओं की अपेक्षा उनकी ललित क्रीड़ाओं का इसमें अधिक वर्णन है। होली, दोला और रास के उत्सवों का वर्णन इसके अन्तिम खण्डों में है। भागवत पुराण की भक्ति भावना का इसमें प्रकर्ष दिखाया गया है। राधा के अलंकरण में स्वयं वृन्दावन की चातुरी का वर्णन इस प्रकार है —

कचौघे पुन्नागं बकुलमुकुलानि भ्रमरके

ष्वशोकं सीमन्ते श्रवसि सहकारस्य कलिकाः ।

स्तनाग्रे वासन्तीकुसुमदलमालेति कुसुमैः

स्वयं वृन्दा राधां सपदि मुमुदेऽलंकृतवती ॥

कर्णपूर 'चैतन्य-सम्प्रदाय' में दीक्षित प्रतिभावान् भक्त कवि थे, जिन्होंने अपनी भक्ति, अनुभूति तथा प्रतिभा से समन्वित कल्पना का इसके पद-पद में निवेश किया है।

9. वेंकटाध्वरी के चम्पूकाव्य

कवि वेंकट का समय 1650 ई. के आसपास का माना जाता है। ये यज्वा या अध्वरि की उपाधि से विभूषित थे। ये रघुनाथ और सीताम्बरा के पुत्र थे। ये कांची (तमिलनाडु) के निवासी थे। इन्होंने नाटक, स्तोत्र तथा यादव राघवीय जैसा द्विसन्धान काव्य भी लिखा था। जनश्रुति है कि 1000 पद्यों का लक्ष्मीस्तोत्र इन्होंने एक ही रात में लिख डाला था। इनके चार चम्पूकाव्य मिलते हैं — विश्वगुणादर्शचम्पू, वरदाभ्युदयचम्पू, उत्तरचम्पू तथा श्रीनिवासविलास चम्पू। इनके अन्तिम चम्पू को इनकी रचना मानने में सन्देह किया गया है।

विश्वगुणादर्शचम्पू में दो गन्धर्वों की विमानयात्रा का वर्णन है। ये गन्धर्व हैं — विश्वावसु और कृशानु। इनमें विश्वावसु सभी विषयों में गुण देखता है, किन्तु कृशानु दोष पर ही ध्यान देता है। दोनों भारत के तीर्थों का भ्रमण करते हुए वाद-विवाद करते हैं। इस प्रकार संवाद शैली का इसमें सुन्दर प्रयोग है। उस युग की धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति की इसमें प्रखर आलोचना है। वैष्णव, वेदान्तियों पर भी तीक्ष्ण प्रहार किया गया है। पुरोहित, ज्योतिषी, संगीतज्ञ, वैद्य आदि की प्रभूत निन्दा की गई है। साहित्यिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से इसका महत्त्व है।

वरदाभ्युदय चम्पू कांची के देवता लक्ष्मी और नारायण के विवाह-वर्णन से सम्बद्ध है। इसमें गद्य का प्राचुर्य है। उत्तर चम्पू रामायण के उत्तरकाण्ड के विषयों का वर्णन करता है। यहाँ रावणचरित का वर्णन अधिक है। श्रीनिवासचम्पू में तिरुपति के बालाजी की प्रशस्ति है।

10. अन्य चम्पू काव्य

‘नृसिंहचम्पू’ अलग-अलग कई कवियों ने लिखा। केशवभट्ट ने इसकी रचना छह स्तबकों में, देवज्ञसूरि ने पाँच उच्छ्वासों में और संकर्षण ने चार उल्लासों में इसी नाम के चम्पू की रचना की। कृष्णलीला को आधार बनाकर शेषश्रीकृष्ण ने ‘पारिजातहरण चम्पू’ की रचना की। नीलकण्ठदीक्षित ने ‘नीलकण्ठविजयचम्पू’ लिखा। जीवगोस्वामी ने ‘गोपाल चम्पू’ लिखा। इसमें कृष्ण की बाल क्रीड़ाओं का मनोरम वर्णन किया गया है। इसमें वात्सल्य रस को प्रवाहित करने का अच्छा प्रयास है। इसके अतिरिक्त भी अन्य अनेक चम्पूकाव्य हैं, जो इतने लोकप्रिय नहीं हो पाये हैं।

8.4 अपनी प्रगति जांचिए

1. मुक्तक काव्य किसे कहा जाता है?
2. भर्तृहरि द्वारा रचित तीन मुक्तक काव्यों के नाम लिखिए।
3. भल्लटशतक और अमरुशतक के रचयिताओं के नाम बताइए।
4. भामिनीविलास किसकी रचना है?
5. शिवमहिम्नः स्तोत्र की रचना किसने की?
6. बाणभट्ट द्वारा रचित स्तोत्रकाव्य का नाम बताइए।
7. सूर्यशतक के रचनाकार का क्या नाम है?
8. गद्यपद्यमय काव्य को क्या कहते हैं?
9. नलचम्पू किसकी रचना है?
10. धारानरेश भोजदेव ने कौन-सा चम्पूकाव्य लिखा ?

8.5 सारांश

संस्कृत काव्य की अनेक विधाओं में मुक्तक काव्य, स्तोत्र काव्य तथा चम्पूकाव्य विशेष स्थान रखते हैं। अपने जीवन के अनुभवों को सुभाषित रूप में व्यक्त करने वाले कवि आज भी

भारतीय जनमानस के दिलोदिमाग पर राज करते हैं। भर्तृहरि जैसे कवियों ने अपने अनुभवों को मुक्तक काव्य का रूप देकर गागर में सागर भरने का अद्वितीय कार्य किया है। समाज में मूर्खों और दुष्टों की पहचान, सत्संगति का महत्त्व, विद्या—महिमा, धन—महिमा, महान् व्यक्ति की पहचान, सुख—दुःख में समत्व बुद्धि कैसे बने कर्म करके सफलता पाने की विधि, कामदेव का मायाजाल, सच्चा प्रेम और वैराग्यभाव की जैसी व्याख्या इन्होंने की है, वैसी सरल व अद्वितीय सुभाषित कहीं और मिलना दुर्लभ है। इन्हीं का अनुकरण करके अन्य कवियों (संस्कृत या हिन्दी) ने भी मुक्तक काव्यों या दोहों के संग्रह बनाए और इनका प्रचार—प्रसार भी बहुत हुआ। स्तोत्र काव्यों ने भी इष्टदेव के प्रति समर्पणभाव पुनर्स्थापित किया। ये भावप्राचुर्य, सतत प्रवाह और संगीतमयता के कारण भक्तजनों को आज भी अत्यन्त प्रिय हैं। चम्पूकाव्य (गद्य—पद्य मिश्रित) भी संस्कृत कवियों के लिए आकर्षण का विषय रहा है। कवियों को गद्य—पद्य दोनों में लेखन कौशल दिखाने का अवसर इसी में मिलता है। त्रिविक्रमभट्टकृत नलचम्पू, सोमदेवकृत यशस्तिलक चम्पू, भोजकृत रामायणचम्पू, अनन्तभट्ट का भारतचम्पू, तिरुमलाम्बा का वरदाम्बिका परिणय चम्पू और वेंकटाध्वरि का विश्वगुणादर्शचम्पू आज भी लोकप्रिय हैं।

8.6 मुख्य शब्दावली

1. मुक्तकम् (मुक्त + कन्) एक पृथक्कृत श्लोक जिसका अर्थ स्वयं अपने में पूर्ण हो।
2. स्तोत्रम् (स्तु + ष्ट्रन्) प्रशंसा, स्तुतिगान, मुख्य रूप से ईशस्तुति
3. चम्पू (चम्प् + ऊ) एक प्रकार का काव्य जो गद्य और पद्य दोनों का मिश्रण
4. नीति (नी + क्तिन्) निर्देशन, दिग्दर्शन, आचरण—व्यवहार सिखाने वाले वाक्य
5. घटकर्पर — घड़े का टूटा हुआ एक टुकड़ा
6. वैराग्यम् (विरागस्य भावः — ष्यञ्) सांसारिक वासनाओं व इच्छाओं का अभाव या सांसारिक बंधनों से उदासीनता।

8.7 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1. जिस काव्य में प्रत्येक पद्य स्वतन्त्र अर्थ वाला हो
2. नीतिशतक, शृंगार शतक, वैराग्य शतक
3. भल्लट और अमरु
4. पण्डितराज जगन्नाथ की
5. पुष्पदन्त ने
6. चण्डीशतक
7. मयूरभट्ट
8. चम्पू काव्य
9. त्रिविक्रमभट्ट की
10. रामायणचम्पू

8.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. मुक्तक काव्य का अर्थ बताते हुए प्रमुख मुक्तक काव्यों का परिचय दीजिए।
2. भर्तृहरि के नीतिशतक के विषय में विस्तार से बताइए।
3. भर्तृहरि के शृंगार शतक अथवा वैराग्य शतक पर टिप्पणी लिखिए।
4. अमरुशतक या भल्लटशतक पर टिप्पणी लिखिए।
5. पण्डितराज जगन्नाथ द्वारा रचित भामिनीविलास का परिचय दीजिए।
6. शंकराचार्य के स्तोत्रकाव्यों के विषय में बताइए।
7. प्रमुख चम्पूकाव्यों का परिचय दीजिए।

8.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. भर्तृहरि शतक—साधना पब्लिशन्स प्रकाशन, दिल्ली

2. भर्तृहरि शतक—लक्ष्मी प्रकाशन बल्लीमरान, दिल्ली—6
3. नीतिशकम्—चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
4. अमरुशतकम्—चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास — वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्या भवन,
वाराणसी
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास — डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' चौखम्बा भारती
अकादमी, वाराणसी ।